भगवान बुद्ध
का
उपदेश

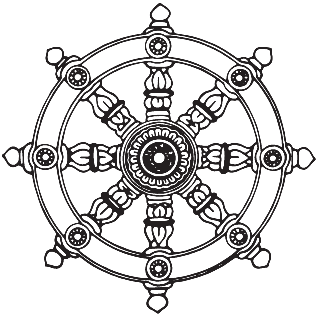

धर्म चक्र

भगवान बुद्ध के उपदेश एक निरन्तर चलती गाड़ी के चक्र (पहिए) की तरह दूर-दूर और अनंत काल तक चलायमान हैं। चक्र के आठा हिस्से बौद्ध धर्म के अष्ट मार्ग के प्रतीक हैं, जो कि धर्म का सबसे महत्वपूर्ण मार्ग है। सम्यक दृष्टि, सम्यक विचार, सम्यक वाणी, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक परिश्रम, सम्यक धारणा और सम्यक ध्यान यही अष्ट मार्ग हैं। प्राचीन काल में जब बुद्ध मूर्ति बनाने का चलन नहीं था, धर्मचक्र ही पूजा जाता था। आजकल, धर्मचक्र बौद्ध धर्म का अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रचलित प्रतीक है।

Copyright © 1985, 2013 by **BUKKYO DENDO KYOKAI**

Any part of this book may be quoted without permission. We only ask that **Bukkyo Dendo Kyokai**, Tokyo, be credited and that a copy of the publication sent to us. Thank you.

BUKKYO DENDO KYOKAI
(Society for the Promotion of Buddhism)
3-14, Shiba 4-chome,
Minato-ku, Tokyo, Japan, 108-0014
Phone: (03) 3455-5851
Fax: (03) 3798-2758
E-mail: bdk@bdk.or.jp http://www.bdk.or.jp

Tenth Printing, 2018

Printed by
Kosaido Co., Ltd.
Tokyo, Japan

भगवान् बुद्ध प्रज्ञा महासागर के समान विशाल, तथा उनका हृदय महाकरुणा से ओतप्रोत है। बुद्ध का कोई रूप नहीं है, फिर भी उन्होंने अद्भुत रूप धाारण कर हमें, प्रत्यक्षं सद्धर्भ का उपदेश किया।

यह ग्रंथ देश और जातीयता की सीमाओं को लाँघकर पाँच हज़ार से भी अधिक ग्रंथों में 2600 वर्ष में से भी अधिक समय तक सुरक्षित रखे गए भगवान बुद्ध के उपदेशों का सार है।

इसमें बुद्ध के वचनों को संक्षेप में ग्रथित किया गया है जो मानवी के सभी पहलुओं को और समस्याओं को स्पर्श, कर, उनका समाधान प्रस्तुत करते हैं।

धम्मपद

- इस संसार में वैर से वैर कभी शान्त नहीं होते। वह मैत्री से ही शान्त होते हैं—यह सदा का नियम है। (5)

- जो मूर्ख अपनी मूर्खता को समझता है वह इस कारण ज्ञानी है। जो मूर्ख अपने को ज्ञानी माने, वह यथार्थ में मूर्ख कहलाता है। (63)

- संग्राम में हजारों का हज़ारों बार जीतने से उत्तम विजय उसकी है जो अपने ऊपर विजय प्राप्त करता है। (103)

- उत्तम धर्म के दर्शन न करने वाले सौ वर्ष के जीवन से श्रेष्ठ हैं धर्म को देखने वाले का एक दिन का जीवन है। (115)

- मनुष्य का जीवन पाना कठिन है, मनुष्य का जीवित रहना कठिन है, सद्धर्म का श्रवण करना कठिन है और बुद्धों का उत्पन्न होना कठिन है। (182)

- सभी पापों को न करना, पुण्यों का संचय करना, अपने चित्त को शुद्ध करना यह बुद्धों की शिक्षा है। (183)

- न पुत्र रक्षा कर सकते हैं, न पिता, न बन्धु, मृत्यु के समय काई बन्धुजन रक्षक नहीं हो सकते। (288)

विषय-सूची

बुद्ध

प्रथम अध्याय ऐतिहासिक बुद्ध 2

1. महान जीवन 2
2. अंतिम उपदेश 10

द्वितीय अध्याय अनाद्यनन्त बुद्ध 15

1. उनकी करुणा तथा प्रणिधान 15
2. मोक्ष और उनके साधन 19
3. अनाद्यनन्त बुद्ध 22

तृतीय अधय बुद्ध का रूप और उनके सद्‌गुण.................... 25

1. बुद्ध के त्रिकाय 25
2. बुद्ध के दर्शन 29
3. बुद्ध के सद्‌गुण 32

धर्म

प्रथम अध्याय हेतु-प्रत्यय 38

1. चार आर्यसत्य 38
2. अद्‌भुत कर्मसंबंध 41
3. प्रतीत्य-समुत्पाद 42

द्वितीय अध्याय मनुष्य का मन एवं वस्तुओं का यथाथ रूप 46

1. अनित्यता एवं अनात्मकता 46
2. मन की रचना 49
3. वस्तुओं का यथार्थ रूप.................................... 52
4. मध्यम-मार्ग.................................... 57

तृतीय अध्याय बुद्धत्व 65
1. पवित्र मन 65
2. बुद्धत्व 71
3. बुद्धता एवं अनात्मता 75
चतुर्थ अध्याय क्लेश 81
1. चित्त की अशुद्धियाँ 81
2. मनुश्य का स्वभाव 88
3. मानवी जीवन 90
4. भ्रान्ति का स्वरूप 95
पंचम अध्याय बुद्ध की दी हुई मुक्ति 102
1. अमिताभ बुद्ध के प्रणिधान (संकल्प) 102
2. अमिताभ बुद्ध की पवित्र भूमि-सुखवती 110

साधना का मार्ग

प्रथम अध्याय विशुद्धि का मार्ग 116
1. चित्त-शुद्धि 116
2. सदाचार का 123
3. भगवान बुद्ध के दृष्टान्त 134
द्वितीय अध्याय प्रत्यक्ष आचरण का मार्ग 150
1. सत्य का अन्वेषण 150
2. आरण के विविध मार्ग 163
3. श्रद्धा का मार्ग 176
4. बुद्ध के सुवचन 184

संघ

प्रथम अध्याय संघ के कर्तव्य 194
1. भिक्षुओं का जीवन 194
2. उपासकों का मार्ग 200
3. जीवन का मार्गदर्शन पथ 212
द्वितीय अध्याय बुद्धक्षेत्र का निर्माण 226
1. आपस का मेलजोल 226
2. बुद्ध का क्षेत्र 234
3. बुद्ध के क्षेत्र के आधार-स्तम्भ 239

'भगवान बुद्ध का उपदेश' संबंधित मूल सूत्रग्रंथ 245

परिशिष्ट

1. बौद्ध धर्म का संक्षिप्त इतिहास 256
2. बौद्ध सूत्रों के प्रयास का इतिहास 266
3. 'भगवान बुद्ध का उपदेश' का इतिहास 269
4. 'भगवान बुद्ध का उपदेश' की विषयानुक्रमणिका ... 274
5. संस्कृत शब्दवली 283

बौद्ध धर्म प्रवर्तन तथा 'भगवान बुद्ध का उपदेश' .. 292

बुद्ध

प्रथम अध्याय

ऐतिहासिक बुद्ध

1
महान जीवन

1. शाक्य-वंशीय क्षत्रिय हिमालय की दक्षिणी उपत्यका में बहनेवाली रोहिणी नदी के तट पर बसे हुए थे। उनके गौतम-गोत्रीय कुलीन राजा शुद्धोधन ने कपिलवस्तु को अपनी राजधानी बनाया और वहाँ एक विशाल दुर्ग का निर्माण किया। राजा प्रजावत्सल था और प्रजा राजभक्त।

रानी महामाया राजा के मामा देवदेह के राजुल की राजपत्री और शाक्यों की एक उपशाला कोलिय-वंश की थी।

विवाह को पच्चीस वर्ष हो गए, फिर भी उनके कोई सन्तान न हुई। तब एक दिन रानी महामाया ने रात में एक अनोखा सपना देखा: दक्षिण पार्श्व से एक सफेद हाथी उसके गर्भाशय में प्रविष्ट हो गया। और रानी गर्भवती हो गई। राजा और प्रजा दोनों ही उत्कंठा से राजपुत्र के जन्म की प्रतीक्षा करने लगे। उस समय की प्रथा के अनुसार प्रसूति के हेतु रानी ने अपने पितृगृह के लिए प्रस्थान किया। वसन्त ऋतु अपने यौवन पर थी। मार्ग में रानी ने लुम्बिनी वन में विश्राम किया।

चारों ओर अशोक वृक्ष फूलों से लहलहा रहे थे। उमंगित होकर एक पुष्पित टहनी को लेने के लिए जैसे ही रानी ने अपना दाहिना हाथ बढ़ाया, उसे प्रस्व हो गया। और इस तरह राजकुमार का जन्म हुआ। स्वर्ग और पृथ्वी सर्वत्र आनन्द छा गया। जड–जंगम सभी ने रानी का गौरव–गान करते हुए सद्यःजात कुमार की कल्याण–कामना की। उस दिन वैशाख मास की पूर्णिमा (अप्रैल महीने की आठ तारीख) थी।

राज शुद्धोधन की खुशी का कोई पार न था। उसने बच्चे का नाम सिद्धार्थ रखा, जिसका अर्थ है : सभी इच्छाओं की सिद्धि (पूर्ति)।

2. किन्तु राजमहल में सुख की ओट में दुःख भी छिपा हुआ था। क्योंकि थोड़े ही दिनों में महारानी मायादेवी परलोक सिधार गईं। तब राजपुत्र का पालन–पोषण महारानी की छोटी बहन महाप्रजापति ने किया।

उन दिनों हिमालय में असित नामक ऋषि तपस्या कर रहे थे। जब उन्हें कपिलवस्तु दुर्ग पर प्रभामंडल दिखाई दिया तो उसे शुभ शकुन समझकर वे वहाँ आए। राजकुमार को देखकर उन्होंने भविष्यवाणी की, "यदि बड़ा होकर कुमार महल में रहा तो चारों खण्ड पृथ्वी का चक्रवर्ती राजा बनेगा। लेकिन यदि गृहत्याग कर संन्यासी हो गया तो विश्व का उद्धार करनेवाला बुद्ध बनेगा।"

भविष्यवाणी सुनकर पहले तो राजा प्रसन्न हुआ, परन्तु बाद में चिन्तामग्न रहने लगा कि अगर एकाकी पुत्र गृहत्यागकर संन्यासी हो गया तो क्या होगा?

सात साल का होने पर राजकुमार का विद्यारम्भ हुआ और वह नीति–शास्त्र और रणकौशल सीखने लगा। साथ ही वह विश्व की विसंगतियों पर भी चिन्तन करता रहता। वसंत ऋतु के एक दिन वह अपने पिता के साथ राजप्रसाद से बाहर घूमने निकला। एक खेत में उसने किसान को हल चलाते और हल के फाल से उखड़कर बाहर आए हुए एक छोटे कीड़े को झपटकर ले जाती हुई चिड़िया को देखा। यह देख वह एक वृक्ष की छाया में जा बैठा और अस्फुट स्वर में सोचने लगा :

'हाय, क्या सब जीव एक दूसरे को मार डालते हैं?'

जन्मते ही मातृविहीन राजकुमार ने जब जीवजगत का यह मत्स्यन्याय और लघु जीवों की असहायता एवं दुर्दशा देखी तो उसका हृदय विदीर्ण हो गया। जिस तरह छोटे पेड़ पर किया क्षत उसकी बाढ़ के साथ गहरा होता जाता है उसी प्रकार मानवी दु:ख उसके मन में गहरा पैठता चला गया।

यह स्थिति देखकर और ऋषि की भविष्यवाणी का स्मरण कर राजा शुद्धोधन बहुत चिंतित रहने लगे; और तब वे राजकुमार का मन किसी तरह बहलाकर अन्य बातों में लगाने की कोशिश में जुट गए। राजकुमार जब उन्नीस साल का हुआ, तब राजा ने उसका विवाह राजकुमारी यशोधरा से कर दिया, जो रानी महामाया के भाई, देवदेह के राजा,

सुप्रबुद्ध की कन्या थी।

3. उसक पश्चात् दस वर्ष राजकुमार वसंत, वर्षा और शरद ऋतुओं के लिए अलग-अलग बनवाए गए महलों में संगीत, नृत्य और आमोद-प्रमोद में डूबा रहा; किन्तु बीच-बीच में जब भी वह मानव-जीवन का सच्चा हेतु समझने की कोशिश करता तो दुःख की समस्या उसके सामने मुँह बाए खडो हो जाती।

"ये राजसी विलास, यह स्वस्थ शरीर, लोगों को आनन्दित करनेवाला यह यौवन-अन्ततोगत्वा मेरे लिए इनका क्या अर्थ है? कभी मनुष्य रोगी हो जाता है, एक दिन बूढ़ा हो जाता है, मृत्यु से तो कभी बच नहीं सकता। यौवन-मद, रूप, सौन्दर्य और स्वास्थ्य का अभिमान, जीवित रहने का गर्व-ये सब निस्सार हैं। विचारशील आदमी को इनका परित्याग करना चाहिए।

"जीवन-संघर्ष में रत मनुष्य को अवश्यमेव किसी मूल्यवान वस्तु की खोज रहती है। उसकी खोज का लक्ष्य सही भी हो सकता है और गलत भी। अगर लक्ष्य का सन्धान गलत है तो वह यही मानेगा कि रोग, बुढ़ापा और मृत्यु अपरिहार्य हैं और तब वह सही मार्ग से भटककर जो अस्थिर, अस्थायी और अशाश्वत है उसी को खोजता रहेगा।

"अगर उसका लक्ष्य-सन्धान सही है तो वह रोग, बुढ़ापे और मृत्यु के यथार्थ रूप को समझकर उस परमसत्य की तलाश करेगा, जिसे खोजकर सभी मानवी दुःखों का तिरोहण संभव है। इस समय में निश्चय ही अस्थिर और अस्थायी की खोज में पड़ा हुआ हूँ।

4. राजकुमार के मन में यह अन्तःसंघर्ष, 21 वर्ष की आयु में, उसके पुत्र राहुल के जन्म लेने के समय तक, अबाध गति से चलता रहा। पुत्र-जन्म क बाद राजकुमार के इस संघर्ष का चरमोत्कर्ष गृहत्याग-कर प्रवजित होने के उसके निश्चय के रूप में हुआ। एक रात अपने सारथी छन्दक को साथ लिए श्वेत अश्व कंथक पर आरूढ़ राजकुमार ऐहिक सुखों का परित्याग कर अपने राजमहल से निकल पड़ा।

गृहत्यागकर भी उनके मनोन्मथन का शमन नहीं हुआ। मार पुरन्त उसके पीछे पड़ गया और लुभाने लगा : ''राजमहल लौट जाओ। समय की प्रतीक्षा करो। सारा संसार तुम्हारे चरणों में होगा।'' राजकुमार ने उसे फटकार दिया : ''हट जाओ, मार! इस पृथ्वी पर की किसी वस्तु की मैं अपेक्षा नहीं करता।'' इस तरह राजकुमार ने मार को भगा दिया, अपना सिर मूड़ा लिया और भिक्षापात्र लेकर दक्षिण दिशा की ओर चल दिया।

सर्वप्रथम राजकुमार ने भृगु ऋषि के आश्रम में जाकर तपस्या की। उसके पश्चात् आलार कालाम तथा उद्रक रामपुत्र के पास जाकर उनसे ध्यान, समाधि और मोक्ष-प्राप्ति के उपाय सीखे और उनकी साधना की। किन्तु शीघ्र ही उन्हें पता चल गया कि इससे निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती, तब वे मगध चले गए और वहाँ गया नगर के समीप नैरंजरा नदी के तट पर उरुवेला बन में घोर तपस्या आरम्भ की।

5. वह सचमुच उग्र तपस्या थी। जैसा कि गौतम ने बाद में स्वयं कहा :

"भूत, वर्तमान या भविष्य के किसी तपस्वी ने इतनी उग्र तपस्या न तो की है, न कोई इसके पश्चात् कर पाएगा।" ऐसी घोर तपस्या थी उनकी। फिर भी इस तपस्या से राजकुमार को वह वस्तु प्राप्त न हो सकी, जिसकी उन्हें खोज थी। तब उन्होंने छह वर्ष की इस तपस्या को निमिषमात्र में त्याग दिया। नैरंजरा नदी में स्नानकर, शरीर को निर्मल किया और सुजाता नामक कन्या के हाथ से पायस का ग्रहणकर स्वास्थ्य-लाभ किया।

यह देख जो पाँच तपस्वी गौतम के साथ उसी वन में तपस्या कर रहे थे, वे राजकुमार को तपभ्रष्ट हुआ मानकर, उनका साथ छोड़कर दूसरे स्थान पर चले गए।

अब राजकुमार बिलकुल अकेले रह गए। वह शांति से एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गए और प्राणप्रण से उन्होंने अन्तिम ध्यान में प्रवेश किया। "चाहे मरा रक्त क्यों न सुख जाए, माँग क्यों न झड़ जाए, हड्डियाँ क्यों न गल जाएँ, मैं सम्यकुसंबोधि प्राप्त किए बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा।" यह था राजकुमार का उस समय का दृढ़ संकल्प।

उस दिन राजकुमार के हृदय में जो भीषण संघर्ष चल रहा था वह अतुलनीय है। संभ्रान्त, विमूढ़ मनः उद्वेगकारी व्यग्रता; हृदय पर छाई हुई। काली उदास घटा; विद्रुप विचारों की घिनौनी आकृतियाँ—मानो मार-सेना का प्रबल आक्रमण ही था राजकुमार ने हृदय के कोने-कोने में उनका

पीछा किया और अलग-अलग उनसे द्वन्द्व कर पराजित किया। सचमुच वह खून को सुखानेवाला, माँस को क्षत-विक्षत और हड्डियों को चूर-चूर करनेवाला भीषण संग्राम था।

किन्तु यह युद्ध भी समाप्त हो गया और पौ फटने पर जब राजकुमार ने प्रभात-तारे की ओर गर्दन उठाकर देखा तब उनका हृदय प्रकाशमय हो गया था। उन्होंने संबोधि को प्राप्त कर लिया था, वे बुद्ध बन गए थे। राजकुमार की आयु उस समय 35 वर्ष की थी और वह दिन था आठ दिसम्बर का सवेरा।

6. इसके पश्चात् राजकुमार बुद्ध, अनुत्तरसम्यकुसंबुद्ध, तथागत, शाक्यमुनि अर्थात् शाक्यों के ऋषि, भगवान आदि विविध नामों से पुकारे जाने लगे।

शाक्यमुनि सबसे पहले, छह वर्ष तक जिन पाँच भिक्षुओं ने उनके साथ तपस्या की थी उन पंचवर्गीय भिक्षुओं को उपदेश देने के लिए वाराण्सी नगर के मृगदाव पहुँचे। प्रारम्भ में तो शाक्यमुनि को उन भिक्षुओं ने टालने का प्रयत्न किया, किन्तु उनका उपदेश सुनकर वे उनपर श्रद्धा करने लगे और उनके सर्वप्रथम शिष्य बन गए। फिर भगवान बुद्ध राजगृह चले गए। वहाँ उन्होंने राजा बिंबिसार को उपदेश किया। उनके पश्चात् राजगृह को धर्मोपदेश का मूलस्थान बनाकर वे उत्साह से दूर-दूर तक धर्म का प्रचार करने के लिए जाने लगे।

तृषित जैसे जल चाहते हैं, भूखे जैसे अन्न के लिए लालायित होते हैं, वसे लोग भगवान बुद्ध के पास इकट्ठा होने लगे। सारिपुत्र तथा मौदृगल्यायन जैसे दो महान शिष्य और उनके लगभग दो हजार अनुयायी भगवान बुद्ध की शरण में आ गए।

गौतम के गृहत्याग से व्यथित पिता शुद्धोधन पहले तो टालते रहे परन्तु बाद में उनके शिष्य हो गए। साथ ही उनकी मौसी महाप्रजापति और पत्नी यशोधरा भी शिष्य बनीं और शाक्यवंश के सभी लोग उनकी शरण में गए और शिष्य एवं अनुयायी बन गए। उनके अतिरिक्त असंख्य नरनारी उनके अनुयायी, उपासक और शिष्य बन गए।

7. इस प्रकार धर्म का प्रचार करते हुए भगवान बुद्ध 45 वर्ष भ्रमण करते रहे। अस्सी वर्ष की आयु में राजगृह से श्रावस्ती जाते हुए रास्ते में वैशाली में वे बीमार हो गए। उस समय उन्होंने भविष्यवाणी की : ''तीन मास बाद तथागत का परिनिर्वाण होगा।'' उसके बाद वे पावा चले गए। वहाँ चुन्द लोहार द्वारा समर्पित भोजन ग्रहण करने से उनकी बीमारी और बढ़ गई। सख्त पीड़ा को दबाकर वे कुसीनारा पहुँचे।

भगवान बुद्ध नगर के बाहर शाल-बन में पहुँचे और वहाँ जुड़वे शाल वृक्षों के बीच लेट गए। परम कारुणिक शाक्यमुनि अंतिम साँस तक शिष्यों को उपदेश करते रहे। इस प्रकार विश्व के महानतम धर्मशास्ता ने अपना जीवन-कार्य समाप्तकर शांतिपूर्वक परिनिर्वाण प्राप्त किया।

8. कुसीतारा के लोग भगवान के परिनिर्वाण से शोकविह्वल हो उठे। बुद्ध के परमप्रिय शिष्य आनंद के मार्गदर्शन में भगवान का विधिवत् दाह-संस्कार किया गया।

उस समय मगध-नरेश अजातशत्रु आदि भारत के आठ राजाओं ने माँग की कि भगवान की अस्थियाँ उनको वितरित की जाएँ। जब कुसीनारा के लोगों ने इनकार कर दिया तो विवाद खड़ा हो गया और लगा कि उसका अन्त युद्ध में होगा। किन्तु एक समझदार ब्राह्मण द्रोण की मध्यस्थता के कारण अस्थियों को आठ राज्यों में बाँट दिया गया। उसके अतिरिक्त अस्थिकुंभ द्रोण ब्राह्मण को और बचे हुए कोयले पिप्पलीवन के मौरियों को प्रदान किए गए। सभी देखों में तथागत की अस्थियों की पूजा की गई और उनपर भगवान बुद्ध के दस महास्तूपों का निर्माण किया गया।

2
अंतिम उपदेश

1. भगवान बुद्ध ने कुसीनारा के बाहर शाल-उपवन में अपना अंतिम उपदेश किया।

"भिक्षुओ, आत्मदीप बनो, आत्म-शरण बनो, किसी दूसरे पर आधारित मत रहो। धर्मदीप बनो, धर्मशरण बनो। दूसरे उपदेशों पर आधारित मत रहो।

''अपने शरीर को देखो। उसके मलों का ख्याल कर उसके प्रतिआसक्ति मत रखो। असकी वेदना, उसका आनंद सभी दु:ख का मूल बनते हैं, उनके प्रति हम आसक्त कैसे हो सकते हैं? अपने हृदय को देखो उसमें आत्मा–जैसी कोई वस्तु नहीं है यह जानकर, उसके मोह में फँसना नहीं चाहिए। ऐसा करने स हम सभी दु:खों का निरोध कर सकते हैं। इस संसार से मेरे चले जाने के बाद भी, तुम लोग इस प्रकार मेरे उपदेश का पालन करते रहो। तभी तुम मेरे सच्चे शिष्य कहलाओगे।

2. ''भिक्षुओ, अबतक मैंने तुम लोगों के लिए जो धर्म और विनय के उपदेश किए हैं, उन्हें सदा सुनते रहो, उनपर विचार करते रहो, उनका आचरण करते रहो। उनका त्याग कभी नहीं करना चाहिए। अगर तुम उनके अनुसार आचरण करते रहोगे तो तुम्हारा जीवन सदा सुख से परिपूर्ण होगा।

''उपदेश की कुंजी है अपने हृदय पर काबू पाना। इसलिए वासनाओं को संयमित करके अपने–आप पर विजय पाने का प्रयास करते रहो। शरीर को पवित्र रखो, मन को शुद्ध रखो, सदा सत्य वचन बोलो। लोभ का त्याग करो, क्रोध मत करो, पाप से दूर रहो, और सदा अनित्यता का चिंतन करते रहो।

''अगर हृदय मोह के वश होकर, लोभ का शिकार बनने की नौबत आ जाए, तो उसका दृढ़तापूर्वक दमन करना चाहिए। हृदय के दास न

बनकर, हृदय के स्वामी बनो।

''मनुष्य का हृदय उसे बुद्ध उसे बुद्ध भी बना सकता है और पशु भी बना सकता है। मोह में फँसकर वह राक्षस बनता है, और निर्वाण प्राप्त कर वह बुद्ध बनता है। यह सब हृदय का खेल है। इसलिए हृदय पर नियंत्रण रखकर, उसे सच्चे पथ से विचलित न होने देने का प्रयास करते रहो।

3. ''भिक्षुओ, तुम लोगों को मेरे धर्म का पालन करते हुए आपस में मिलजुलकर रहना चाहिए, एक दूसरे का आदर-सत्कार करना चाहिए, आपस में झगड़ना नहीं चाहिए। पानी आर दूध के समान एक दूसरे में घुलमिल जाओ। पानी और तेल के समान एक दूसरे को नकारना नहीं चाहिए।

''सब मिलकर धर्म की रक्षा करो, मिलकर अध्ययन करो, मिलकर उसका आचरण करो, एक दूसरे को प्रोत्साहित करते हुए, साधना का आनन्द एक साथ लूटो। बेकार बातों की ओर ध्यान देकर, व्यर्थ बातों में समय बरबाद न करो। निर्वाण के पुष्प को तोड़कर, सच्चे पथ के फल को हस्तगत करो।

''भिक्षुओ, इस धर्म का स्वयं साक्षात्कार करके, मैंने उसका तुम लोगों को उपदेश किया है। तुम लोग इसकी ठीक रक्षा करो और उसका अनुकरण करते हुए आचरण करते रहो।

''अतः जो इस उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करते, वे मुझसे मिलकर भी नहीं मिले, मेरे साथ रहकर भी मुझसे दूर हटे हुए हैं। दूसरी ओर इस उपदेश के अनुसार आचरण करनेवाला मुझसे दूर रहते हुए भी मेरे निकट रहता है।

4. ''भिक्षुओ, मेरा अन्त अब बहुत निकट है। हमारा वियोग अब दूर नहीं है। फिर भी शोक मत करो। यह संसार अनित्य है, यहाँ ऐसा कोई नहीं जो जन्म लेकर मरता नहीं। अब मेरा शरीर जर्जर शकट के समान टूट जाएगा, यह भी इसलिए होगा कि अनित्यता के सिद्धान्त को मै अपने शरीर को लेकर दिखा सकूं।

''व्यर्थ शोक मत करो। अनित्यता के इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर, मनुष्य-जीवन के सच्चे रूप को आँखें खोलकर देखना चाहिए। उसको सच्चे अर्थ में समझना चाहिए। जो नित्य परिवर्तनशील है, उसे अविकार्य बनाने का प्रयास करना व्यर्थ है।

''संसारिक क्लेशों के राक्षस सदा अवसर पाकर तुम लोगों पर आक्रमण करने के लिए तुले हुए हैं। यदि तुम्हारे कमरे में विषैला साँप रहता हो, तो जब तक तुम उसे कमरे से निकाल नहीं दोगे तब तक चैन की नींद नहीं सो सकोगे।

''क्लेशों के राक्षसों का पीछा करना चाहिए। क्लेशों के साँप का निकाल देना चाहिए। तुम लोगों को प्रयत्नपूर्वक अपने मन की रक्षा करनी होगी।

5. ''भिक्षुओ, अब मेरी अंतिम घड़ी है। किन्तु यह भूलना नहीं चाहिए कि यह मृत्यु केवल शरीर की मृत्यु होगी। क्योंकि शरीर माता-पिता से पैदा होता है और अन्न द्वारा उसका पोषण होता है, उसका व्याधिग्रस्त होता और नष्ट हो जाना अपरिहार्य है।

''किन्तु बुद्ध का वास्तव स्वरूप शरीर नहीं, अपितु निर्वाण होता है।

शरीर के नष्ट हो जाने पर भी निर्वाण धर्म और साधना के रूप में अनंतकाल तक जीवित रहता है। इसलिए जो केवल मेरे शरीर को देखता है, वह सच्चे अर्थ में मुझे नहीं देखता। जो मेरे धर्म को जानता है, वही सचमुच मुझे देखता है।

''मेरे देहान्त के बाद, मेरा उपदेशित धर्म ही तुम लोगों का शास्ता होगा। इस धर्म का अनुसरण करना ही तथागत की सेवा करना हे।

''भिक्षुओं, में अपने जीवन के अंतिम पैंतालीस वर्षों में जो कुछ धर्म-उपदेश देने चाहिए। थे, सब दे चुका हूँ, और जो कुछ करना चाहिए था, सब कर चुका हूँ। धर्मों में तथागत की कोई आचार्य-मुष्टि (रहस्य) नहीं है। तथागत ने सभी उपदेश स्पष्ट, अगुप्त और अकूट किए हैं। तथागत ने कुछ भी छिपाकर नहीं रखा। ''भिक्षुओ, अब मेरी अंतिम घड़ी है। मेरा अब परिनिर्वाण होगा। यह मेरा अंतिम उपदेश है।''

द्वितीय अध्याय

अनाद्यनन्त बुद्ध

1
उनकी करुणा तथा प्रणिधान

1. बुद्ध का हृदय परम कारुणिक है। सभी प्रकार के उपायों से सब सत्त्वों का उद्धार करनेवाला यह परम कारुणिक हृदय, बीमारों के साथ बीमार होनेवाला, पीड़ितों के साथ पीड़ित होनेवाला हृदय है।

जैसे माँ बच्चे का ख्याल करती है, ठीक वैसे ही एक क्षण भी छोड़कर चले न जानेवाला, संभालनेवाला, पालन-पोषण करनेवाला, उद्धार के लिए हाथ बढ़ाने वाला बुद्ध भगवान का हृदय है। ''तुम्हारा दु:ख मेरा दु:ख है, तुम्हारा सुख मेरा सुख है'' कहते हुए एक क्षण भी वह हमारा साथ नहीं छोड़ता।

बुद्ध की महाकरुणा सत्त्वों की आवश्यकताओं के अनुसार उत्पन्न होती है। इस महाकरुणा के स्पर्श से हृदय में श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धावान हृदय के कारण निर्वाण का मार्ग खुल जाता है। यह ठीक वैसा ही है जैसे बच्चे को प्यार करने से माँ को अपने मातृत्व का साक्षात्कार होता है, और माँ के वत्सल हृदय के स्पर्श से बच्चे का हृदय आश्वासन प्राप्त करता है।

फिर भी लोग भगवान बुद्ध के इस हृदय को नहीं जानते और अज्ञान के कारण मोहग्रस्त होकर परेशान होते हैं और विविध क्लेशों के अधीन व्यवहार करके दु:खी होते हं। पाप-कर्मों की भारी गठड़ी सिर पर उठाकर, हाँफते-हाँफते, मोह के एक पर्वत से दूसरे पर्वत पर भटकते रहते हैं।

2. बुद्ध की करुणा केवल इसी जन्म के लिए, ऐसा मानना ठीक नहीं है। यह तो बहुत पहले से, जब से मनुष्य अज्ञानवश जन्म-मृत्यु के फेरे में फँसकर मोह पर मोह के पुट चढ़ाता आया तभी से चली जाती है।

बुद्ध सदा लोगों के सामने, लोगों का सबसे प्रिय आकार लेकर प्रकट होते रहते हैं और उद्धार के सभी उपाय उन्हें सुलभ करा देते हैं।

शाक्य-वंश के राजकुमार के रूप में जन्म लेकर उन्होंने प्रव्रज्या जी, उग्र तपस्या को, धर्म का साक्षात्कार किया, धर्म का उपदेश किया और अन्त में मृत्यु के अधीन होकर मृत्यु के सत्य का दर्शन कराया।

सत्त्वों के मोह की कोई सीमा नहीं है, इसलिए बुद्ध के उद्धारकार्य की भी कोई सीमा नहीं है। सत्त्वों के पापों की कोई थाह नहीं होती, इसलिए बुद्ध की करुणा भी अथाह होती है।

इसीलिए भगवान बुद्ध ने अपनी साधना के आरंभ में चार महाप्रणिधान (महासंकल्प) किए थे। (1) प्रतिज्ञापूर्वक सब सत्त्वों का उद्धार करना। (2) प्रतिज्ञापूर्वक सब क्लेशों से मुक्ति पाना। (3) प्रतिज्ञापूर्वक सब

उपदेशों का अध्ययन करना। (4) प्रतिज्ञापूर्वक अनुत्तर-सम्यक्संबोधि को प्राप्त करना। इस चार प्रतिज्ञाओं के आधार पर बुद्ध ने साधना की थी। बुद्ध की साधना के मूल में ये चार प्रणिधान हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि प्रेम और करुणा की अभिव्यक्ति ही बुद्धत्व की मूल प्रकृति हैं बुद्ध का हृदय सत्त्वों का उद्धार करने की इच्छा रखनेवाली उनकी महाकरुणा ही है।

3. भगवान बुद्ध ने बुद्ध बनने के लिए हिंसा (प्राणातिपात) के पाप से परावृत्त होने की साधना और उसके पुण्य के बल पर लोगों के दीर्घायुष्य की कामना की।

बुद्ध ने चोरी (अदत्त-आदान) के पाप से परावृत्त होने की साधना की और उसके पुण्य के बल पर लोग चाहें सो प्राप्त कर सकें, इस बात की कामना की।

बुद्ध ने काम-मिथ्याचार से परावृत्त होने की साधना की और उसके पुण्य के बल पर इस बात की कामना की कि लोगों के हृदय में अधम वृत्ति पैदा न हो तथा उनके शरीर को क्षुधा या तृष्णा से कष्ट न हो।

बुद्ध ने बुद्ध बनने के लिए मृषावाद से परावृत्त होने की साधना की और उसके पुण्य के बल पर इस बात की कामना की कि लोगों को सत्य वचन से प्राप्त होनेवाली हृदय की शांति का अनुभव हो सके।

दो तरह की बातें करने से परावृत्त होने की साधनाकर के उन्होंने इस बात की कामना की कि लोग सदा आपस में मिलजुलकर रहें और एक दूसरे से धर्म की बातें करें।

फिर निन्दा से परावृत्त होने की साधनाकर इस बात की कामना की कि लोगों का हृदय शांति का अनुभव करे और कभी अस्वस्थता का अनुभव न करे।

व्यर्थ बातों से परावृत्त होने की साधनाकर इस बात की कामना की कि लोगों में दूसरों की सहायता करने की भावना का विकास हो।

फिर बुद्ध ने बुद्ध बनने के लिए, लोभ से परावृत्त होने की साधना की और उसके पुण्य के बल पर लोगों का हृदय लोभरहित होने की कामना की।

द्वेष से परावृत्त होने की साधनाकर इस बात की कामना की कि लोगों के हृदय परस्पर सद्भावना से परिपूर्ण हों।

मृढ़ता से परावृत्त होने की साधनाकर इस बात की कामना की कि लोगों के हृदय में हेतु–फल के सिद्धान्त की उपेक्षा करने का गलत विचार पैदा न हो।

इस प्रकार, बुद्ध की करुणा का रुख सभी तत्त्वों के प्रति होकर उसका विशेष धर्म सभी सत्त्वों के सुख की कामना के सिवा और कुछ नहीं है। बुद्ध सभी सत्त्वों पर माता–पिता के समान एक–सा प्रेम करते और उन्हें भवसागर पार कराने की कामना करते हैं।

2
मोक्ष और उनके साधन

1. साक्षात्कार के किनारे खड़े होकर, भवसागर में डूबनेवाले लोगों को सम्बोधित करनेवाले बुद्ध के वचन, लोगों के कानों में सरलता से नहीं पड़ पात। परिनिर्वाण की सुदूर भूमिका से कहे गए बुद्ध के वचन भवसागर में डूबते-उतराते लोगों को सुनाई नहीं पड़ते। इर्सालए बुद्ध स्वयं भवसागर में उतरकर मोक्ष के अपने आविष्कृत साधन काम में लाते हैं।

''भन्ते, सुनो,'' तथागत ने कहा : ''अब आपको एक दृष्टान्त-कथा सुनाएँ! एक नगर में एक महाधनी गृहपति रहता था। उसके घर में एक दिन आग लग गई। संयोग से वह बाहर गया हुआ था। लौटकर घर को जलते हुए देखकर वह हक्का-बक्का रह गया। उसने अपने बच्चों को पुकारा; किन्तु वे खेलने में इतने रमे हुए थे कि उन्हें आग का पता ही न चला। वे जलते हुए घर के अन्दर खेलते रहे। पिता ने बच्चों को चिल्लाकर पुकारा, 'बच्चो, भागो, जल्दी बाहर निकल जाओ।' किन्तु बच्चों का पिताजी के चिल्लाने की ओर ध्यान न गया।

''बच्चों की असुरक्षा के कारण चिंतित पिता ने तब बच्चों को इस प्रकार आवाज दी, 'बच्चो, यहाँ अनेक प्रकार के रमणीय अद्‌भुत खिलौने हैं। जल्दी बाहर आकर उन्हें ले लो।' खिलौनों का नाम सुनते ही बच्चे उत्साहित होकर जलते हुए घर से शीघ्र बाहर निकल आए और अनर्थ से बच गए।''

यह त्रैधातुक संसार सचमुच एक जलता हुआ घर है। किन्तु घर जल रहा है इसका सत्त्वों को पता ही नहीं। उनके वहीं जलकर मर जाने का डर है। इसलिए बुद्ध महाकारुणिक हृदय से अगणित साधनों से काम लेकर उन्हें बचाते हैं।

2. ''और एक दृष्टान्त सुनो,'' तथागत ने कहा : ''बहुत पहले किसी धनी गृहपति का इकलौता लड़का अपने पिता को छोड़कर किसी दूसरे देश चला गया और वहाँ दरिद्रता की खाई में गिर गया।

''पिता अपने गाँव को छोड़कर पुत्र की खोज में भटकता फिरा, पर बहुत प्रयत्न करने पर भी उसे अपने पुत्र का पता चल न सका।

''उसके बाद लगभग पचास साल बीत गए। अब वह पुत्र, जिसकी हालत बहुत दयनीय हो गई थी, संयोगवश घूमता-घामता उस नगर में आ पहुँचा, जहाँ उसका पिता रहता था।

''पिता ने तुरन्त अपने पुत्र को पहचान लिया और वह खुशी से उछल पड़ा। उसने पुत्र को ले जाने के लिए नौकरों को भेजा। किन्तु पुत्र के मन में भय-शंका पैदा हुई। ठगे जाने के डर से उसने उनके साथ चलने से इनकार कर दिया।

''फिर पिता ने दुबारा नौकरों को उसके पास भेजा और कहलवाया कि दुगुनी मजदूरी देकर गृहपति के घर में उसे काम दिलवाएँगे। पुत्र ने इस उपाय-कौशल्य से आकर्षित होकर काम करना स्वीकार किया और वहाँ नौकर हो गया।

''यह अपना घर है, यह न जानते हुए काम करनेवाले पुत्र को, उसके पिता गृहपति ने, धीरे-धीरे ऊँचा पद देकर अंत में सुवर्ण, रजत, धन-धान्य के कोष्ठागार की देखभाल करने का काम सौंप दिया, फिर भी, पुत्र को इस बात का पता न चला कि ये मेरे पिता हैं।

''पुत्र की ईमानदारी और स्वामीभक्ति से पिता बहुत प्रसन्न हो गया।

अपना अन्त समय निकट आया जान एक दिन पिता ने अपने संबंधियों, मित्रों और परिचितों को बुलाकर कहा, 'सज्जनो, यही मेरा पुत्र है, जिसे मैं कई वर्षों से खोज रहा था। अब से यह मेरी सारी संपत्ति का स्वामी है।'

''पुत्र पिता के इस कथन से विस्मित होकर बोला, 'आज मुझे न केवल अपने पिता मिल गए, अपितु यह सारी धन-संपत्ति भी मेरी हो गई।''

भगवान बुद्ध इस दृष्टान्त के गृहपति, और भटकनेवाला पुत्र सामान्य लोग हैं। बुद्ध की करुणा, इकलौते पुत्र के प्रति पिता के प्यार के समान, सभी मनुष्यों के प्रति बहती रहती है। बुद्ध सत्त्वों को अपना पुत्र समझकर उपदेश देकर उनका मार्गदर्शन करते हैं आर निर्वाण-प्राप्ति के ज्ञान का कोश देकर उन्हें सम्पन्न बनाते हैं।

3. सब सत्त्वों को अपने पुत्रों के समान एक-सा प्यार करनेवाले बुद्ध की महाकरुणा एक समान होते हुए भी सत्त्वों के स्वभाव की विभिन्नता के अनुसार उनके उद्धार के साधन भी भिन्न-भिन्न होते हैं। यह तो ठीक ऐसे ही है जैसे कि बादलों से बरसनेवाला जल एक-सा होता है, फिर भी उनका पान करनेवाली वनस्पतियाँ और वृक्ष अपने बीज की शक्ति के अनुसार विभिन्न विकास प्राप्त करते हुए बढ़ते हैं।

4. बच्चों की संख्या कितनी भी हो, माँ-बाप उन सबको एक-सा प्यार करते हैं; फिर भी उनमें अगर कोई बीमार बच्चा हुआ तो उसके प्रति उनका हृदय विशेष वत्सल होता है।

बुद्ध की महाकरुणा भी सब सत्त्वों के प्रति समान है, फिर भी विशेष कर जो लोग महापापी या अज्ञान के कारण कष्ट उठानेवाले होते हैं उनके

प्रति भगवान बुद्ध का प्रेम और करुणा विशेष रूप से प्रकट होती रहती है।

फिर जैसे कि सूर्य पूर्वाकाश में उदित होकर, अंधकार का नाश करके सब जीवों का पोषण करते हैं, उसी प्रकार बुद्ध इस संसार में अवतरित होकर पाप का नाश करके, पुण्य का पोषण करके, ज्ञान का प्रकाश फैलाकर, अज्ञान का तिमिर हटाकर लोगों को निर्वाण प्राप्त करा देते हैं।

बुद्ध प्यार-भरे पिता और वत्सलता-भरी माता होते हैं। संसार में फँसे हुए लोगों के प्रति अपनी अपार करुणा के कारण बुद्ध सतत उनके उद्धार के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। बुद्ध की करुणा के बिना लोगों का उद्धार नहीं हो सकता। पुत्र के रूप में लोगों को पिता बुद्ध के उद्धार के साधनों को स्वीकार करना चाहिए।

3

अनाद्यनन्त बुद्ध

1. सामान्य लोग मानते हैं कि भगवान बुद्ध ने राजपुत्र के रूप में जन्म लेकर, प्रव्रजित होकर निर्वाण प्राप्त किया था। किन्तु वास्तव में उन्हें बुद्धत्व प्राप्त किए अचिन्त्य सहसकोटि कल्प व्यतीत हो गए हैं।

इस अनन्त काल के बीच, बुद्ध सतत इस संसार में वर्तमान होकर, अनन्त बुद्ध के रूप में सभी प्राणियों के स्वभाव का परिपूर्ण ज्ञान प्राप्तकर, हर प्रकार के साधनों से उनका उद्धार करते आए हैं।

बुद्ध द्वारा उपदेशित अनन्त धर्म में कोई मृषावाद नहीं है। क्योंकि बुद्ध

संसार की सभी वस्तुओं को उनके सत्य स्वरूप में जानते हैं और सभी लोगों को उसके अनुसार उपदेश करते हैं।

सचमुच, संसार को उसके सत्य स्वरूप में जानना बहुत कठिन है। क्योंकि यद्यपि यह सत्य दिखाई देता है, सत्य नहीं होता; असत्य दिखाई देता है, पर असत्य नहीं होता। अज्ञानी लोग इस संसार के सत्य रूप को जान नहीं सकते।

अकेले बुद्ध उसको जैसा है वैसा जानते हैं। इसलिए बुद्ध संसार को न तो सत् कहते हैं न असत्, न भला कहते हैं न बुरा। केवल जैसा है वैसा बताते हैं।

बुद्ध जिस बात का उपदेश करना चाहते हैं वह यह है, ''सब लोगों को अपने-अपने स्वभाव, आचरण तथा श्रद्धाओं के अनुसार कुशल मंगलकारी भूलों का आरोपण करना चाहिए।''

2. बुद्ध न केवल वचनों द्वारा उपदेश करते हैं, अपितु अपने जीवन द्वारा भी। आयु अपरिमित होते हुए भी, बुद्ध कामलोलुपता से उकता न जानेवाले लोगों की आँखें खोलने के लिए, साधन रूप में परिनिर्वाण में प्रवेश करने का अभिनय करते हैं।

मान लीजिए कि एक अनेक पुत्रोंवाला वैद्य जब विदेश-यात्रा पर चला गया, तब उसकी अनुपस्थिति में उसके पुत्र विष पीकर वेदनाओं से आक्रान्त हो गए। वैद्य ने लौटकर यह स्थिति देखकर झटपट उनके लिए

एक श्रेष्ठ औषधि तैयार की। वैद्य के जो पुत्र अत्यधिक रोगाच्छन्न थे, उस दबा को पीकर रोगमुक्त हो सके, किन्तु जो विष से अति सम्मोहित थे उन्होंने उस दवा को पीने से इनकार कर दिया।

वैद्य ने पितृप्रेम के कारण, उनकी रोगमुक्ति के लिए एक आत्यंतिक उपाय में काम लेने का निश्चय किया–"मुझे लम्बी यात्रा पर जाना है। मैं बुद्ध हो गया हूँ, मेरी मृत्यु कभी भी हो सकती है। यदि मेरी मृत्यु की सूचना तुम्हें मिले तो यहाँ जो दवा मैंने रख छोड़ी है उसे पीकर तुम लोग स्वस्थ हो जाना।" यह कहकर वह फिर यात्रा पर निकल गया। कुछ समय के बाद उसने दूत के द्वारा अपनी मृत्यु की सूचना उन्हें भेज दी।

पुत्रों ने यह सुनकर अत्यधिक शोक किया कि पिताजी चल बसे; हम लोग सर्वथा अनाथ हो गए। दु:ख और निराशा में उन्हें पिता का चलते समय कहा हुआ वचन याद आया। उन्होंने उस दवा को खा लिया ओर कष्ट से मुक्त हो गए।

क्या लोग उस वैद्य-पिता को झूठ बोलने के लिए दोषी ठहराएँगे? बृद्ध भी इस पिता के समान ही हैं। बुद्ध कामलोलुपता में फँसे हुए लोगों के उद्धार के लिए इस संसार में अपने जन्म और मृत्यु को झूठमूठ दिखाया करते हैं।

तृतीय अध्याय

बुद्ध का रूप और उनके सद्गुण

1

बुद्ध के त्रिकाय

1. केवल रूप या आकार से बुद्ध को जानने या खोजने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। रूप या आकार सच्चा बुद्ध नहीं होता। सच्चा बुद्ध तो निर्वाण ही होता है। अतः जो निर्वाण को देखता है वही सच्चे अर्थ में बुद्ध को देखता है।

बुद्ध की लक्षण–संपदा देखकर अगर कोई कहे कि मैंन बुद्ध को देखा, तो वह अज्ञान की आँखों का दोषमात्र हैं बुद्ध का सच्चा रूप संसार के लोग देख नहीं सकते। कितना ही उत्तम वर्णन करने पर भी बुद्ध को जानना संभव नही है और उपयुक्ततम शब्दों में कहने पर भी बुद्ध का सच्चा रूप शब्दों द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता।

सच्चा रूप कहने पर भी, वास्तव में बुद्ध का कोई नहीं है। फिर भी इच्छा के अनुसार वे अलग–अलग अद्‌भुत रूपों का दिग्दर्शन कराते हैं।

इसलिए जो मनुष्य उसे स्पष्ट रूप से देखते हुए भी, उसके रूप से आसक्त नहीं होता, वह सब बंधनों से मुक्त होकर बुद्ध को देख पाता है।

2. क्योंकि बुद्ध का शरीर निर्वाण होता है, उसका अस्तित्व अनन्त होता है, उसका कभी नाश नहीं होता। वह अन्न से धारण किया जानेवाला शरीर नहीं होता, अपितु प्रज्ञा से निर्मित दृढ़ शरीर होता है। इसलिए उसको किसी प्रकार का भय नहीं होता, व्याधि भी नहीं होती। वह अनन्त और अविकारी होता है।

अतः अनन्त काल तक बुद्ध का विनाश नहीं होता। जैसे निर्वाण का नाश नहीं होता, वैसे ही बुद्ध का भी कभी नाश नहीं होता। यह निर्वाण प्रज्ञा का प्रकाश बनकर प्रकट होता है और यह प्रकाश लोगों को ज्ञानालोक से मंडित कर बुद्धभूमि में उनके जन्म का कारण बनता है।

जिसे हम सिद्धान्त का ज्ञान हुआ वह बुद्धपुत्र बन जाता है और बुद्ध का उपदेश ग्रहण करके, बुद्ध के उपदेश का पालन करके अपनी अगली पीढियों के लिए उसे छोड़ जाता है। सचमुच बुद्ध की शक्ति से अद्‌भुत वस्तु इस संसार में और कोई नहीं है।

3. बुद्ध के तीन काय होते हैं—पहला धर्मकाय, दूसरा संभोगकाय और तीसरा निर्माणकाय।

धर्मकाय बुद्ध का धर्ममय शरीर है। संसार की यथार्थता, तथता का सिद्धान्त तथा उसका साक्षात्कार करनेवाली प्रज्ञा एक बनकर जो धर्म बनता है वही धर्मकाय है।

यह धर्म ही बुद्ध है, इसलिए बुद्ध का कोई रूप या आकार भी नहीं होता। क्योंकि रूप भी नहीं और आकार भी नहीं है, इसलिए कहीं से आना भी नहीं और कहीं जाना भी नहीं है। क्योंकि आना भी नहीं और जाना भी नहीं है, इसलिए वह सर्वथा परिपूर्ण है और आकाश की तरफ सब वस्तुओं को व्याप्त करता है।

न तो लोगों के मानने से वह अस्तित्व में आता है, न तो उसके भूल जाने से वह अन्तर्हित हो जाता है। न तो लोगों के प्रसन्न होने पर वह आता है, न तो लोगों के आलसी बनने पर चला जाता है। बुद्ध का अस्तित्व मनुष्यों के सभी मनोविकारों से परे होता है।

बुद्ध का यह शरीर विश्व में सर्वत्र व्याप्त होता है, सर्वत्र उसकी पहुँच होती है। लोग बुद्ध से संबंध में साधारणतया चाहे जो सोच लें, पर बुद्ध तो अनन्त काल तक अस्तित्व में होते हैं।

4. संभोगकाय बुद्ध निराकार धर्मकार बुद्ध का वह रूप है जो लोगों का दुःख-निवारण करने के लिए आकार में प्रकट होकर, प्रणिधान लेकर, साधनाकर के, अपना नाम प्रकटकर के लोगों का मार्गदर्शन और उद्धार करते हैं।

बुद्ध के इस स्वरूप का मूलतत्त्व करुणा है। विभिन्न साधनों द्वारा वे अनगिनत प्राणियों का उद्धार करते रहते हैं। सब वस्तुओं को जलाकर भस्म करनेवाली अग्नि के समान, वे प्राणियों के क्लेशों के ईन्धन को जला देते हैं और धूल को उड़ा ले जानेवाले पवन के समान प्राणियों के दु:ख की धूल उड़ ले जाते हैं।

निर्माणकाय के बुद्ध, बुद्ध के उद्धार को परिपूर्ण रूप देने के लिए, लोगों की विभिन्न प्रकृतिया के अनुसार रूप धारण करके जन्म लेते हैं, प्रव्रजित होते हैं, सम्यक्‌सबोधि प्राप्त करते हैं। और विभिन्न उपायों से लोगों का मार्गदर्शन करके व्याधि तथा मृत्यु का दर्शन कराके उन्हें सावधान करते हैं।

बुद्ध का शरीर वस्तुत: एक धर्मकाय ही है; क्योंकि प्राणियों की प्रकृतियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं, बुद्ध का शरीर अलग-अलग रूप धारण करके प्रकट होता है। फिर भी प्राणियों की अभिलाषाओं, उनके आचरण, उनकी योग्यताओं के अनुसार उनको दिखाई देनेवाले बुद्ध-रूप भिन्न होते हुए भी, बुद्ध तो उन्हें केवल एक ही सत्य का दर्शन करात हैं।

बुद्ध का शरीर इस प्रकार तीन कायों में बाँटा गया है, फिर भी उनका उद्देश्य केवल एक ही है—प्राणियों का उद्धार करना।

अपरिमित उत्तम शरीरों से सभी क्षेत्रों में बुद्ध प्रकट होते रहते हैं, तो भी

वे शरीर बुद्ध नहीं हैं। क्योंकि बुद्ध का कोई पार्थिव शरीर नहों होता। केवल निर्वाणमय शरीर के रूप में वे सब वस्तुओं में व्याप्त होते हैं और सत्य का साक्षात्कार करने वाले मनुष्य के सामने बुद्ध सदा प्रकट होते रहते हैं।

2
बुद्ध के दर्शन

1. बुद्ध का इस संसार में उत्पन्न होना बहुत दुर्लभ है। बुद्ध इस समय इस संसार में निर्वाण प्राप्तकर, धर्म का उपदेश करके, भ्रम के जाल को तोड़कर, वासनाओं के मूल को उखेड़कर, पाप के उद्‌गम को बन्द कर देते हैं। बिना किसी निर्बन्ध के अपनी इच्छा के अनुसार इस संसार में विचरण करते हैं। इस संसार में बुद्ध का आदर करने से बढ़कर और कुछ भी कल्याणकारी नहीं है।

बुद्ध इस संसार में इस उद्देश्य से अवतीर्ण होते हैं कि धर्म का उपदेश करके प्राणियों का सर्वोच्च कल्याण कर सकें। दु:ख-कष्ट-पीड़ित लोगों का अपने भाग्य-भरोसे छोड़ना, उनकी उपेक्षा करना बुद्ध के लिए संभव नहीं, इसीलिए बुद्ध इस दु:खमय संसार में अवतीर्ण होते हैं।

विवेकहीन, अन्यायपूर्ण, कामनालोलुप, शरीर और मन से अध: पतित, इस क्षणिक संसार में धर्म का उपदेश करना बहुत कठिन कार्य है। केवल अपनी महाकरुणा के कारण बुद्ध इस कठिनाई पर विजय पाते हैं।

2. बुद्ध इस संसार के सभी प्राणियों के कल्याण-मित्र हैं। क्लेशों के

भारीबोझ के नीचे दबे हुए मनुष्य को देखते ही बुद्ध करुणा करके उसका बोझ बँटाने लगते हैं।

बुद्ध इस संसार के सच्चे शास्ता, गुरु हैं। मूढ़, मोहग्रस्त मनुष्य के अज्ञान-तिमिर को वे प्रजा की किरणों से ध्वस्त कर देते हैं।

जिस तरह बछड़ा कभी गाय से नहीं बिछुड़ता, उसी तरह एक बार जिसने बुद्ध का उपदेश सुन लिया, वह उनसे कभी अलग नहीं हो सकता। उनके उपदेश से वह सदा आनंद का अनुभव करता रहता है।

3. चाँद छिप जाता है तब लोग समझते हैं कि उसका अस्त हो गया; और वह प्रकट होता है तब लोग कहते हैं कि उसका उदय हो गया। किन्तु चाँद तो सदा विद्यमान है, उसका उदयास्त नहीं होता। उसी प्रकार बुद्ध भी सदा विद्यमान हैं, किन्तु प्राणियों को ज्ञान देने के लिए, परिनिर्वाण का अभास कराते हैं।

लोग चाँद को पूर्ण होता हुआ या घटता हुआ कहते हैं, किन्तु चाँद तो सदा पूर्ण होता है। वह न तो बढ़ता ह, न घटता है। उसी प्रकार बुद्ध भी सदा विद्यमान हैं; न तो उनका जन्म होता है, न मृत्यु। केवल जिसकी जैसी दृष्टि होती है उसके अनुसार वे जन्म लेते हुए या मरते हुए दिखाई देते हैं।

चाँद सब पर उदित होता है। नगर पर, गाँव पर, पहाड़ पर, नदी पर, तालाब के भीतर भी, घट के अंदर भी, पत्ते की नोक पर लटकती हुई

ओस की बिन्दु में भी दिखाई देता है। आदमी सैकड़ों मील चले तो भी चाँद उसके साथ-साथ चलता है। स्वयं चाँद में कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु देखनेवाले आदमी के अनुसार वह अलग-अलग दिखाई देता है। उसी प्रकार बुद्ध भी, संसार के प्राणियों के अनुसार अपरिमित रूप प्रकट करते हैं, किन्तु वे अनादि-अनंतकाल तक विद्यमान रहते हैं, उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

4. बुद्ध का इस संसार में अवतीर्ण तथा अन्तर्हित हो जाना भी हेतु-प्रत्यय के अधीन ही होता है। प्राणियों को धर्म का उपदेश देने का जब समय आता है तब वे संसार में प्रकट होते हैं, जब वह हेतु-प्रत्यय समाप्त हो जाता है तब वे इस संसार से अन्तर्हित हो जाते हैं।

बुद्ध में जन्म-मृत्यु के लक्षण दिखाई देने पर भी, वास्तव में न वे जन्म लेते हैं न उसकी मृत्यु होती है। इस विवेक को ग्रहण करके, बुद्ध द्वारा दर्शाए जानेवाले जन्म-मृत्यु तथा सभी वस्तुओं की अनित्यता से विचलित न होकर, सच्चे निर्वाण को प्राप्तकर प्रज्ञापारमिता की प्राप्ति कर लेनी चाहिए।

यह पहले ही कहा गया है कि बुद्ध पार्थिव शरीर न होकर निर्वाण होते हैं। पार्थिव शरीर तो वास्तव में एक पात्र होता है, उसे निर्वाण से भर देने से ही वह बुद्ध कहा जाएगा। इसलिए पार्थिव शरीर से आसक्त होकर, बुद्ध के चल बसने से दुःखी होनेवाला मनुष्य सच्चे बुद्ध को देख नहीं सकता।

वास्तव में सभी वस्तुओं की मूलप्रकृति जन्म-मृत्यु, आवागमन, पाप-पुण्य के भेदों से विरहित है। सभी वस्तुएँ शून्य होकर सम होती हैं।

ये भेद तो देखनेवाले की विकृत दृष्टि के कारण पैदा होते हैं। बुद्ध का सच्चा रूप रूप वास्तव में न तो प्रकट होता है न अन्तर्हित होता है।

3
बुद्ध के सद्गुण

1. बुद्ध पाँच उत्तम गुणों (धर्मों) के कारण पूजित होते हैं। वे हैं–श्रेष्ठ आचरण (शील), श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन, श्रेष्ठ प्रज्ञा, निर्वाण के मार्ग का सुस्पष्ट उपदेश करने की योग्यता तथा लोगों के उपदेश के अनुसार आचरण करा लेने की सामर्थ्य।

उनके अतिरिक्त बुद्ध के आठ श्रेष्ठ सद्गुण हैं। पहला, बुद्ध प्राणियों को हित और सुख प्रदान करते है। दूसरा, बुद्ध के उपदेश से इस संसार में तुरंत हित होता है। तीसरा, वे क्या पुण्य है क्या पाप; क्या सत् है, क्या असत्–इस बात का ठीक उपदेश करते हैं। चौथा, सम्यक् मार्ग का उपदेश करके निर्वाण प्राप्त कराते हैं पाँचवाँ, सभी लोगों का एक ही प्रकार से मार्गदर्शन करते हैं। छठवाँ, बुद्ध में अभिमान की भावना नहीं होती। सातवाँ, वे जो बोलते हैं, उसका आचरण करते हैं, जो आचरण करते हैं वही बोलते हैं। आठवाँ वे बिना किसी संभ्रम के संकल्प की पूर्तिकर के, पूर्ण रूप से अपना आचरण संपादित करते हैं।

बुद्ध ध्यान में प्रविष्ट होकर शम और शांति को प्राप्तकर, सभी लोगों

के प्रति प्रेम, दया और पक्षपातहीनता की भावना धारणकर, हृदय के सभी मलों को हटाकर, ऐसा आनन्द धारण करते हैं जो केवल पवित्र मनुष्य ही धारण कर सकता है।

2. ये बुद्ध संसार के सभी प्राणियों के माता-पिता हैं। बच्चा पैदा होने पर सोलह महीने तक माता-पिता बच्चे की आवाज़ में आवाज़ मिलाकर तुतलाती बोली बोलते हैं। उसके बाद धीरे-धीरे उसे वयस्कों की बोली सिखाते हैं। उसी प्रकार बुद्ध भी आरंभ में लोगों की समझ में आ सके ऐसी भाषा में उपदेश देते हैं, उनकी दृष्टि के अनुसार उनके सामने अपना रूप प्रकट करते हैं और उन्हें शांतिमय कंपहीन स्थिर क्षेत्र में निवास देते हैं।

बुद्ध तो एक ही भाषा द्वारा उपदेश करते हैं, किन्तु सब प्राणी अपने-अपने स्वभाव के अनुसार उसे सुनकर प्रसन्न होते हैं कि भगवान ने मेरे लिए ही यह उपदेश किया है।

बुद्ध की आध्यात्मिक अवस्था भ्रांति में फँसे हुए मनुष्य के मन के परे है। शब्दों द्वारा उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। अगर किसी तरह उस अवस्था को दर्शाना ही हो, तो दृष्टान्तों द्वारा ही वह संभव है।

गंगा नदी सदा कछुए या मछलियों, घोड़ों या हाथियों के कारण गन्दी होती रहती है, फिर भी उसका जल पवित्र होता है। बुद्ध भी इस नदी के समान हैं। दूसरे संप्रदायों की मछलियों या कछुओं आदि द्वारा स्पर्धावश

उनसे विद्रोह करने पर भी उनका मन यत्किंचित् भी विचलित नहीं होता, पवित्र ही रहता है।

3. बुद्ध की प्रज्ञा सभी धर्मों का ज्ञान प्राप्तकर, किसी एक ओर न झुकनेवाले, दो अतिरेकों से मुक्त मध्यम-मार्ग (मध्यम-प्रतिपद्) पर स्थित है। वह तो सभी लिपियों या भाषाओं की सीमा लाँघकर सभी लोगों के विचारों का जानकर, क्षणभर में इस संसार की सभी बातें जान लेती है।

शांत समुद्र में आकाश के सभी तारे प्रतिबिम्बित होते हैं, बुद्ध की प्रज्ञा के समुद्र में सभी लोगों का हृदय या उनकी भावनाएँ अथवा अन्य सभी वस्तुएँ जैसी हैं वैसी ही प्रकट होती हैं। इसलिए बुद्ध को सर्वज्ञ कहते हैं।

बुद्ध को यह प्रज्ञा सभी मनुष्यों के हृदय को स्पर्श करती है, प्रकाश देती है, मनुष्यों को इस संसार का अर्थ, उतार-चढ़ाव और कार्य-कारण के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से सिखाती है। सचमुच बुद्ध की प्रज्ञा के कारण ही मनुष्य अच्छी तरह इस संसार को समझ सकते हैं।

4. बुद्ध केवल बुद्ध के रूप में ही प्रकट होती हैं, ऐसी बात नहीं है। कभी तो वे पिशाच बनते हैं, कभी स्त्री का रूप धारण करते हैं, कभी देवस्वरूप बनते हें, कभी राजा या उसका मंत्री बनते हैं। कभी-कभी वेश्यालयों या जूए के अड्डों में भी प्रकट होते हैं।

व्याधि के समय वे दवा देनेवाले भैष्यज्य बनकर उपदेश देते हैं, युद्ध के समय वे सद्धर्म का उपदेश देकर वे संकट से बचा लेते हैं। संसार को स्थिर, नित्य वस्तु माननेवालों को वे अनित्यता का सिद्धान्त सिखाते हैं। अहंकार और अभिमान से भरे हुए, लोगों का वे अनात्मा का विचार समझाते हैं। जो लोग सांसारिक सुखों के जाल में फँसे हुए हैं उनको वे संसार के दु:खमय रूप, उसकी निस्सारता का दिग्दर्शन कराते हैं।

बुद्ध का प्रभाव इस संसार की सभी बातों पर दिखाई देता है, किन्तु वह सब धर्मकाय के उद्गम से प्रवाहित होता है। अपरिमित आयु भी, अपरिमित प्रकाश की मुक्ति भी, सबके मूल में वे धर्मकाय बुद्ध ही होते हैं।

5. यह संसार जलते हुए घर के समान सुख-चैन नहीं देता। सभी प्राणी अविद्या-जनित गहन अंधकार से आच्छदित होकर क्रोध, द्वेष, मत्सर आदि क्लेशों से विमूढ़ हो जाते हैं। बच्चे को जैसे मां की आवश्यकता होती है, वैसे ही सभी प्राणियों को बुद्ध की करुणा की शरण लेनी चाहिए।

बुद्ध सचमुच सभी ऋषियों में श्रेष्ठ ऋषि हैं, संसार के पिता हैं। इसलिए सभी प्राणी बुद्ध के पुत्र हैं। लेकिन सांसारिक प्राणी हैं वे सब कुछ भूलकर इस संसार के सुखों में ही ड्बे रहते हैं। अपने कष्टों को समझने की प्रज्ञा उनमें नहीं होती। यह संसार दु:ख से भरा है और जरा, व्यधि और मृत्यु की ज्वालाएँ सदा जलती रहती हैं।

बुद्ध भ्रांतिमय संसाररूपी जलते हुए घर से हटकर, शांत और एकान्त उपवन में रहते हुए इस प्रकार पुकारते हैं :

''यह त्रैधातुक संसार मेरी अपनी संपत्ति है और उसमें रहनेवाले सभी प्राणी मेरे पुत्र हैं। अपरिमित क्लेशों से उनका उद्धार करनेवाला मैं अकेला ही हूँ।''

क्योंकि बुद्ध धर्म के महान शास्ता हैं, वे अपनी इच्छा के अनुसार सब प्राणियों को उपदेश कर सकते हैं। बुद्ध केवल प्राणियों को शांति प्रदानकर, सुख की स्थापना के लिए इस संसार में उत्पन्न होते हैं। प्राणियों को दुःख से मुक्ति दिलाने के लिए बुद्ध ने धर्म का उपदेश किया। किन्तु कामलोलुप प्राणी न तो कान लगाकर उसे सुनते हैं, न उसकी ओर ध्यान देते हैं।

फिर भी इस उपदेश का श्रवणकर के प्रसन्न होने वाला मनुष्य ऐसी आध्यात्मिक अवस्था में पहुँच जाता है, जहाँ से उसका कभी इस भ्रांतिमय संसार में लौट आना संभव नहीं होता। बुद्ध ने कहा है, ''केवल श्रद्धा के द्वारा ही मेरे धर्मोपदेश मे प्रवेश करना संभव है।'' मतलब यह है, कि बुद्ध के वचनों पर श्रद्धा रखने से ही उपदेश सफल होता है, अपनी बुद्धि के बल पर नहीं। इसलिए बुद्ध के उपदेश का श्रवणकर के, उसपर आचरण करना चाहिए।

धर्म

प्रथम अध्याय

हेतु-प्रत्यय

1
चार आर्यसत्य

1. यह संसार दु:खमय है। जन्म दु:ख है, जरा दु:ख है, व्याधि और मृत्यु सब दु:ख है। अप्रिय व्यक्ति से संयोग दु:ख है, प्रिय व्यक्ति से वियोग दु:ख है, तथा इच्छाओं का पूरा न होना भी दु:ख है। वास्तव में जो जीवन आसक्ति से मुक्त वह दु:खमय है। वह दु:ख पहला आर्यसत्य है।

मनुष्य-जीवन के इस दु:ख का उद्‌भव कैसे होता है यह सोचें तो वह नि:संशय मनुष्य-हृदय में बसी हुई तृष्णा के कारण होता है। और इस तृष्णा का मूल मानव शरीर की जन्मजात प्रबल वासनाओं में है। जीवित रहने की प्रबल आकांक्षा पर आधारित वासनाएँ कामनाओं की ओर इतनी तीव्रता से आकर्षित होती रहती हैं कि कभी-कभी कामनाएँ मृत्यु तक का कारण बन जाती हैं। यह दु:ख का हेतु आर्यसत्य है।

इस तृष्णा को मूल से उखाड़कर, सभी आसस्तियों से युक्ति पाने पर

मनुष्य के दुःख का निरोध होता है! यह दुःख निरोध आर्य्सत्य है।

इस दुःख के संपूर्ण निरोध की अवस्था को प्राप्त करने के लिए आर्य अष्टांगिक मार्ग का आचरण करना चाहिए। यह आर्यअष्टांगिक मार्ग है–सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति सम्यक् समाधि। यह अष्टांगिक मार्ग दुःखनिरोधगामिनी प्रतिपदा है।

यह संसार दुःख से भरा हुआ है, इसलिए ये चार आर्यसत्य मनुष्यों को अच्छी तरह आत्मसात करने चाहिए। जो भी इस दुःख से मुक्ति चाहता है उसे तृष्णा का संपूर्ण क्षय करना होगा। तृष्णा और दुःख से मुक्ति निर्वाण द्वारा ही प्राप्त होता है और निर्वाण इस आर्यअष्टांगिक मार्ग से ही प्राप्त होता है।

2. मार्ग का आचरण करने की आकांक्षा रखनेवाले मनुष्य को भी इन चार आर्यसत्यों का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए। इनका ज्ञान न होने के कारण दीर्घकाल तक भ्रांति के जंगल में भटकते रहना होगा। जो इस चार आर्यसत्यों का ज्ञान रखते हैं, उन्हें निर्वाण–चक्षु प्राप्त कहा जाता है।

इसलिए चित्त को एकाग्रकर बुद्ध के उपदेश को ग्रहणकर, इन चार

आर्यसत्यों के सिद्धान्त को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। किसी भी युग का संत, यदि वह सच्चा संत हो, तो उसने इन चार आर्यसत्यों का साक्षात्कार किया होगा तथा वह इन चार आर्यसत्यों का उपदेश करता होगा।

जब मनुष्य इन चार आर्यसत्यों को पूर्णतः आत्मसात् कर लेता है तभी वह लोभ से मुक्त होता है; तब वह दुनिया से लड़ाई–झगड़ा नहीं करता, हिंसा नहीं करता, चोरी नहीं करता, व्यभिचार नहीं करता, छल–कपट नहीं करता, निन्दा नहीं करता, चापलूसी नहीं करता, ईर्ष्या नहीं करता, क्रोध नहीं करता, जीवन की अनित्यता को नहीं भूलता, कभी भी सन्मार्ग से विचलित नहीं होता।

3. सन्मार्ग का आचरण करने का अर्थ ह, मानो दीपक लेकर अंधेरे कमरे में प्रवेश करना : अंधः कार तुरन्त हट जाएगा और कमरा प्रकाश से भर जाएगा।

जिन्होंने चार आर्यसत्य के अभिप्राय को समझ लिया है और सन्मार्ग का अनुसरण करना सीख लिया है वे अज्ञानान्धकार को मिटाने वाले ज्ञान के प्रकाश से संपन्न हो जाते हैं।

बुद्ध केवल इन चार आर्यसत्यों का दिग्दर्शन कराकर हीं प्राणियों का मार्गदर्शन करते हैं। जो इनको अच्छी तरह आत्मसात् करते हैं, वे इन चार आर्यसत्यों द्वारा, इस क्षणभंगुर संसार में सम्यक्संबोधि प्राप्त कर संसार के प्राणियों के रक्षक बनते हैं, आश्रय बनते हैं। ऐसा इसलिए होता है कि इन

चार आर्यसत्यों का स्पष्ट ज्ञान हो जाने पर तृष्णा की मूल अविद्या का नाश हो जाता है।

बुद्ध के शिष्य इन चार आर्यसत्यों द्वारा उपदेशों को ग्रहण कर, सभी सिद्धान्तों को समझने के लिए, आवश्यक प्रज्ञा और पुण्य प्राप्तकर, किसी भी मनुष्य के सामने खड़े होकर स्वेच्छा से धर्म का उपदेश करने में समर्थ होते हैं।

2
अद्‌भुत कर्मसंबंध

1. जैसे प्राणियों के दु:ख का कारण है, तथा उन दु:खों के विमोक्ष के लिए साधना कारण बनती है, वैसे ही सभी वस्तुएँ हेतु (परिस्थिति) के होने से उत्पन्न होती है, हेतु के नष्ट होने से नष्ट होती है।

वर्षा का होना, हवा का चलना, फूलों का खिलना, पत्तों का झड़ना सभी हेतु-निर्भर है और हेतु के अभाव से समाप्त हो जाता है।

यह शरीर भी माता-पिता के हेतु से पैदा होकर, अन्न से परिपुष्ट होता है; तथा यह चित्त भो अनुभव और ज्ञान के कारण सुसंस्कृत हुआ है।

अत:, यह शरीर और चित्त दोनों ही हेतु-निर्भर हैं और हेतु परिवर्तन

से परिवर्तित होते रहते हैं।

जाल अनेक ग्रंथियों से बना होता है। ये ग्रंथियाँ परस्पर जुड़कर जाल बनाती हैं वैसे ही इस संसार की सभी वस्तुएँ परस्पर जुड़ी हुई हैं।

जाल की केवल एक ग्रंथि को जाल मानना या जाल से स्वतंत्र मानना बहुत बड़ा भ्रम है।

जाल इसलिए जाल है कि वह कई ग्रंथियों के आपस में जुड़े होने से बना है और जाल की हर ग्रंथि एक दूसरे से संबद्ध और गुंफित है।

2. आवश्यक परिस्थितियाँ (हेतु) जुट जाने से फूल खिलाता है, आवश्यक परिस्थितियाँ जुट जाने से पत्ता झड़ जाता है। न फूल निर्हेतु खिलता है न पत्ता निर्हेतु झड़ता है।

क्योंकि खिलना भी सहेतुक और झड़ना भी सहेतुक है, सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं। किसी भी वस्तु के अकेला अस्तित्व नहीं होता, न कोई वस्तु नित्य स्थिर रहती है।

सभी वस्तुओं की उत्पत्ति हेतुजन्य और उनका विनाश भी हेतुजन्य है: यह शाश्वत नियम है, कभी नहीं बदलता इसलिए परिवर्तनशीलता, नित्य स्थिरता का न रहना यह इस विश्व का ऐसा नियम है जिसे कभी बदला नहीं जा सकता; केवल यही अनंत काल तक अपरिवर्तनशील है।

3
प्रतीत्य समुत्पाद

1. तो फिर, लोगों के 'शोक, व्यथा, दु:ख और वेदना का उद्भव कैसे

होता है? ये सब आसक्ति के कारण पैदा होते हैं।

लोग संपत्ति के प्रति आसक्त होते हैं, यश और कीर्ति के प्रति आसक्य होते हैं, सुखोपभोगो के प्रति आसक्त होते हैं, अपने आप के प्रति आसक्त होते हैं। इस आसक्ति के कारण दु:ख और क्लेश पैदा होते हैं।

जरा व्याधि एवं मृत्यु की अपरिहार्यता के अतिरिक्त भी यह संसार आदिकाल से अनेक विपत्तियों से भरा हुआ है। इस कारण दु:ख और क्लेश बढ़ जाते हैं।

दु:ख, क्लेश और सभी विपत्तियों का मूल कारण आसक्ति है; आसक्ति से मुक्ति पाने पर सभी दु:ख और क्लेश समूल नष्ट हो जाते हैं।

लोभ और लालसा का मूल कारण मानव–हृदय स्थित अविद्या और झूठी आकांक्षाएँ हैं।

अविद्या का अर्थ है वस्तुओं की सतत परिवर्तनशीलता को न देख पाना: हेतुफल के शाश्वत नियम के प्रति अज्ञान अविद्या है। जो वस्तुएँ प्राप्त होना संभव नहीं, उनके प्रति लालसा रखना, आसक्ति रखना लोभ है।

मूलत: वस्तुओं में कोई भेद नहीं होता, अविद्या और लोभ के प्रभाव

के कारण उनमें भेद दिखाई देता है। मूलतः वस्तुएँ अपने–आपमें अच्छी या बुरी नहीं होतीं, अविद्या और लोभ के कारण उनमें अच्छाई या बुराई दिखाई देती है।

सभी लोग, सदा बरे विचारों से फँसकर, मूढ़ता के कारण सम्यक् दृष्टि खो बैठते हैं; और अहंकार से लिप्त होकर गलत व्यवहार कर बैठते हैं, जिसके फलस्वरूप सतत भ्रांति में फँसे रहते हैं।

लोग कर्म के खेत में चित्तविक्षेप का बीज बोकर, अविद्या की मिट्टी से उसे ढँककर, कामलोलुपता की वर्षा से उसे भिगोकर, अहंकार के पानी से सींचकर असत् विचारों की फसल कमाते हैं और भ्रांति के इस बोझ को ढोये चले जाते हैं।

2. वास्तव में लोगों का चित्त ही शोक, व्यथा, दुःख और क्लेशों से भरे इस भ्रांतिमय संसार को पैदा करता है।

यह भ्रांतिमय संसार इस चित्त से प्रकट हुई चित्त की छाया–मात्र है, और विमोक्ष का संसार भी इसी चित्त से पैदा होता है।

3. इस संसार में तीन मिथ्या दृष्टियाँ हैं।

यदि इन दृष्टियों को अपना था जाए, तो इस संसार की सभी बातों को अस्वीकार करना पड़ेगा।

पहली दृष्टि से अनुसार सभी मानवी क्रियाकलाप दैवाधीन होते हैं। द्सरी के अनुसार सब का कर्ता और नियामक ईश्वर है। तीसरी के अनुसार सब कुछ बिना किसी हेतु या प्रत्यय के अचानक होता है।

यदि सब कुछ दैवाधीन है तो इस संसार में सभी सत्कर्म या दुष्कर्म दैव–निर्धारित हैं, सुख और दुःख दोनों ही दैवाधीन होकर, दैव के अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं है।

तब तो मनुष्यों के लिए करणीय, अकरणीय कुछ भी नहीं रह जाता; मनुष्य और इस संसार के सुधार एवं उन्नयन की सारी संभावनाएँ समाप्त हो जाती है।

यही बात ईश्वर को सब का कर्ता और नियामक तथा सब घटनाओं को निर्हेतुक–निर्प्रत्यय मानने वाली मिथ्या दृष्टियों पर भी लागू होती है। इनको माननेवाले लोग निराशान्धकार में भटकते हुए सत्कर्मों को करने और आत्मिक विकास के सभी प्रयत्नों को छोड़ बैठते हैं।

वास्तव में ये तीनों मिथ्या दृष्टियाँ हैं। सभी की उत्पत्ति और विनाश भी हेतुजन्य है।

द्वितीय अध्याय

मनुष्य का मन एवं वस्तुओं का यथार्थ रूप

1

अनित्यता एवं अनात्मकता

1. यद्यपि शरीर तथा मन दोनों ही हेतुजन्य हैं, पर इससे आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। पंचमहाभूतों को विग्रह होने के कारण यह शरीर अनित्य और नाशवान है।

यदि इस शरीर में आत्मा होती, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहे कर सकता है।

राजा अपने राज्य में, दण्डनीय लोगों को दण्ड देता है, पुरस्कार के योग्य लोगों को पुरस्कार देता है, अपनी इच्छा के अनुसार सब कुछ कर सकता है। लेकिन इतनी सामर्थ्य के रहते और इच्छा न होते हुए भी वह व्याधिग्रस्त होता है, न चाहने पर भी वृद्ध हो जाता है; शरीर के संबंध में एक भी बात उसकी इच्छा के अनुसार नहीं होता।

उसी प्रकार मन भी आत्मसन्नद्ध नहीं है। हेतु-प्रत्यय का समूह हाने से चित्त भी नित्य परिवर्तनशील है।

यदि मन आत्मसन्नद्ध होता, तो वह अपनी इच्छा के अनुसार जो चाहे

कर सकता था। किन्तु वास्तविकता क्या है? इच्छा न होते हुए भी मन पाप का विचार करता, और न चाहने पर भी पुण्य से दूर भागता है, एक भी बात उसकी इच्छा के अनुसार नहीं हो पाती।

2. अगर कोई पूछे कि क्या यह शरीर अपरिवर्तनशील और अनित्य है, तो उत्तर यही होगा कि अनित्य है।

अनित्य वस्तु दु:खय होती है या सुखमय, ऐसा प्रश्न किए जाने पर, कोई भी, जब उसके ध्यान में आ जाए कि जो जन्म लेता है वह अंत में जरा और व्याधिग्रस्त होकर मृत्यु के अधीन हो जाता है तो यही उत्तर देगा कि दु:खमय होती है।

तो जो अनित्य और परिवर्तनशील है, दु:खमय है, उसे आत्मा मानकर अपनी वस्तु मानना बहुत बड़ा भ्रम है।

मन भी अनित्य है, दु:खमय है, अनात्म है। इसलिए व्यक्ति के मन और शरीर एवं उसे घेरे हुए जो बाह्‌य परिवेश हैं उनसे लगाव, उन्हें 'मैं' और 'मेरा' समझना भूल है।

यह प्रजाहीन मन ही है, जो 'मैं' या 'मेरा' मानकर आसक्य होता है।

शरीर और मन एवं इसका परिवेश हेतुजन्य हैं इसलिए सतत परिवर्तनशील एवं अस्थिर हैं।

मनुष्य का अस्थिर और चंचल मन बहते हुए जल या जलती हुई दीप–

शिखा के समान, या हर समय उछल-कूद करते हुए बन्दर के समान है; एक क्षण भी शान्त नहीं होता।

प्रज्ञावान मनुष्य को, ये बातें देख या सुनकर, शरीर और मन के प्रति आसक्ति का सर्वथा त्याग करना चाहिए। शरीर और मन दोनों की आसक्ति से मुक्त हो जाने पर ही निर्वाण की प्राप्त होती है।

3. इस संसार में सभी मनुष्यों के लिए पाँच बातें पूर्णतया असंभव हें–पहली, बुढ़ापा आने पर शरीर को वृद्ध होने से रोकन; दूसरी, शरीर के व्याधिग्रस्त होते हुए भी, व्यधिग्रस्त होने से रोकना; तीसरी, शरीर क मरण-योग्य होते हुए भी, मरने से उसे रोकना; चौथी वस्तु के विनाश योग्य होते हुए भी, विनाश से उसे रोकना.; पाँचवीं, वस्तु के क्षीण होने योग्य होते हुए भी, क्षय से उसे रोकना।

संसार के सामान्य लोग कभी न कभी इन अपरिहार्य तथ्यों से टकराकर व्यर्थ दुःख और शोक में डूब जाते हैं, किन्तु जिन्होंने बुद्ध के उपदेश का ग्रहण किया है वे अपरिहार्य तथ्यों को अपरिहार्य जानकर इस प्रकार व्यर्थ दुःख नहीं करते।

फिर इस संसार में चार सत्य हैं; पहला, सभी जीवित वस्तुएँ अविद्या से उत्पन्न होती हैं; दूसरा, सभी विषय-वासनाएँ अनित्य होती हैं, दुःखमय होती हैं, परिवर्तनशील होती है; तीसरा, जिसका भी अस्तित्व है, वह सब

अनित्य है, दु:खमय है, परिवर्तनशील है; चौथा, जिसे आत्मा कहा जा सके ऐसा कुछ भी नहीं है और इस संसार में 'मैं' और 'मेरा' भी कुछ नहीं है।

सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं और अनात्म हैं–इन तथ्यों का बुद्ध के इस संसार में प्रादुर्भाव होने या न होने से कोई सम्बन्ध नहीं है। ये चारों सत्य अकाट्य और अपरिवर्तनशील हैं। बुद्ध इसे जानते हैं, उसका साक्षात्कार करते और प्राणियों को उपदेश देकर उनका मार्ग-दर्शन करते हैं।

2
मन की रचना

1. भ्रांति और विमोक्ष दोनों मन से उत्पन्न होते हैं। सारा दृश्य-प्रपंच और सृष्टि मनोगत, मन में व्यापारों के ही कारण है; ठीक किसी जादूगर की जादुई सृष्टि की तरह।

मानव मन की चंचलता और उसके व्यापारों की कोई सीमा नहीं होती। मलीन मन से मलीन संसार पैदा होता है, निर्मल मन से निर्मल सृष्टि उत्पन्न होती है, अत: बाह्य जगत मन से अबाध, मन के परे नहीं है।

जिस प्रकार चित्रकार चित्र बनता है, वैसे ही बाह्य जगत मन द्वारा बनाया जाता है। बुद्ध द्वारा रचित जगत क्लेशों से मुक्त और पवित्र होता है, मनुष्य द्वारा रचित जगत क्लेशकर, मलीन और अपवित्र होता है।

मन कुशल चित्रकार के समान तरह-तरह की सृष्टियों का चित्रण करता है। इस संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है जो मनोव्यापार के द्वारा निर्माण नहीं की जा सकती। यही बात बुद्ध और मनुष्यों के लिए भी कही जा सकती है। इसलिए, जहाप्र तक सभी वस्तुओं का चित्रण करने का सवाल है, मन बुद्ध और मनुष्य इन तीनों में कोई भेद नहीं है।

बुद्ध को इस बात का सही ज्ञान होता है कि सभी वस्तुएँ मन से पैदा होती हैं। अतः प्रकार का ज्ञान रखनेवाला मनुष्य की वास्तविक बुद्ध को देख पाता है।

2. किन्तु यह मन सदा भय, दुःख और क्लेश से व्याप्त है। जो बातें घट चुकी हैं उनका उसे भय होता है और जो बातें अभी घटी नहीं या घट रही हैं, उनका भी। क्योंकि सारा घटनाक्रम अविद्याग्रस्त और लोभयुक्त मानव मन की उपज है।

इस अविद्याग्रस्त और लोभयुक्त मन से भ्रांतिमय संसार उत्पन्न होता है और उस भ्रांतिमय संसार के सब हेतु-प्रत्यय भी; संक्षेप में कहें, तो सब इसी मन के भीतर है, बाहर कहीं नहीं।

क्योंकि जन्म भी और मृत्यु भी दोनों ही मन से उत्पन्न होते हैं, इसलिए भ्रांतिमय जन्म-मृत्यु से संबद्ध मन के नष्ट हो जाने पर, भ्रांतिमय जन्म-मृत्यु के जगत का भी क्षय हो जाता है।

स्वनिर्मित भ्रांतिमय जगत से भीत मन अविद्या और मोहग्रस्त जीवन का निर्माण करता है। यदि हम यह समझ लें कि मन से परे भ्रांतिमय संसार नहीं है, तो मन निर्भय हो जाएगा और मलीनता से मुक्त होकर हम मोक्ष लाभ कर सकेंगे।

इस प्रकार यह मन से निर्मित जीवन–मरण–रूपी संसार मन के चलाये चलता है, उसी के शासन और बंधन में रहता है। भ्रांतिमय मन के कारण, दु:ख से परिपूर्ण संसार का निर्माण होता है।

3. सभी वस्तुएँ मन द्वारा ही नियंत्रित और शासित होती हैं। सभी मन के ही द्वारा निर्मित होती हैं। जैसे गाड़ी खींचनेवाले बैल के पीछे–पीछे चलती है, वैसे ही दु:ख मलीन आचार–विचारवाले मन का पीछा करता रहता है।

किन्तु यदि मनुष्य का आचार–विचार अच्छा है, शुभ और पवित्र है तो सुख उसकी छाया को तरह उसके पीछे–पीछे चलीता है। पापकर्म करने वाले लोगों को इह लोक में पापकर्म करने का दु:ख और परलोक में उनका बुरा फल भुगतना पड़ता है, जिससे उनके दु:ख की कोई सीमा नहीं रहती। किन्तु पुण्यकर्म करनेवाले लोग इह लोक में पुण्यकर्म करने का आनंद और परलाक में उसका अच्छा फल पाकर और अधिक सुखी होते हैं।

मन यदि अशुद्ध है, तो जीवनपथ दुर्गम हो जाता है, उस पर चलते हुए ठोकरें खाकर गिरना पड़ता है किन्तु यदि मन शुद्ध है, तो वही मार्ग प्रशस्त और सहज हो जाता है और यात्रा सुखमय होती है।

जो शरीर और मन की पवित्रता का आनंद उठाता है वह मार के जाल को तोड़कर बुद्ध के महाक्षेत्र की ओर प्रस्थान करता है। जिसका मन शम से परिपूर्ण होता है उसे शांति प्राप्त होती है और वह अधिकाधिक प्रयत्नपूर्वक दिन-रात अपने मन को संयत कर सकता है।

3
वस्तुओं का यथार्थ रूप

1. क्योंकि इस संसार की सभी वस्तुएँ हेतुजन्य हैं, इसलिए मूलतः उनमें कोई भेद नहीं होता। जो भेद दिखाई देता है वह केवल मनुष्यों की भ्रामक दृष्टि के कारण ही है।

आकाश में पूर्व-पश्चिम का कोई भेद नहीं होता, फिर भी लोग पूर्व-पश्चिम का भेद निर्माणकर, 'यह पूर्व है', 'वह पश्चिम है, ऐसा आग्रह रखते हैं।

गणित की संख्याओं में, एक से अनन्त तक की सभी संख्याएँ अपने आपमें परिपूर्ण होती हैं और उनमें परिमाण के कम-अधिक का कोई भेद नहीं होता है। फिर भी लोग लोभवश अपनी सुविधा के लिए उनके साथ

कम-अधिक का भेद जोड़ देते हैं।

मूलतः न जन्म है न मृत्यु, फिर भी लोग जन्म-मृत्यु में भेद करते हैं; मनुष्य के कर्म में अपने-आप में न कोई पुण्य होता है, न पाप, फिर भी लोग उसमें पाप-पुण्य का भेद देखते हैं, यह सब उनकी भ्रान्त दृष्टि के कारण होता है।

बुद्ध इन भेदों से परे रहते हैं, इस संसार को आकाश में गुजरने वाले बादल के समान अथवा आभास के समान देखते हैं। वे जानते हैं कि मन का लगाव और विलगाव सभी निरर्थक है। इसलिए वे मन के सभी व्यापारों से निर्द्वन्द्व और पृथक रहते हैं।

2. मनुष्य अपने मन के व्यापारों के कारण सभी वस्तुओं में आसक्त हो जाता है। वह संपत्ति में आसक्त होता है, धन में आसक्त होता है, कीर्ति में आसक्त होता है; जीवन में उसकी गहन आसक्ति होती है।

भव-अभव, पाप-पुण्य, सत्य-असत्य सभी वस्तओं के प्रति आसक्त होकर, मायाजाल में फँसकर वह दुःख और क्लेशों को निमंत्रित करता है।

एक उदाहरण लें। एक मनुष्य ने लम्बी यात्रा करते हुए एक स्थान पर

एक बड़ी नदी देखकर इस प्रकार सोचा, ''इस नदी का इस ओर का किनारा खतरनाक, किन्तु उस ओर का किनारा सुरक्षित दिखाई देता है।'' यह सोचकर उसने नदी पार करने के लिए एक बेड़ा बनाया और उस बेड़े की सहायता से वह उस पार सुरक्षित उतर गया। वहाँ पहुँचकर उसने सोचा, ''इस बेड़े ने मुझे इस ओर सुरक्षित पहुँचा दिया है। इस बेड़े ने मेरी बड़ी सहायता की। इसलिए इस बेड़े को फेंक नहीं देना चाहिए। इसको कंधे पर उठाकर, जहाँ भी जाना हो वहाँ ले चलना चाहिए।

तो क्या यह कहा जा सकेगा कि उस मनुष्य ने बेड़े के प्रति जो करना आवश्यक था वही किया? कदापि नहीं। उसने एक अनावश्यक बोझ अपने कंधों पर लाद लिया। ऐसे आदमी को समझदार तो कदापि नहीं कहा जा सकता।

यह दृष्टान्त यही सिखाता है कि ''अच्छी वस्तु के प्रति भी आसक्त नहीं होना चाहिए और जब भी वह अनावश्यक बोझ हो जाए उसे फेंक देना चाहिए और बुरी वस्तु को तो तत्काल ही फेंककर मुक्ति पा लेनी चाहिए।''

3. वस्तुएँ न तो आती हैं, न जाती हैं, न उत्पन्न होती हैं, न नष्ट होती है; इसलिए न उन्हें पाया जाता है, न खोया जाता है।

बुद्ध उपदेश करते हैं कि सभी वस्तुएँ सत्–असत् की श्रेणी के परे होती हैं; न जन्त लेती हैं, न मरती हैं। अर्थात्, सभी वस्तुएँ हेतु–प्रत्ययों की एक कड़ी मात्र हैं। वस्तु के अपने स्वभाव का कोई वास्तविक अस्तित्व न होने के कारण वह सत् नहीं है; साथ ही क्योंकि वह

हेतु–प्रत्ययों से जुड़ी हुई हैं, इसलिए उसे असत् भी नहीं कहा जा सकता।

वस्तु का रूप देखकर उसके प्रति आसक्त हो जाना मोह हैं। यदि वस्तु का रूप देखकर भी उसके प्रति आसक्ति न पैदा हो, तो न भ्रान्त कल्पना होगी और न अंधमोह पैदा होगा। इस सत्य को आत्मसात्कर, अंधमोह से युक्त हो जाना ही साक्षात्कार है।

सचमुच यह संसार मिथ्या, स्वप्नवत है और इसकी धन–संपत्ति मृगतृष्णा के समान। चित्रलिखित दूरियों के समान दिखाई तो देती है, पर उसका कोई अस्तित्व नहीं होता सब कुछ मरीचिका के समान है।

4. यह विश्वास करना कि असंख्य हेतुप्रत्ययों के कारण उत्पन्न वस्तुएँ अनन्तकाल तक वैसी की वैसी असितत्व में रहेंगी, शाश्वतदृष्टि कहलाने वाला एक मिथ्या दृष्टिकोण है। साथ ही यह विश्वास करना कि ये सब पूर्णतया नष्ट होंगी, उच्छेदवादी या अनस्तित्ववादी एक और मिथ्या दृष्टिकोण है।

यह नित्यता, अनित्यता, सत्–असत् के भेद वस्तुओं के वास्तविक रूपों पर लागू नहीं होते, वे तो मनुष्य की मोहाच्छन्न दृष्टि के कारण दिखाई देते हैं। सभी वस्तुओं का मूल रूप मोहाच्छन्नता के कारण दिखाई देनेवाले इन भेदों से परे होता है।

हेतुप्रत्ययजन्य होने से सभी वस्तुएँ अनित्य हैं, परिवर्तनशील हैं। सत् वस्तुओं के समान वे अनन्त तथा नित्य नहीं होतीं। सतत परिवर्तनशील होने के कारण वे मरीचिका के समान हैं। लेकिन साथ ही यह भी सत्य है कि अपनी सतत परिवर्तनशीलता में वे अनन्त तथा नित्य भी होती हैं।

नदी मनुष्य को नदी के रूप में दिखाई देती है, किन्तु पानी को आग के रूप में देखनेवाले प्रेत को वह नदी के रूप में दिखाई नहीं देती। इसलिए नदी प्रेत के लिए 'है' ऐसा नहीं कहा जा सकता, और मनुष्य के लिए 'नहीं है' ऐसा नहीं कहा जा सकता।

इसी प्रकार सभी वस्तुओं के लिए 'हैं' भी नहीं कहा जा सकता 'नहीं, हैं' भी नहीं कहा जा सकता; सब मरीचिका के समान हैं।

लेकिन मूर्ख लोग इस संसर को सत्य समझकर उस भ्रान्त धारणा के अनुरूप आचरण करते हैं। और भ्रान्तिमय संसार को सत्य समझकर गलत आचरण के द्वारा अपना दु:ख–क्लेश बढ़ाते हैं।

इस संसार के लोग ऐसा मानते हैं कि इस भूल का मूल इस संसार में ही है; पर अगर यह संसार महज माया ही है, तो मनुष्य में यह पैदा करने की सामर्थ्य उसमें कहाँ से आई? भ्रांति तो इस सत्य का ज्ञान न

होने के कारण संसार को अनुभवसिद्ध या सत्य समझनेवाले अज्ञानी मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होती है।

प्रज्ञावान मनुष्य इस सत्य का साक्षात्कार कर, माया को माया के रूप में देखता है, अतः कभी यह भूल नहीं करता।

4
मध्यम-मार्ग

1. निर्वाण-प्राप्ति के मार्ग का स्वीकार करने वालों को दो अतियों से सदा बचना चाहिए–एक तो वासनाओं के वश में होकर, काम-सुख-लिप्त जीवन जीना, और दूसरा अपने चित्त और शरीर को व्यर्थ क्लेश देनेवाला तापस जीवन जीना।

इन दोनों अतियों से अलग हृदय-चक्षु खोलनेवाला प्रज्ञा का विकास करनेवाला, निर्वाण की ओर ले चलने वाला मध्यम-मार्ग है

यह मध्यम-मार्ग कौन-सा है? सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्-वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-व्यायाम् (प्रयत्न), सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि का यह आर्य-अष्टांगिक मार्ग है।

सभी वस्तुएँ हेतु प्रत्यय से उत्पन्न और क्षय होती रहती हैं, स्थिति और अभाव से विरहित होती हैं। पर मूढ़ लोग जीवन को कभी स्थिति के रूप में तो कभी अभाव के रूप में देखते हैं। केवल प्रज्ञावान लोग स्थिति और अभाव से परे होकर देखते हैं। यह मध्यम-मार्ग की सम्यक् दृष्टि है।

2. मान लीजिए, कि एक लकड़ी का कुन्दा किसी बड़ी नदी के प्रवाह में बहता जा रहा है। यदि यह कुन्दा दाएँ-बाएँ तट से न टकराए, बीच प्रवाह में न डूबे, जमीन पर न चढ़े, मनुष्य से बाहर न निकाला जाए, भँवर में न फँसे, और अन्दर से सड़ न जाए तो वह सीधा समुद्र में प्रवेश करेगा। जीवन भी प्रवाह में बहने वाले इस कुन्दे के समान है। यदि मनुष्य कामलालुप जीवन से आसक्त न हो अथवा व्यर्थ तपश्चर्या के पीछे पड़कर काय-क्लेश में न लगे; यदि मनुष्य अपनी अच्छाइयों का घमंड न करे या अपने दुष्कर्मो में लिप्त न हो; निर्वाण की खोज में न वह न तो मोह का तिरस्कार करे, न उससे भयभीत हो, तो वह मनुष्य मध्यम-मार्ग का आचरण कर रहा है।

निर्वाण-पथ पर चलनेवाले के लिए सब से महत्त्व की बात है कि वह किसी भी अति में न फँसकर सदा मध्यम-मार्ग का ही अनुसरण करता रहे।

यह जानकर कि वस्तुएँ न तो उत्पन्न होती हैं, न नष्ट होती हैं, न उनका कोई निश्चित स्वभाव ही होता है, उनके अधीन नहों होना चाहिए। अपने पुण्यकर्मो के भी अधीन नहीं होना चाहिए। किसी भी प्रकार के बंधन में फँसने से बचना चाहिए।

अधीन न होने का अर्थ है, लिप्त न होना, ग्रस्त न होना, आसक्त न होना। निर्वाण-पथ पर चलनेवाला मनुष्य न तो मृत्यु से डरता है, न जीने की कामना करता है। चंचल चित्त होकर इस या उस विचार के पीछे नहीं दौड़ता, न किसी भी एक विचार के चक्कर में फँसता है।

मनुष्य के हृदय में जैसे ही आसक्ति पैदा हुई, उसका मोहग्रस्त जीवन आरंभ हो जाता है। निर्वाण-पथ पर चलनेवाला मनुष्य न किसी बात का दु:ख करता है, न किसी वस्तु की कामना करता है; वह तो समदर्शी और शांत चित्त से जो कुछ सामने आए उसका सामना करता है।

3. निर्वाण का अपना कोई निश्चित रूप या स्वभाव नहीं है, जिससे कि वह अपने-आपको प्रकट कर सके; अत: स्वयं निर्वाण में ऐसा कुछ नहीं है, जिसका प्रबोधन किया जाए।

मोह और अज्ञान के कारण ही निर्वाण का अस्तित्व होता है; यदि ये नष्ट हो जाएँ, तो निर्वाण का भी लोप हो जाएगा। इसका विपरीत भी सत्य होगा। मोह और अज्ञान निर्वाण के कारण अस्तित्व में हैं; जब निर्वाण का लोप हो जाता है तब मोह और अज्ञान भी लुप्त हो जाते हं।

अत: निर्वाण ग्रहण करने की कोई वस्तु है, ऐसा समझने से सावधान रहिए, वरना वह भी बाधा-रूप बन जाएगा। जब अंधकारग्रस्त चित्त ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित हो जाता है, तब उसका लोप हो जाता है और

उसके लुप्त हो जाने पर निर्वाण नाम की वस्तु भी लुप्त हो जाती है।

निर्वाण की कामना करने और उससे ग्रस्त होने का अर्थ है कि मोह अभी शेष है; अतः निर्वाण के पथ पर चलने वाले लोगों को उससे ग्रस्त नहीं होना चाहिए और यदि वे निर्वाण तक पहुँच जाते हैं तो उन्हें वहीं तक रुकना नहीं चाहिए।

जब लोग इस अर्थ में निर्वाण प्राप्त करते हैं, तब उनके लिए सब कुछ निर्वाण बन जाता है; इसलिए लोगों को चाहिए कि वे तब तक निर्वाण के पथ पर आगे बढ़ते रहें, जब तक उनके लिए सांसारिक क्लेश और निर्वाण एक जैसे हो जाएँ, दोनों में कोई भेद न रहे।

4. यह जो सार्वभौम एकात्मता का सिद्धान्त है कि वस्तुओं में स्वभावतः कोई भेद-चिन्ह होते, इसी को शून्यता कहते हैं। शून्यता का अर्थ है अयथार्थता, अनुत्पत्ति, निःस्वभावता, अभिन्नता। क्योंकि वस्तुओं का न तो कोई अपना रूप होता है, न लक्षण, इसलिए हमारे लिए यह कहना संभव नहीं है कि उनकी उत्पत्ति होती है या उच्छेद होता है। वस्तुओं का ऐसा कोई अपना स्वभाव नहीं होता जिससे उनका भिन्न-भिन्न शब्दों में वर्णन किया जा सके; इसलिए वस्तुओं को अयथार्थ कहा जाता है।

जैसा कि ऊपर बताया गया है सभी वस्तुओं की उत्पत्ति और उच्छेद

हेतु और प्रत्ययों के कारण होता है, कोई भी वस्तु अपने-आप अस्तित्व में नहीं रह सकती, हर एक वस्तु अन्य हर वस्तु से संबंधित हुआ करती है।

जहाँ-जहाँ प्रकाश होता है वहाँ छाया होती है; जहाँ दीर्घता होती है वहाँ लघुता होती है, जहाँ सफेद होता है वहाँ काला भी होता है। इस प्रकार वस्तुओं को अपना स्वभाव स्वयंसिद्ध नहीं होता इसलिए उन्हें अयथार्थ कहा जाता है।

इस तर्क के अनुसार निर्वाण का अज्ञान या मोह से कोई पृथक अस्तित्व नहीं होता, न ही अज्ञान का निर्वाण से। क्योंकि वस्तुओं के मूल स्वभाव में कोई भिन्नता नहीं होती, उनमें परस्पर भिन्नता नहीं हो सकती।

5. लोग अक्सर वस्तुओं में उनकी उत्पत्ति तथा उच्छेद देखते रहते हैं। किन्तु जब मूलतः वस्तुएँ। उत्पन्न ही नहीं होतीं, तो उनका उच्छेद भी नहीं होता।

जब लोग वस्तुओं का यह यथार्थ रूप देखने की दृष्टि पाते हैं, तब उन्हें ज्ञान होता है कि वस्तुओं में उत्पत्ति-उच्छेद दोनों नहीं होते और तब उन्हें उनकी अभिन्नता का साक्षात्कार होता है।

लोग क्योंकि आत्मा के अस्तित्व को मानते हैं, इसलिए अपनी वस्तुओं के प्रति आसक्त हो जाते हैं। किन्तु मूल में जहाँ आत्मा ही नहीं होता, वहाँ अपनी वस्तुओं का होना केसे संभव है! आत्मा और अपनी वस्तुओं का कोई अस्तित्व नहीं होता, यह जानने से ही ''अद्वैत'' का साक्षात्कार होता है।

लोग पवित्रता या अपवित्रता को मानते हैं और उनका आग्रह रखते हैं किन्तु मूलतः वस्तुओं में न तो पवित्रता होती है न अपवित्रता ये दोनों मनष्य की कल्पना के ही खेल हैं।

लोग मानते हैं कि अच्छाई और बुराई मूलतः भिन्न होती हैं। किन्तु इन दोनों का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। निर्वाण-पथ पर चलने वाले लोग इन दोनों में कोई भेद नहीं करते, अतः वे न तो अच्छाई की प्रशंसा करते हैं और न बुराई की निन्दा और न अच्छाई का तिरस्कार करते हैं और न बुराई को क्षमा।

लोग दुर्भाग्य से डरकर सौभाग्य की अपेक्षा करते हैं। किन्तु इन दोनों का ध्यानपूर्वक निरीक्षण किया जाए, तो बहुत बार दुर्भाग्य ही सौभाग्य सिद्ध होता है और सौभाग्य दुर्भाग्य। ज्ञानी पुरुष सफलता से फूल न उठाकर या असफलता से निराश न होकर जीवन की सभी बदलती परिस्थितियों का समवृत्ति से सामना करना जानते हैं। इस प्रकार ''अद्वैत'' अभिन्नता के तत्त्व का साक्षात्कार किया जा सकता है।

इसलिए पारस्परिक भिन्नता जताने वाले ये सब शब्द जैसे कि सत् और असत्, सांसारिक तृष्णा और सत्य-ज्ञान, पवित्रता और अपवित्रता, अच्छाई और बुराई-ये सारे शब्द जो विरोधाभासी हैं, इसमें से कोई भी अपने सत्य स्वभाव में जाना या व्यक्त नहीं किया जा सकता। जब लोग ऐसी संज्ञाओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाली भावनाओं से मुक्त रहत हैं, तब उन्हें शून्यता के सार्वभौम सत्य का साक्षात्कार होता है।

6. जैसे कि निर्मल और सुगंधित कमल पुष्प साफ–सुथरे मैदान या उपत्यका में नहीं, अपितु दलदल के कीचड़ में ही पैदा होता है, वैसे ही सांसारिक आसक्तियों की दलदल में से ही संबोधि का पावन साक्षात्कार उत्पन्न होता है। यहाँ तक कि नास्तिकों की मिथ्या दृष्टियाँ और सांसारिक आसक्तियों का मोह भी संबोध का बीज वपन कर सकते हैं।

सभी प्रकार के संकटों को झेलकर समुद्र के तल तक डुबकी लगाए, बिना अमूल्य और अद्‌भुत रत्नों की प्राप्ति नहीं हो सकती, वैसे ही मोह के भवसागर में डुबकी लगाए बिना निर्वाण के रत्न की प्राप्ति असंभव है। विकराल गिरिकन्दराओं और उपत्यकाओं–जैसी आत्मरति और आत्मसम्मोह से आकंठ ग्रसत हुए बिना न पथ ढूँढ़ने की इच्छा पैदा होगी और न अन्त में निर्वाण प्राप्त किया जा सकेगा।

कहा जाता है कि पुराने काल में एक ऋषि सत्यमार्ग की खोज की इच्छा से तलवारों के पहाड़ पर चढ़े थे और उन्होंने अपने–आपको आग में भी झोंक दिया था, किन्तु उन्हें न तो चोट आई न वे आग में झुलसे। अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने सब सहन किया। पथ पर चलते हुए, संकटों का सामना करने की तैयारी हो, तो आत्मसम्मोह के तीक्ष्ण कंगूरों पर और द्वेष की आग में भी शीतल वायु बहती हुई मिलेगी और अन्त में उसे साक्षात्कार होगा कि जिन सांसारिक आसक्तियों और आत्मसम्मोह से वह संघर्ष कर रहा था व ही निर्वाण हैं।

7. बुद्ध का उपदेश हमें दो परस्पर–विरोधी दृष्टियों की विभिन्न धारणाओं

में अभिन्नता के सत्य का दर्शन कराता है। अच्छी और सत्य मानी जानेवाली किसी भी बात की कामना करना तथा बुरी ओर असत्य मानी जानेवाली किसी अन्य बात से भागते रहना–दोनों ही गलत हैं।

अगर लोग इस बात का आगह रखें कि सभी वस्तुएँ असत्य और परिवर्तनशील हैं तो उतनी ही बड़ी भूल होगी जितना यह आग्रह रखना कि सभी वस्तुएँ सत्य और अपरिवर्तनशील हैं। यदि मनुष्य आत्मदृष्टि से ग्रस्त हो जाए तो वह भी भूल होगी, क्योंकि वह उसे असंतोष या दुःख से बचा नहीं सकेगी। अगर वह विश्वास करे कि आत्मा नहीं है, तो वह भी भूल होगी और सत्यमार्ग की साधना से भी उसे कोई फल नहीं मिलेगा। अगर लोग आग्रह रखें कि सब कुछ दुःखमय है तो वह भी भूल होगी; यदि वे आग्रह रखें कि सब कुछ सुखमय है, तो वह भी भूल होगी। बुद्धि इन दुराग्रही धारणाओं से हटकर मध्यम प्रतिपद् का उपदेश करते हैं, जहाँ भिन्नता अभिन्नता में परिवर्तित होती है।

तृतीय अध्याय

बुद्धत्व

1
पवित्र मन

1. मनुष्य विविध प्रकार के और विविध मनोवृत्तियोंवाले होते हैं। कोई सयाने होते हैं तो कोई मूर्ख, कोई अच्छे स्वभाव के होते हैं तो कोई दुष्ट, कुछ लोगों का मार्गदर्शन करना आसान होता है तो कुछ लोगों का कठिन, कुछ लोगों के हृदय पवित्र होत हैं तो कुछ के अपवित्र; किन्तु जहाँ तक निर्वाण-प्राप्ति का सवाल है, ये सब भेद नगण्य हैं। यह संसार मानो विविध प्रकार के पौधों वाला एक कमल-सरोवर है, जिसमें विविध छटाओं के फूल खिले हुए हैं। कुछ सफेद हैं, कुछ गुलाबी, कुछ नीले, कुछ पीले; कुछ पानी के अंदर बढ़ते हैं, कुछ पानी पर अपने दल फैलाते हैं तो कुछ पानी के ऊपर अपने दल उठाते हैं। मनुष्य जाति में और भी अधिक भेद हैं। उनमें लिंक का भेद भी है, किन्तु यह कोई महत्त्वपूर्ण भेद नहीं है, क्योंकि उचित साधना के द्वारा पुरुष और स्त्रियाँ दोनां निर्वाण की प्राप्ति कर सकते हैं।

हाथी का महावत बनने के लिए मनुष्य में पाँच गुण होने चाहिए : अच्छा स्वास्थ, दृढ़ विश्वास, अध्यवसाय, सच्चाई तथा प्रजा। बुद्ध के आर्यमार्ग का अनुसरण करके निर्वाण प्राप्त करने के लिए भी ये पाँच गुण

अत्यावश्यक हैं। यदि ये पाँच गुण हों, तो पुरुष हो या स्त्री, किसी के लिए भी बुद्ध का उपदेश सीखने में दीर्घ काल की आवश्यकता नहीं होगी। क्योंकि मानवमात्र में निर्वाण-प्राप्ति के लिए अनुकूल स्वभाव निहित है।

2. निर्वाण-प्राप्ति की साधना में लोग अपनी आँखों से बुद्ध को देखते हैं, अपने हृदय से बुद्ध में विश्वास करते हैं। जो आँखें बुद्ध को देखती है और जो हृदय बुद्ध में विश्वास करता है, ये वही आँखें हैं और वही हृदय है, जो अब तक जन्म और मृत्यु के संसार में भटक रहे थे।

यदि राजा डाकुओं से तंग आ गया हो तो उन पर हमला करने के लिए पहले उसको उनका अड्डा ढूँढ़ निकालना होगा। वैसे ही जब मनुष्य सांसारिक आसक्तियों से ग्रस्त होता है, तो उनसे छुटकारा पाने के लिए पहले उसको उनका मूल जान लेना चाहिए।

जब आदमी घर में होता है और अपनी आँखें खोलता है तो वह सर्वप्रथम कमरे का अन्दरूनी भाग देखेगा और उसके बाद ही खिड़की के बाहर का दृश्य देख पाएगा। कमरे के अन्दर की चीज़ें देखे बिना, केवल बाहर की चीज़ें देखनेवाली आँख नहीं होती।

यदि इस शरीर के भीतर मन नाम की कोई वस्तु हो, तो उसे सर्वप्रथम शरीर के अन्दर की बातों को ठीक से जान लेना चाहिए। फिर भी लोग

प्राय: शरीर के बाहर की बातें ही अधािक जानते हैं और शरीर के भीतर की बातें कुछ भी जान नहीं पाते।

यदि मन शरीर के बाहर हो तो शरीर तथा मन परस्पर वियुक्त होंगे और मन को ज्ञात होने वाली बातें शरीर को ज्ञात न होंगी तथा शरीर को ज्ञात होनेवाली बातें मन को ज्ञात न होंगी। किन्तु वास्तव में मन को ज्ञात होनेवाली बातें शरीर अनुभव करता है, और शरीर को अनुभव होनेवाली बातें मन को ज्ञात होती है। अत: मन शरीर के बाहर है यह कहना असंगत है। आखिर, मनस्तत्त्व की विद्यमानता कहाँ है?

3. अचिंत्य पुरातन काल से सभी लोग इसलिए कर्म के बंधन में जकड़े हुए मोह में भटक रहे हैं कि वे दो मौलिक बातों से निपट अज्ञानी हैं।

पहली यह कि वे मोहग्रस्त चित्त को ही, जो कि जन्म-मृत्यु का मूल कारण है, अपना सत्य स्वभाव मान बैठते हैं। दूसरी यह कि वे नहीं जानते कि ठीक उनके मोहग्रस्त चित्त की उलटी तरफ छिपा हुआ होता है उनका साक्षात्कारप्रवण पवित्र चित्त, जो कि उनका सत्य स्वभाव है।

मनुष्य अपनी मुट्ठी भींचकर हाथ ऊपर उठाता है तब आँखें यह देखती हैं और चित्त इसे जानता है। किन्तु इसे जाननेवाला चित्त सत्य चित्त नहीं होता।

इस प्रकार का भेदमूलक चित्त केवल उन कल्पित भिन्नताओं को जाननेवाला चित्त होता है, जिन्हें लोभ तथा आत्म-संबंधित अन्य मनावृत्तिया

ने उत्पन्न किया है। यह भेदमूलक चित्त हेतु और प्रत्ययों के अधीन होने से उसका कोई यथार्थ स्वरूप नहीं होता और वह सतत परिवर्तनशील होता है। जहाँ लोग ऐसे चित्त को यथार्थ रूपवाला समझने लगते हैं, वहाँ मोह उत्पन्न हो जाता है।

फिर मनुष्य जब मुट्ठी खोलता है, तब चित्त जानता है कि मुट्ठी खुल गई है; किन्तु हिलता क्या है, हाथ या चित्त? या दोनो में से एक भी नहीं हिलता? यदि हाथ हिलता है तो उसके अनुसार चित्त भी हिलता है, और चित्त हिलता है तो उसके अनुसार हाथ भी। किन्तु हिलनेवाला चित्त केवल उसका सतही हिस्सा होता है, वह सत्य और मूलभूत चित्त नहीं होता।

4. वैसे तो मूलतः हरेक में विशुद्ध चित्त वास करता है, किन्तु वह बाहरी हेतुप्रत्यय-जनित मोह की धूल से आच्छादित होता है। किन्तु हर हालत मं यह मोहग्रस्त चित्त गौण या आनुषंगिक होता है, प्रधान कदापि नहीं।।

चंद्रमा कुछ समय के लिए मेघों से आच्छादित होते हुए भी, मेघों के कारण मलीन नहीं होता, न हिलाया जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह धूल के समान मोह से आच्छादित चंचल चित्त को अपना सत्य चित्त समझने की भूल न करे।

उसको चाहिए कि वह विशुद्ध और अपरिवर्तनशील मूलभूत साक्षात्कार प्रवण मन को जागृत करने का प्रयास करके अपने-आपको सतत इस तथ्य का ध्यान दिलाता रहे। परिवर्तनशील, अपवित्र मन से ग्रस्त अपनी

विकृत कल्पनाओं द्वारा बहकाया जाकर वह मोह के रास्तों पर दिशाहीन भटकता रहता है।

मानवी चित्त की अशांति और अशुद्धियाँ लोभ एवं परिवर्तनशील परिस्थितियों के प्रति उसकी प्रतिक्रियाओं के कारण उत्पन्न होती हैं।

जो चित्त सामने उपस्थित होनेवाली किसी भी बात से उद्विग्न नहीं होता, जो सभी परिस्थितियों में पवित्र और शांत रहता है वही सत्य चित्त है और स्वामी भी वही है।

हम ऐसा नहीं कह सकते कि पांथ चला गया इसलिए, पांथशाला भी गायब हो गई। वैसे ही यह कहना संभव नहीं कि जीवन की परिवर्तनशोल परिस्थितियों से निर्मित कलुषित चित्त के गायब हो जाने से हमारा सत्य चित्त भी नष्ट हो गया। जो परिवर्तनशील परिस्थितियों के कारण बदलता रहता है वह चित्त का सत्य स्वभाव नहीं होता।

5. मान लीलिए कि यहाँ सभा गृह है, जो सूर्य के उदय होने से उजेला ओर उसक अस्त हो जाने से अंधकारपूर्ण हो जाता है।

सूर्य के साथ प्रकाश के लौट जाने की और रात्रि के साथ अंधेरे के लौट जाने की बात हम सोच सकते हैं। किन्तु उस प्रकाश और अंधेरे को अनुभव करनेवाली शक्ति कहीं भी चली नहीं जाती। प्रकाश और अंधेरे को अनुभव करनेवाला चित्त कहीं भी लौटाया नहीं जा सकता; उसे तो अपने सत्य स्वभाव में ही लौटाया जा सकता है।

सूर्य का उदय होने पर उजेला होते हुए देखनेवाला भी क्षणिक चित्त ही होता है, और सूर्य का अस्त होने पर अंधेरा होते हुए देखनेवाला भी क्षणिक चित्त ही होता है।

केवल क्षणिक, अस्थायी चित्त ही जीवन की बदलती हुई परिस्थितियों के साथ क्षण-क्षण में भिन्न-भिन्न भावनाओं का अनुभव करता है; यह यथार्थ और सत्य चित्त नहीं होता। प्रकाश और अंधकार का ज्ञान रखने वाला मूलभूत एवं सत्य चित्त ही मनुष्य का सत्य स्वभाव है।

पाप और पुण्य, प्रेम और द्वेष की अस्थायी भावनाएँ, जो कि बाहरी हेतु-प्रत्यय-जनित हैं, मनुष्य हृदय में संग्रहित दूषणों की क्षणिक प्रति क्रियाएँ मात्र होती हैं।

चित्त में पैदा होनेवाली इच्छाओं तथा ऐहिक वासनाओं की ओट में वास करता है, परिशुद्ध और दूषणरहित चित्त का मूलभूत सत्य सारतत्त्व।

पानी गोल बरतन में गोल और चौकोर में चौकोर दिखाई देता है, किन्तु पानी का अपना कोई विशिष्ट आकार नहीं होता। किन्तु लोग यह तथ्य जानते हुए भी अक्सर भूल जाते हैं।

लोग इसको अच्छा और उसको बुरा देखते हैं, इसको पसन्द और उसको नापसन्द करते हैं और वे सत् और असत् में भेद करते है; और फिर इन उलझनों में फँसकर और उनके प्रति आसक्त होकर कष्ट पाते हैं।

यदि लोग इन काल्पनिक और असत्य भेदों के प्रति अपनी आसक्तियों का त्याग करें तथा अपने मूल चित्त की पवित्रता को पुनः स्थापित करें तो उनका मन और शरीर दोनों दूषणों और दुःखों से मुक्त हो जाएँगे; वे मुक्ति में से पैदा होने वाली शांति का अनुभव करेंगे।

2
बुद्धत्व

1. हमने विशुद्ध और सत्य चित्त के मूलभूत होने की बात की; वही बुद्धता अर्थात बुद्धत्व का बीज है।

यदि हम सूर्य और रूई के बीज सूर्यमणि रखें तो हमें आग प्राप्त हो सकती है, किन्तु यह आग कहाँ से आती है? सूर्यमणि तो सूर्य से अत्यधिक दूर होता है, किन्तु सूर्यमणि द्वारा रूई पर आग अवश्य प्रकट होती है। यदि रूई में प्रज्वलित होने को स्वभाव न होता, तो आग कदापि न जलती।

उसी प्रकार, यदि बुद्ध की प्रज्ञा की किरणें मनुष्य के चित्त पर केन्द्रीभूत की जाएँ, तो उसका सत्य स्वभाव, जो कि बुद्धता ही है, प्रभासित होगा, और उसका प्रकाश अपनी दीप्ति से लोगों के मन आलोकित कर देगा और बुद्ध में श्रद्धा उत्पन्न करेगा। बुद्ध प्रज्ञा का सूर्यमणि सभी मानवी मनों पर केन्द्रित करते हैं और इस प्रकार उनमें श्रद्धा की अग्नि प्रज्वलित होती है।

2. लोग अक्सर अपने स्वभाव में मूलतः निहित निर्वाणमय बुद्धता से विमुख हो जाते हैं और उसके कारण अच्छे और बुरे के भेद में आसक्त होकर संसारिक वासनाओं के जाल में फँस जाते हैं और फिर अपने बंधनों और दुःखों पर विलाप करते रहते हैं।

आखिर क्या कारण है कि लोग, जिनमें कि मूलतः निर्वाणमय विशुद्ध चित्त निहित है, इस प्रकार भ्रांति में पड़कर, अपनी बुद्धता के प्रकाश को ढँककर, मोहमाया के सांसार में भटक रहे हैं?

पुराने जमाने में एक आदमी एक दिन सवेरे दर्पण के सामने बैठा तब उसमें अपना चेहरा और सिर भी न दीखने के कारण भौचक्का रह गया। किन्तु उसका चेहरा और सिर कहीं खो नहीं गए थे, बल्कि वह शीशे की उल्टी तरफ देख रहा था इसलिए मान बैठा था कि वे खो गए हैं।

यह मानकर कि प्रयत्न विशेष के द्वारा निर्वाण प्राप्त हो सकेगा, वैसा प्रयत्न करते हुए निर्वाण प्राप्त नहीं किया जा सके तो इस बात का दुःख करना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण है और अनावश्यक भी। निर्वाण में विफलता नहीं होती, विफलता उन लोगों को होती है जो भेदभावपूर्ण मन से निर्वाण की खोज करते हैं और नहीं जानते कि उनका मन सच्चा मन नहीं, लोभ–मोहग्रस्त काल्पनिक मन है जो सच्चे मन को आच्छादित किए हुए है।

अतः जब काल्पनिक विभ्रम दूर हो जाता है, तब निर्वाण अपने-आप प्रकट हो जाता है और इस बात का ज्ञान भी कि निर्वाण के अतिरिक्त काल्पनिक विभ्रम नाम की कोई वस्तु नहीं होती। साथ ही आश्चर्य की बात यह है कि एक बार निर्वाण प्राप्त हो जाए, तो मनुष्य के ध्यान में यह भी आ जाता है कि यदि काल्पनिक विभ्रम न होता तो निर्वाण भी संभव न था।

3. यह बुद्धता कभी नष्ट नहीं होती। भले ही मनुष्य पशु के रूप में जन्म ले, या बुभुक्षित प्रेतात्मा बनकर कष्ट पाए या नरक में गिरे, तो भी वह अपनी बुद्धता से कभी वंचित नहीं होता।

दूषित शरीर के भीतर भी, दूषित क्लेशों के तल में भी, वह बुद्धता अपनी दीप्ति में लिप्टी हुई, ढँकी हुई होती है।

4. पुरानी कथा है कि एक आदमी मित्र के घर जाकर शराब के नशे में सो गया। उस समय किसी जरूरी काम से उसके मित्र को यात्रा पर जाना पड़ा। जाते समय मित्र ने, उस आदमी के भविष्य के बारे में चिंतित होकर, एक अति मूल्यवान रत्न उस आदमी के वस्त्र में छिपा दिया, ताकि वह उसके काम आ सके।

इस बात से अनजान वह आदमी नशा उतर जाने पर दूसरे देशों में भटकते हुए, अन्न-वस्त्र के अभाव में कष्ट भोगता हुआ बहुत दिनों के

बाद जब संयोगवश उस आदमी की अपने पुराने मित्र से भेंट हुई तब मित्र ने उसको उसके वस्त्र में छिपाये हुए रत्न के बारे में बताया और उसका उपयोग करने को कहा।

नशे में चूर इस आदमी की कहानी के समान लोग जन्म और मृत्यु वाले इस जीवन में कष्ट भोगते हुए, विशुद्ध और अकलुषित बुद्धता के बहुमूल्य रत्न में बिलकुल अनभिज्ञ रहते हैं।

लोग इस तथ्य के बारे में कि हर एक में बुद्ध की प्रज्ञा है, भले ही अनभिज्ञ हों तथा कितने ही अधः पतित और मूढ़ क्यों न हों, बुद्ध उनके प्रति अनाश्वस्त नहीं होते, क्योंकि वे जानते हैं कि उनमें से निकृष्टतम आदमी में भी, निस्सन्देह बुद्धत्व के सभी गुण विद्यमान हैं।

अतः बुद्ध उनमें श्रद्धा पदा करते हैं, जो मूढ़ता से विमोहित अपनी बुद्धता को देख नहीं पाते; तथा उनकी भ्रान्ति को मिटाकर उन्हें उपदेश करते हैं कि उनमें और बुद्धत्व में वास्तव में कोई अन्तर नहीं है।

5. बुद्ध वे हैं जिन्होंने बुद्धत्व को प्राप्त कर लिया है और सामान्य मनुष्य वे हैं जिनमें बुद्धत्व–प्राप्ति की क्षमता होती है–दोनों में केवल इतना ही अन्तर है।

किन्तु यदि मनुष्य यह मान बैठे कि उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है, तो वह अपने को धोखा दे रहा है, क्योंकि यद्यपि वह उस दिशा में बढ़ तो रहा है, उसने अब तक बुद्धत्व को प्राप्त नहीं किया है।

बुद्धता बिना साधना और श्रद्धा पूर्ण प्रयत्न के प्रकट नहीं होती और

जब तब बुद्धत्व की प्राप्ति नहीं, होती कार्य की सिद्धि भी नहीं होती।

6. पुराने समय में, किसी राजा ने कुछ अंधे लोगों को हाथी के आसपास इकट्ठा किया और उनसे यह बताने को कहा कि हाथी कैसा होता है। पहले आदमी ने हाथी के दन्त का स्पर्श किया और कहा कि हाथी बहुत बड़ी गाजर जैसा है। दूसरे ने कान का स्पर्श करके कहा कि यह किसी बड़े पंखे जैसा है। तीसरे ने सूँड़ का स्पर्श करते हुए कहा कि यह तो मूसल के जैसा है। चौथे का हाथ हाथी के पैर को लगा तो उसने कहा कि यह ओखली जैसा है। और पाँचवें ने उसकी दुम पकड़कर कहा कि यह तो रस्सी जैसा है। उनमें से कोई भी राजा को हाथी का वास्तविक रूप बता नहीं पाया।

उसी प्रकार मनुष्य के स्वभाव का आंशिक वर्णन तो संभव हो सकता है पर उसके सत्य स्वभाव का, बुद्धता का वर्णन करना आसान नहीं है।

मृत्यु से भी नष्ट न होनेवाले और क्लेशों से भी कलुषित न होनेवाले मनुष्य के चिरंतन स्वभाव, उसकी बुद्धता का साक्षात्कार केवल एक ही उपाय से हो सकता है और वह उपाय है बुद्ध औ बुद्ध का आर्य उपदेश।

3
बुद्धता एवं अनात्मता

1. हम बुद्धता के बारे मे जिस प्रकार बताते आए हैं, उससे यह भ्रम पैदा

हो सकता है कि वह अन्य धर्मोपदेशों के 'आत्मा' के समान है, किन्तु वैसा नहीं है।

'आत्मा' की धारणा भेदभावपूर्ण चित्त द्वारा रचा गया कल्पना का खेल–मात्र है। चित्त ने पहले उसे ग्रहण किया और बाद में उसमें आसक्त हो गया जिसका कि उसे त्याग करना होगा। इसके विपरीत बुद्धता अनिर्वचनीय होने से पहले उसकी खोज करनी पड़ती है। एक अर्थ में आत्मा से उसका साम्य है, किन्तु वह 'मैं' अथवा 'मेरा' वाला 'आत्मा' नहीं है।

आत्मा के अस्तित्व में विश्वास करना, जो वस्तु नहीं है उसके अस्तित्व की कलपना करनेवाली विपरीत दृष्टि है; बुद्धता को अस्वीकार करना, जो वस्तु है उसके अस्तित्व को नकारनेवाली विपरीत दृष्टि है।

एक उदाहरण से यह स्पष्ट किया जा सकता है। एक माँ अपने बीमार बच्चे को चिकित्सक के पास ले गई। चिकित्सक ने बच्चे को दवाई दी आर माँ से कहा कि जब तक दवाई हजम नहीं होती, वह बच्चे को अपना दूध न पिलाए।

माँ ने अपने स्तन पर कड़वा लेप लगाया, ताकि बच्चा अपने–आप दूध पीना बंद कर दे। जब दवाई हजम होने जितना पर्याप्त समय बीत गया, तब माँ ने अपने स्तन को धोकर साफ किया और बच्चे को पीन के लिए दिया। माँ ने दया–भाव से बच्चे की जान बचाने के लिए यह उपाय किया, क्योंकि उसे बच्चे से प्यार था।

इस दृष्टान्त की माँ के समान, बुद्ध गलत धारणाओं को दूर करने के लिए तथा आत्मलिप्तता को नष्ट करने के लिए, आत्मा के अस्तित्व का इनकार करते है; और सब गलत धारणाएँ और आसक्तियाँ नष्ट हो जाती है, तब वे सत्य चित्त के तय का, अर्थात बुद्धता का उपदेश करते हैं।

आत्म-आसक्ति मनुष्य को भ्रम की ओर ले जाती है, जब कि अपनी बुद्धता के प्रति उसकी श्रद्धा उसे निर्वाण की ओर ले जाती है।

यह उस स्त्री के समान है जिसे विरासत में एक सन्दूक मिला था। यह न जानने के कारण कि उसके अन्दर सोना भरा पड़ा है, वह स्त्री तब तक गरीबी में जीवन बिताती रही जब तक कि किसी दूसरे मनुष्य ने वह सन्दूक खोलकर उसे अन्दर का सोना नहीं दिखाया। बुद्ध लोगों के चित्त को खोलते हैं और उन्हें अपनी बद्धता की पवित्रता दिखाते हैं।

2. यदि सभी में यह बुद्धता है तो एक दूसरे को ठगना या एक दूयरे की हत्या करने जैसे दुःख इस संसार में क्यों हैं? और फिर पद और संपत्ति, धनी और निर्धन के इतने भेद भी क्यों ह?

एक पहलवान की कहानी है जो अपने भाल पर एक मूल्यवान रन्त का आभूषण धारण किए हुए था। एक बार जब वह कुश्ती लड़ रहा था तो वह रत्नाभूषण उसके भाल के मांस में घुस गया। उसने सोचा कि रत्न

खो गया और वह अपने घाव की चिकित्सा के लिए चिकित्सक के पास गया। जब चिकित्सक घाव साफ करने लगा तो उसे माँस में पैठा हुआ और खून व मिट्टी से लिपटा हुआ रत्न दिखाई पड़ा। उसनें शीशा उठाया और पहलवान को वह रत्न दिखाया।

बुद्धता भी इस कहानी में मूल्यवान रत्न के समान है : वह विविध क्लेशों की धूल या मैल से ढँक जाती है और लोग समझते हैं कि वे उसे खा बैठे हैं, किन्तु अच्छा धर्मोपदेशक उन्हें वह फिर प्राप्त करा देता है।

बुद्धता हर एक में रहती है, फिर भले ही वह लोभ, क्रोध और मूढता की परतों में कितनी ही गहरी धँसी हुई हो या अपने कर्मों और कर्मफलों में गड़ी हुई हो। बुद्धता वास्तव में न खोई जाती है, न नष्ट होती है; जब सभी क्लेशावरण हट जाते हैं तब जल्दी या देर से, वह प्रकट हो जाती है।

कहानी के पहलवान के समान, जिसे उसके माँस और रक्त में पैठा हुआ रत्न शीशे द्वारा दिखाया गया था, लोगों को भी उनकी बुद्धता, जो कि उनकी तृष्णा और लालसाओं में धँसी हुई है, बुद्ध के प्रकाश द्वारा दिखाई जाती है।

3. लोगों की परिस्थितियाँ और वातावरण कितने ही पृथक्–पृथक् क्यों न हों बुद्धता सदा शुद्ध और शान्त होती है। जैसे कि दूध का रंग सदा

सफेद ही होता है, चाहे गाय के चमड़े का रंग लाल, सफेद या काला क्यों न हो। उसी प्रकार लोगों के कर्मों का प्रभाव उनके जीवन पर या उनके कार्यों और विचारों का फल कितना ही भिन्न क्यों न हो, कोइ फर्क नहीं पड़ता।

भारत की एक कहानी के अनुसार हिमालय में ऊँची घास के नीचे छिपी हुई एक अद्‌भुत वनौषधि थी। दीर्घ काल तक लोगों ने उसकी खोज की, किन्तु व्यर्थ। आखिर एक बुद्धिमान मनुष्य ने उसकी मधुर गंध से उसे ढूँढ़ निकाला। जब तक यह बुद्धिमान मनुष्य जीवित रहा, उसने एक नाँद में उस वनौषधि को इकट्‌ठा करके रखा, किन्तु उसकी मृत्यु के बाद वह मीठा रसान दूर के किसी पहाड़ी झरने में छिपा रह गया और नाँद के अन्दर का पानी खट्‌टा, हानिकारक और विस्वाद हो गया।

उसी प्रकार बुद्धता सांसारिक लालसाओं के घने जंगल में छिपी पड़ी रहती है और क्वचित ही उसका पता लगता है। किन्तु बुद्ध ने उसे ढूँढ़ निकाला और लोगों को उसका दर्शन कराया, और क्योकि लोग अपनी अपनी पृथक क्षमताओं के अनुसार उसका स्वीकार करते हैं, हर एक व्यक्ति में उसका स्वाद अलग हो जाता है।

4. हीरा, जो कि सभी ज्ञात पदार्थों में सब से कठिन है, चूर्ण नहीं किया जा सकता। बालू या पत्थर को कूटकर चूर्ण किया जा सकता है, किन्तु हीरों को कोई क्षति नहीं पहुँचती। बुद्धता भी हीरे के समान है और इसलिए उसको तोड़ा नहीं जा सकता।

शरीर और चित्त का नाश हो जाए, ता भी बुद्धता का कभी नाश नहीं किया जा सकता।

बुद्धता, सचमुच मानवी स्वभाव का सर्वोत्कृष्ट लक्षण है। अक्सर संसार में पुरुष को श्रेष्ठ और स्त्री को कनिष्ठ समझने की प्रथा है, किन्तु बुद्ध के उपदेश में स्त्री–पुरुष में इस प्रकार का कोई भेदभाव नहीं किया जाता, केवल बुद्धता को पहचानना श्रेष्ठ माना जाता है।

अशुद्ध सोने को गलाकर उसमें से सभी अशुद्धियाँ निकालने से शुद्ध सुवर्ण की प्राप्ति होती है यदि मनुष्य अपनी अशुद्ध चित्त को गलाकर उसमें से सांसारिक लालसाओं और अहंता की अशुद्धियों को निकाल दे तो उसे विशुद्ध बुद्धता की पुनः प्राप्ति होगी।

चतुर्थ अध्याय

क्लेश

1
चित्त की अशुद्धियाँ

1. बुद्ध को ढँककर रखनेवाले क्लेश दो प्रकार के होते हैं।

पहला प्रकार बौद्धिक क्लेशों का है; दूसरा, भावनात्मक क्लेशों का।

ये दो प्रकार के क्लेश, सभी क्लेशों का मूलभूत वर्गीकरण हैं, किन्तु इन सभी क्लेशों का मूल ढूँढ निकालें तो उसमें एक तो अविद्या है और दूसरी वासना।

अविद्या और वासना में सभी प्रकार के क्लेशों को पैदा करने की निर्बाध सामर्थ्य होती है। वास्तव में ये दोनों ही सभी क्लेशों का उद्गमस्थान हैं।

अविद्या का अर्थ अज्ञान है, वस्तुओं की यथार्थता को जानने की

अक्षमता। वासना तीव्र आसक्ति है, जिसके मूल में जीने का मोह होता है; देखने की चाह, सुनने की चाह। सभी प्रकार की आसक्ति यही है, जो कभी उलटकर मरने की आकांक्षा मे भी बदल सकती है।

इस अविद्या और वासना से ही तरह-तरह के क्लेश पैदा होते हैं, जैसे कि लोभ, क्रोध, मूढ़ता मिथ्यादृष्टि, द्वेष, ईर्ष्या, चापलूसी, छल, घमण्ड, तिरस्कार, अनास्था आदि।

2. लोभ का उद्‌भव पसन्द आई हुई वस्तु देखकर अनुचित विचार धारण करने के कारण होता है। क्रोध का उद्‌भाव नापसन्द वस्तु को देखकर अनुचित विचार धारण करने के कारण होता है। मूढ़ता अज्ञान जनित विवेकहीनता है। मिथ्यादृष्टि अयथार्थ उपदेश को ग्रहण करके, अयथार्थ विचार रखने के कारण पैदा होती है।

ये तीन-लोभ, क्रोध और मूढ़ता-इस लोक के त्रिताप हैं। लोभ की अग्नि अतिलोभ के कारण सदसद्‌विवेकहीन व्यक्ति को जलाती है; क्रोधाग्नि क्रोध के कारण प्राणियों की जान को हानि पहुँचाने वाले मनुष्य को जलाती है; मूढ़ता की अग्नि चित्तभ्रान्ति में भटककर बुद्ध के उपदेश को न जाननेवाले मनुष्य को जलाती है।

सचमुच यह संसार विविध प्रकार की अग्नियों से जल रहा है। लोभ की अग्नि, क्रोध की अग्नि, मूढ़ता की अग्नि, जन्म, जरा, व्याधि और

मृत्यु की अग्नि, शोक, विलाप, दु:ख और वेदना की अग्नि, विविध प्रकार की अग्नियों से यह धधकता हुआ जल रहा है। क्लेशों की ये अग्नियाँ अपने-आपको तो जलाती हैं, साथ ही दूसरों को भी झुलसाती हैं और मनुष्य को काया, वाचा और मन से दुष्कर्म करने के लिए बाधित करती हैं। इतना ही नहीं, इन अग्नियों से बने व्रणों में से पीप निकलती है, जो छूनेवालों में ज़हर फैलाकर उन्हें पापमार्ग की ओर ले जाती है।

3. लोभ संतोष-प्राप्ति की कामना से पैदा होता है, क्रोध असंतोष के कारण पैदा होता है तथा मूढता अपवित्र विचारों के कारण पैदा होती है। लोभ में पाप-विचार की मलीनता कम होती है किन्तु उसे मिटाना आसान नहीं होता; क्रोध में पाप की मलीनता अधिक होती है, किन्तु उसे जल्दी हटाया जा सकता है; मूढ़ता में पाप की मलीनता भी अधिक होती है और उसे हटाना भी आसान नहीं होता।

अत: मनुष्य को चाहिए कि वह इन तीन अग्नियों को, जब भी और जहाँ भी वे प्रकट हों, बुझा दे। इसके लिए उसे सच्चा संतोश किससे प्राप्त हो सकेगा, इसका सही निर्णय करना होगा। जीवन की असंतोषजनक वस्तुओं के प्रति अपने चित्त को पूर्णतया नियंत्रित करना होगा। तथा सदा बुद्ध के सद्भावना और करुणा के उपदेश का स्मरण करते रहना होगा। यदि चित्त सच्चे, पवित्र और नि:स्वार्थ विचारों से भरा रहे तो उससे सांसारिक वासनाएँ जड़ पकड़ नहीं सकतीं।

4. लोभ, क्रोध और मूढ़ता ज्वर के समान हैं। यदि कोई भी व्यक्ति इनमें से किसी एक भी ज्वर से पीड़ित हो जाए तो वह कितने ही सुन्दर और

लम्बे–चौड़े कमरे में क्यों न सोया हो, उस ज्वर के कारण पीड़ित होगा और नींद न आकर उसे कष्ट भोगना पड़ेगा।

जो मनुष्य इन तीन क्लेशों से मुक्त है वह शिशिर की सर्द रात में, पेड़ के पत्तो से बनी पतली शय्या पर भी चैन से सो सकेगा अथवा ग्रीष्म की गर्म रात में छोटी–सी बन्द कोठरी में भी आराम से सोने में उसे कोई कठिनाई नहीं होगी।

ये तीनों–लोभ, क्रोध और मूढ़ता–सभी मानवी दु:ख के स्त्रोत हैं। दु:ख के इन स्त्रोतों से मुक्ति पाने के लिए हमें शीलों का पालन करना चाहिए, ध्यान का अभ्यास करना चाहिए और प्रज्ञा प्राप्त करनी चाहिए। शीलों के पालन से लोभ की मलीनता दूर होती है, सम्यक् समाधि से क्रोध की मलीनता दूर होती है तथा प्रज्ञा की प्राप्ति से मूढ़ता की मलीनता दूर होती है।

5. मनुष्य की वासनाओं का कोई अन्त नहीं। यह तो उस मनुष्य की तृष्णा के समान है, जो खारा पानी पी रहा है; उसे संतोष तो मिलता ही नहीं, उल्टे तृष्णा बढ़ती जाती है।

यही हालत अपनी वासनाओं की तृप्ति खोजने वाले मनुष्य की होती है; उसका तो केवल असंतोष ही बढ़ता जाता है और उसके कष्टों का कोई अन्त नहीं होता।

वासनाएँ कभी पूर्ण रूप से तृप्त नहीं की जा सकतीं, उपभोग के बाद क्लांति और खेद ही शेष रहते हें, जिन्हें किसी भी तरह मिटाया नहीं जा

सकता; और सब वासनाओं की पूर्ण तृप्ति नहीं हो सकती, तब मनुष्य अक्सर पागल हो जाता है।

अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए लोग आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, राजा राजा के साथ, अनुचर अनुचर के साथ, माँ-बाप बच्चे के साथ, भाई भाई के साथ, बहन बहन के साथ, मित्र मित्र के साथ; अपनी वासनाओं की तृप्ति के लिए वे आपस में लड़ेंगे और एक दूसरे की हत्या भी करेंगे।

लोग अक्सर वासनाओं की तृप्ति के लिए अपना जीवन बरबाद कर देते हैं। वे चोरी करते हैं, धोखा देते हैं और व्यभिचार भी करते हैं। और जब पकड़े जाते हैं तक अपमानित होकर उन्हें सजा भुगतनी पड़ती है।

वे अपनी वासना-तृप्ति के लिए पाप पर पाप करते जाते हैं, और इहलोक में कष्ट भुगतने के साथ-साथ मरने के बाद परलोक में भी अंधनरक में प्रवेश कर तरह-तरह के कष्ट भोगते हैं।

6. सभी प्रकार के क्लेशें में वासना सबसे दुर्दम्य है, सभी क्लेश उसके पीछे-पीछे चलते हैं।

वासना की भूमि में अन्य सभी क्लेश अंकुरित होते हैं, वासना सभी सदाचारों का भक्षण करनेवाली राक्षसी है। वासना फूलों की वाटिका में छिपी हुई नागिन है, जो सौन्दर्य के सुखोपभोग की लालसा में भटकते हुओं को आकर्षित कर अपने विष से मार डालती हैं। वासना वृक्ष पर चढ़कर उसको शाखा-प्रशाखाओं को आकर्षित कर वृक्ष का गला घोंटने

वाली लता के समान मनुष्य के चित्त को लपेटकर, उसकी सभी सत्प्रवृत्तियाँ चूस डालती है। वासना ऐसा आसुरी आमिष है जिसे निगलकर मूर्ख मनुष्य बुराइयों के दलदल में गहरा और गहरा धँसता चला जाता है।

कुत्ता सूखी हड्डी को अपने ही मुँह के खून से लथपथ हो जाने पर भी तब तक चूसता रहेगा जब तक कि थक और निराश नहीं हो जाता। वासना भी मनुष्य के लिए कुत्ते की उस हड्डी के समान है, वह वासना को तब तक भँभोड़ता रहेगा जब तक कि थक नहीं जाता।

यदि दो वन्य पशुओं के सामने एक माँस का टुकडा फेंका जाए तो वे उसे पाने के लिए लड़ेंगे और एक दूसरे को नोंच डालेंगे। हाथ में मशाल लेकर हवा के विरुद्ध चलनेवाला मूर्ख मनुष्य अपने आपको जला देगा। इन दोनों वन्य पशुओं तथा उस मूर्ख मनुष्य के समान ही मनुष्य वासना के वशीभूत अपने-आपको घायल करता और जला देता है।

7. बाहर से उड़कर आनेवाले विषैले बाणों से बचना कठिन नहीं है, पर अन्दर से आक्रमण करनेवाले विषैले बाणों से बचना मुश्किल है। लोभ, क्रोध, मूढ़ता और अहंकार ये चार विषैले बाण मन में पैदा होत हैं और उसे विषाक्त कर देते हैं।

चित्त में जब लोभ, क्रोध और मूढ़ता होती है, तब लोग वाणी से असत्य बोलने लगते हैं, धोखा देते हैं, निन्दा करने लगते हैं, और अपने

कहे से मुकरने लगते हैं और अन्त में हत्या, चोरी और व्यभिचार में प्रवृत्त हो जाते हं।

चित्त के तीन, वाणी के चार और शरीर के तीन–ये सब मिलाकर दस पाप होते हैं।

जानबूझ कर असत्य बोलने की आदत पड़ जाए, तो कोई भी पापकर्म करने में झिझक नहीं होती। पापकर्म करने के लिए झूठ बोलना पड़ता है और झूठ बोलने की आदत पड़ने के कारण, बिना किसी झिझक के पापकर्म करने की आदत हो जाती है।

लोभ, वासना, भय और क्रोध सभी मूझ़ता से पैदा होता हैं तथा दुर्भाग्य और संकट भी मूढ़ता से ही पैदा होते हैं। सचमुच मूढ़ता सबसे बड़ा विष है।

8. क्लेशों के कारण कर्म पैदा होता है, कर्म के कारण दुःख पैदा होता है। क्लेश, कर्म और दुःख इन तीनों का चक्र सतत चलता रहता है।

इस चक्र का न तो आरंभ होता है न अंत। लोग इस संसार (संसृति) से छुटकारा पा नहीं सकते। अनंत काल तक घूमते रहनेवाले इस संसार चक्र में फँसकर, मनुष्य इस जन्म से अगले जन्म की ओर अनन्त काल तक जन्मान्तर करता रहता है।

इस अनंत संसार चक्र के बीच निरंतर घूमते हुए एक मनुष्य के जन्म जन्मांतरों की दाह–अस्थियों को इकट्ठा किया जाए तो उनकी ऊँचाई

पर्वत से भी अधिक होगी, और उसके द्वारा पिये गये माँ के दूध को इकट्ठा किया जाए तो वह समुद्र के पानी से भी अधिक होगा।

सभी मनुष्यों में बुद्धता तो अवश्य होती है, वह वासनाओं के कीचड़ में इतनी दबी होती है कि उसका अंकुरित होना आसान नहीं होता। इसीलिए संसार में इतना दुःख भरा हुआ है और दुःखी जीवों का अन्तहीन पुनर्जन्म होता रहता है।

2
मनुष्य का स्वभाव

1. मनुष्य का स्वभाव एक घने जंगल के समान है, जिसका कोई प्रवेश–द्वारा नहीं और जिसमें प्रवेश पाना मुश्किल है। अपेक्षाकृत, पशु के स्वभाव को समझना असान है। फिर हम मनुष्य के स्वभाव का उसकी चार प्रमुख भिन्नताओं के आधार पर साधारण रूप से वर्गीकरण कर सकते हैं।

पहला प्रकार उन लोगों का है, जो मिथ्या उपदेशों के कारण कठोर तपस्या करके अपने–आपको कष्ट देते हैं। दूसरा उन लोगों का है, जो अपनी क्ररता, चोरी, हिंसा तथा अन्य निर्दय कर्मों से दूसरों को कष्ट देते

हैं। तीसरा उन लोगों का है, जो अपने साथ दूसरों को भी कष्टों से बचाते हैं। चौथे प्रकार के ये लोग, बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करके, लोभ, या मूढ़ता के वश नहीं होते, हिंसा या चोरी नहीं करते, अपितु दयामय और ज्ञानमय जीवन व्यतीत करते हैं।

2. फिर इस संसार में लोगों के और तीन प्रकार हैं। पहला प्रकार उन लोगों का है जो शिला पर खुदे हुए अक्षरों के समान होते हैं, वे शीघ्र क्रोध के वश हो जाते हैं और दीर्घ काल तक उनका क्रोध शांत नहीं होता। दूसरे प्रकार के लोग रेत पर लिखे गए अक्षरों के समान होते हैं, वे भी शीघ्र क्रोध के वश हो जाते हैं, पर उनका क्रोध दीर्घ काल तक नहीं टिकता। तीसरे प्रकार के लोग पानी पर लिखे गए अक्षरों के समान होते हैं, वे अपने क्षणिक विचारों के वश नहीं होते; वे निन्दा या अवांछनीय अफवाहों की ओर ध्यान नहीं देते; उनका चित्त सदा पवित्र और अविर्चालित रहता है।

फिर और तीन प्रकार के लोग होते हैं। पहले प्रकार के लोग घमंडी होते हैं, अविचार से कार्य करते हैं और सदा असंतुष्ट रहते हैं; उनके स्वभाव को आसानी से समझा जा सकता है। दूसरा प्रकार उन लोगों का है जो विनयशील होते हैं और विवेकपूर्ण व्यवहार करते हैं; उनके स्वभाव को समझना कठिन होता है। तीसरा प्रकार उन लोगों का है, जिन्होंन अपनी वासनाओं पर पूरा काबू पा लिया है; उनके स्वभाव को समझना बिल्कुल असंभव है।

इस प्रकार लोगों का अलग-अलग प्रकारों में वर्गीकरण तो किया जा सकता है, किन्तु उनके स्वभाव को समझना बहुत कठिन है। केवल बुद्ध ही उनको समझते हैं और अपनी प्रज्ञा से भिन्न-भिन्न उपदेशों द्वारा उनका मार्गदर्शन करते हैं।

3
मानवीय जीवन

1. मानवीय जीवन का वर्णन करनेवाला एक दृष्टान्त है। एक बार एक मनुष्य किसी नदी में प्रवाह की ओर नाव खे रहा था। किनारे पर से किसी ने उसे सावधान किया, ''नदी की तेज़ धारा में इतनी आतुरता से नाव मत चलाओ। आगे कई प्रपात हैं और भँवर भी; और चट्टानी कन्दराओं में मगरमच्छ और यक्ष घात लगाये बैठे हैं। इसी प्रकार चलते गए तो सर्वनाश हो जाएगा।''

इस दृष्टान्त की 'तेज धारा' वासनामय जीवन है; 'आतुरता से नाव चलाना' अपने शरीर के प्रति आसक्ति है: 'आगे के प्रपात' आनेवाले दु:खों और कष्टों को सूचित करते हैं; 'भँवर' भोग-विलास हैं, 'मगरमच्छ और यक्ष' भोगमय विलासी जीवन के बाद आनेवाले क्षय और मृत्यु हैं; सावधान करनेवाला 'किनारे पर कोई' भगवान बुद्ध हैं।

और एक दृष्टान्त है। एक मनुष्य अपराध करके भाग रहा है। सिपाही उसका पीछा कर रहे हैं, इसलिए जब उसे रास्ते में एक पुराना कुआँ मिलता है, जिसके अन्दर कुछ बेलें लटक रही हैं, वह एक बेल के सहारे अन्दर उतरकर छुपने का प्रयास करता है। नीचे उतरते समय उसे कुएँ के तल में विषैले साँप दिखाई देते हैं, इसलिए वह जान बचाने के

लिए बेल को पकड़ रखने का निश्चय करता है। कुछ समय के बाद, जब उसके हाथ थक जाते हैं, वह देखता है कि दो चूहे, एक सफदे और एक काला, उस बेल को कुतर रहे हैं।

यदि बेल टूट जाए, तो वह नीचे साँपों के बीच गिर जाएगा और मर जाएगा। अचानक, उसकी दृष्टि ऊपर जाती है, तो उसे ठीक अपने मुँह के ऊपर एक मधुमक्खियों का छत्ता दिखाई देता है, जिसमें से कभी-कभी शहद की एकाध बूँद उसके मुँह में टपक जाती है। वह मनुष्य अपने सभी खतरे भूलकर आनन्द से शहद का स्वाद लेने लगता है।

यहाँ 'एक मनुष्य' वह है जो अकेले कष्ट सहने और मरने के लिए पैदा होता है। 'सिपाही' और 'विषैले साँप' मनुष्य का अपनी आसक्तियों में लिपटा शरीर है। 'पुराने कुएँ के अन्दर की बेल' मनुष्य का जीवन है, दो चूहे, एक सफेद और एक काला' दिन और रात, अर्थात बीतने वालो काल के सूचक हैं। 'शहद की बूँद' दृष्टि के सामने के क्षणिक शारीरिक सुख हैं, जो बीतते काल के साथ आनेवाले दुःख को भुला देते हैं।

2. यहाँ और एक दृष्टान्त है। एक राजा एक डिब्बों में चार विषैले साँपों को रखकर वह डिब्बा अपने नौकर को सँभालकर रखने के लिए दे देता है। वह नौकर को उनकी अच्छी सँभाल रखने की आज्ञा देता है और चेतावनी देता है कि यदि एक भी साँप कुपित हुआ तो गर्दन उड़ा दी जाएगी। वह नौकर डर जाता है और डिब्बा फेंककर भाग निकलता है।

राजा उसे पकड़ने के लिए पाँच सिपाही भेजता है। वे नौकर को सुरक्षित वापस ले जाने के हेतु, मैत्री भाव से उसके पास आ जाते हैं,

किन्तु नौकर उनके मैत्रीपूर्ण व्यवहार पर विश्वास नहीं करता और दूसरे गाँव भाग जाता है और वहाँ छिपने का स्थान ढूँढ़ता है।

तब आकाशवाणी होती है कि इस गाँव में कोई आदमी नहीं रहता और फिर आज रात छह डाकू इसपर हमला करनेवाले हैं। वह नौकर घबड़ाकर वहाँ से भागता है। एक प्रचंड लहरोंवाली तेज़ नदी उसका रास्ता रोकती है। उसे पार करना आसान नहीं है, फिर भी इस पार के संकटों का ख्याल करके वह एक बेड़ा बना लेता है और किसी तरह नदी पार कर जाता है। उस पार जाकर उसे सुरक्षा और शांति प्राप्त होती है।

'डिब्बे के अंदर के चार विषैले सर्प' शरीर को बनानेवाले चार भूत–पृथ्वी, आप, तेज और वायु हैं। यह शरीर वासना के वश में और चित्त का शत्रु होता है, इसलिए शरीर से भागने की कोशिश करता है।

'मित्रभाव से पास आने वाले सिपाही' पाँच स्कंध–रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान हैं, जो शरीर और मन की रचना करते हैं।

'छिपने का स्थान' मनुष्य की छह इन्द्रियाँ हैं; और 'छह डाकू' इन इन्द्रियों के छह विषय हैं। इस प्रकार छह इन्द्रियों में संकटों का अनुभव कर वह फिर एक बार भाग निकलता है और सांसारिक वासनाओं की तीव्र धारा के किनारे पहुँचता है।

फिर वह बुद्ध के आदेश का बेड़ा बना लेता ह और इस तीव्र धारा को सुरक्षित पार कर जाता है।

3. जीवन में ऐसे तीन प्रसंग होते हैं जब न तो पुत्र माँ को बचा सकता है न माँ पुत्र को, जैसे अग्निकांड, बाढ़ और चोरी। फिर भी ऐसे तीन प्रसंगों में भी, संयोगवश, एक सहायता करने की संभावना होती है।

किन्तु ऐसी तीन बातें हैं जिनमें किसी भी हालत में न तो माँ अपने बच्चे को बचा सकती है, न बच्चा अपानी माँ को। ये तीन बातें हैं वृद्धावस्था का भय, बीमारी का भय और मृत्यु का भय।

जब माँ वृद्ध हो जाती है तब पुत्र उसका स्थान कैसे ले सकता है? जब पुत्र बीमार होता है तब माँ उसका स्थान कैसे ले सकती है? जब मृत्यु निकट आ पहुँचती है तब दोनों की सहायता केसे कर सकते हैं? भले ही दोनों एक दूसरे को कितना ही क्यों न चाहते हों या दोनों कितनी ही प्रीति क्यों न हो, ऐसे अवसरों पर कोई किसी की सहायता नहीं कर सकता।

4. इस संसार में पापकर्म करके, मृत्यु के बाद नरक में पड़े हुए एक पापी मनुष्य से यमराज ने पूछा, ‘‘क्या मनुष्य लोक में रहते हुए तीन देवदूतों से तुम्हारी भेंट नहीं हुई’’ ‘‘नहीं महाराज, ऐसे किसी व्यक्ति से मेरी भेंट नहीं हुई।’’

फिर यमराज ने उससे पूछा, ‘‘क्या तुमने झुकी हुई कमरवाला और लाठी के सहारे चलनेवाला गलितगात्र बूढ़ा नहीं देखा?’’ उस आदमी ने उत्तर दिया, ‘‘जी हाँ, महाराज, ऐसे तो मैं कई बूढ़े आदमी देख चुका हूँ।’’ तब यम ने उससे कहा, ‘‘तुम ये नकरयातनाएँ इसलिए भोग रहे हो

कि तुने उस बूढ़े आदमी के रूप में भेजे गए देवदूत को नहीं पहचाना जो कि तुम्हें यह चेतावनी देने के लिए भेजा गया था कि तुम अति वृद्ध होने से पहले अपने जीवन को सुधारों।''

यम ने उससे फिर पूछा, ''क्या तुमने कभी रोग से पीड़ित अपने आप उठ-बैठ भी न सकनेवाले किसी ऐसे आदमी को हालत नहीं देखी जो सूखकर काँटा हो गया था?'' उसने उत्तर दिया, ''महाराज, ऐसे रोगी तो मैं कई देख चुका हूँ।'' तब यम ने उससे कहा, ''तुम्हें इस स्थान में इसलिए आना पड़ा कि तुम उन रोगी मनुष्यों में उन देवदूतों को नहीं पहचान पाए जो तुम्हें तुम्हारे अपने रोग के लिए आगाह करने के हेतु भेजे गए थे।''

तब यम ने उससे फिर एक बार पूछा, ''क्या तुमने कभी अपने आसपास किसी मरे हुए आदमी को नहीं देखा?'' मनुष्य ने उत्तर दिया, ''महाराज, मृत व्यक्ति तो मैं अब तक कई देख चुका हूँ।'' यम ने उससे कहा तुमने इन मृत व्यक्तियों में मृत्यु के संबंध में तुम्हें आगाह करने के लिए भेजे गए देवदूतों को नहीं पहचाना, इसलिए तुम्हें यहाँ लाया गया है। अगर तुम इन देवदूतों को पहचानते और उनकी चेतावनियों को समझ जाते, तो अपने जीवन में आमूल्य परिवर्तन करते और तुम्हें इस दु:खमय स्थान में आना नहीं पड़ता।''

5. कृशा गौतमी किसी धनवान श्रेष्ठी की पत्नी थी, जो अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु के कारण पागल हो गई। उसने मृत बच्चे को गोद में उठा लिया ओर ''क्या ऐसा कोई नहीं है जो इस बच्चे को ठीक कर सके?'' पूछती हुइ दरदर भटकने लगी।

कोई भी उसके लिए कुछ नहीं कर पाया। किन्तु अन्त में बुद्ध के एक उपासक ने उसे भगवान के पास जाने की सलाह दी, जो उस समय जेतवन में विहार कर रहे थे। इसलिए वह मृत बच्चे को बुद्ध के पास ले गई।

भगवान ने सहानुभूति से उसकी ओर देखा और कहा, ''इस बच्चे को ठीक करने के लिए मुझे कुछ पीली सरसों के दानों की आवश्यकता होगी। जा और जिस घर में कोई मरा न हो ऐसे घर से पीली सरसों के चार-पाँच दाने ले आ।''

तब वह पगली ऐसा घर ढूँढ़ने चल दी जिसमें कोई न मरा हो; किन्तु व्यर्थ। अन्त में वह भगवान बुद्ध के पास लौटने के लिए बाध्य हो गई। उनके शांत-सौम्य सान्निध्य में, पहली बार उनके वचनों का अर्थ उसकी समझ में आया और उसे लगा कि जैसे वह स्वप्न से जाग उठी है। वह बच्चे के शव को ले गई, उसका दाहकर्म किया और फिर बुद्ध के पास लौटकर उनकी शिष्या बन गई।

4
भ्रान्ति का सवरूप

1. इस संसार में लोगों की प्रवृत्ति अधिकतर स्वार्थपरक और सहानुभूतिशून्य होती है; वे एक दसरे से प्रेम करना और एक दूसरे का आदर करना नहीं जानते। वे मामूली-सी बातों पर बहस करने लगते हैं और झगड़ पड़ते हैं, जिससे कि हानि तो उन्हीं को होती है और उन्हीं को कष्ट उठाने पड़ते हैं और जीवन दु:खों की एक नीरस शृंखला बन जाता है।

आदमी चाहे धनी हो या गरीब, उसे पैसे की चिंता रहती है, गरीब

गरीबी से कष्ट पाता है, धनी धन से। उनके जीवन लोभ के अधीन होते हैं इसलिए वे न कभी तृप्त होते है, न संतुष्ट।

धनी मनुष्य के पास संपत्ति हो तो उसकी चिंता लगी रहती है; उसे अपनी हवेली या दूसरी जायदाद की चिंता सताया करती है। वह चिंतित रहता है कि कहीं उस पर कोई आपत्ति न आन पड़े, उसकी हवेली जल न जाए, घर में चोर न घुस आएँ, उसका अपहरण न हो जाए। फिर उसे मृत्यु की और मृत्यु के बाद अपनी संपत्ति की व्यवस्था की चिंता होती है। निस्संदेह मृत्यु की यात्रा उसे अकेले करनी पड़ती है, मृत्यु में कोई उसका साथ नहीं देता।

गरीब आदमी हमेशा अपर्याप्तता या न्यूनता का शिकार बना रहता है और इसके कारण उसमें अनन्त लालसाएँ जागृत होती हैं–भूमि की और घर की। लोलुपता की ज्वाला में जलता हुआ वह अपने तन और मन को थका देता है और अधेड़ उम्र में ही मृत्यु का शिकार बनता है।

सारा संसार उसे शत्रु के समान दिखाई देता है और मृत्यु की राह भी उसे सुनसान लगती है, मानो उसे किसी लम्बी यात्रा पर जाना हो और साथ देनेवाले कोई मित्र पास न हों।

2. फिर, इस संसार में पाँच प्रकार के पाप हैं। पहला है निदर्यता; मानवमात्र से लेकर जमीन पर रेंगने वाले कीड़ों तक हर एक दूसरे से संघर्ष करने पर तुला हुआ है। बलवान दुर्बलों पर हमला करते हैं; दुर्बल बलवानों को धोखा देते हैं; सर्वत्र लड़ाई–झगड़े और निर्दयता का बोलबाला है।

दूसरा यह कि पिता और पुत्र, बड़े भाई और छोड़े भाई, पति और पत्नी, ज्येष्ठ रिश्तेदार और कनिष्ठ रिश्तेदार के बीच अधिकारों की स्पष्ट सीमारेखा नहीं हाती; हर अवसर पर प्रत्येक वरिष्ठ बनने की और दूसरे से लाभ उठाने की लालसा रखता है। वे एक दूसरे को ठगते हैं। उनमें छल भरा होता है और आस्था का अभाव होता है।

तीसरा, स्त्रियों और पुरुषों के बीच आचरण की कोई स्पष्ट सीमारेखा नहीं होती। हरएक के मन मं यदा-कदा अपवित्र और लम्पट विचार और वासनाएँ उठती हैं जो उनको निन्दनीय कर्म और अक्सर लड़ाई-झगड़े अन्याय तथा निर्दयता करने पर बाध्य करती है।

चौथा, लोगों में यह प्रवृत्ति होती है कि दूसरों के अधिकारों का अनादर करें, दूसरों को नीचा दिखाकर अपने महत्त्व को बढ़ा-चढ़ाकर कहें, आचरण के अवांछनीय उदाहरण पेश करें तथा अपनी अन्यायपूर्ण वाणी के कारण दूसरों को ठगें, उनकी झूठी निन्दा करें।

पाँचवाँ, लोगों में यह प्रवृत्ति दिखाई देती है कि दूसरों के प्रति अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करें। वे अपनी सुख-सुविधाओं, अपनी लालसाओं का ही अधिक ख्याल करते हैं। वे दूसरों के उपकारों को भूल जाते हैं और दूसरों को इतना परेशान करते हैं कि उसकी परिणति अक्सर घोर अन्याय में हो जाती है।

3. लोगों को एक दूसरे के प्रति अधिक सहानुभूति शील होना चाहिए: उन्हें चाहिए कि वे सभी का उनकी विशिष्टताओं के लिए आदर करें

और संकटों में एक दूसरे की मदद करें। किन्तु इसके विपरीत वे स्वार्थी और कठोर हृदय होते है; थोड़ी-सी लाभ-हानि के लिए वे एक दूसरे से द्वेष करते हैं, परस्पर स्पर्धा करते हैं। स्पर्धा की भावना आरंभ में स्वल्प क्यों न हो, समय के साथ बढ़ती और तीव्र होती है और अनजान में गहरे द्वेष में बदल जाती है।

परस्पर घृणा की ये भावनाएँ शीघ्र हिंसक कर्मों में परिणत नहीं होतीं, फिर भी वे द्वेष और क्रोध की भावनाओं से जीवन को विषैला बना देती हैं, जो चित्त पर इतनी गहरी अंकित होती हैं कि लोग जन्म-जन्मान्तर तक उनके निशान वहन किए रहते हैं।

सचमुच, इस वासनामय संसार में मनुष्य अकेला पैदा होता है और अकेला मर जाता है। और मरणोत्तर जीवन में पापकर्मों का फल भोगने में कोई उसका साथ देनेवाला नहीं होता।

कार्य-कारण संबंध का नियम सार्वभौम है; हर मनुष्य को अपनी पापगठरी का वहन स्वयं करना पड़ता है और उसका फल भी खुद भुगतना पड़ता है। कार्य-कारण-संबंध का यह नियम पुण्यकर्मों पर भी लागू होता है। सहानुभूति और दयामय जीवन की परिणति सौभाग्य और सुख में होगी।

4. समय बीतने के साथ जब लोग देखते हैं कि कितनी दृढ़ता से वे लोभ, आदतों और कष्टों के पाश में बँधे हुए हैं, तब बहुत उदास और निराश हो जाते हैं। अक्सर अपनी निराशा में वे दूसरों से झगड़ पड़ते हैं और पाप में और गहरे पैठ जाते हैं; यहाँ तक कि सन्मार्ग पर चलने का प्रयास तक छोड़ देते हैं; और प्रायः अपनी इस निर्दयता के बीच ही

उनकी अकालमृत्यु हो जाती है और वे अनन्त काल तक दु:ख भोगते रहते हैं।

इस प्रकार अपने दुर्भाग्य और दु:खों के कारण हताश हो जाना बिलकुल अस्वाभाविक तथा सृष्टि के नियम के विपरित है, और इसीलि ऐसा मनुष्य इहलोक तथा परलोक दोनों में दु:ख भोगेगा।

यह सत्य है कि इस जीवन में सब कुछ अनित्य और अनिश्चितता से भरा हुआ है, किन्तु बड़े दु:ख की बात यह है कि मनुष्य इस तथ्य की उपेक्षा करता है और लगातार उपभोग आर अपनी वासनाओं की तृप्ति की खोज के प्रयत्न में लगा रहता है।

5. इस दु:खमय संसार में लोगों के लिए यह स्वाभाविक है कि वे स्वार्थी और अहंकेन्द्रित विचार ओर व्यवहार करें और उसके कारण यह भी उतना ही स्वाभाविक है कि इसके परिणामस्वरूप क्लेश और दु:खों की उत्पत्ति हो।

लोग अपना ही खयाल रखते और दूसरों की उपेक्षा करते हैं। लोग अपनी इच्छाओं को लोभ, वासना और सभी प्रकार के पापकर्मों की ओर दौड़ने देते हैं। इसके लिए उन्हें अनन्तकाल तक दु:ख भोगना होगा।

भोग-विलास का समय दीर्घ काल तक नहीं टिकता, शीघ्र ही बीत जाता है; इस संसार में केसी भी चीज का उपभोग सदा के लिए नहीं किया जा सकता।

6. अत: लोगों को चाहिए कि जब तब वे तरुण और स्वस्थ हैं, सांसारिक कर्मों के प्रति अपने लोभ और आसक्ति का त्याग करें तथा मन लगाकर

सच्चे निर्वाण की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करें, क्योंकि निर्वाण के अतिरिक्त और कहीं भी शाश्वत निर्भरता और सुख नहीं है।

किन्तु अधिकतर लोग कार्य–कारण–संबंधी नियम में विश्वास नहीं करते या उसकी उपेक्षा करते हैं। यह भुलाकर कि पुण्यकर्मों से सुख की प्राप्ति होती है और पापकर्मों से दुर्भाग्य की, वे अपने लोभ और स्वार्थ की आदतों में फँस जाते हैं। वे यह भी विश्वास नहीं करते कि अपने इस जन्म के कर्मों का प्रभाव अगले जन्मों पर पड़ता है बल्कि अपने पापकर्मों के फलों के लिए दूसरों को उत्तरदायी सकझते हैं।

वर्तमान कर्मों के अगले जन्मों पर पड़ने वाले प्रभाव तथा वर्तमान कष्टों के पिछले जन्मों के साथ संबंध के बारे में ठीक ज्ञान न रखने के कारण वे अपने दु:खों क लिए शोक और विलाप करते रहते हैं। वे केवल अपनी वर्तमान लालसाओं और वर्तमान दु:खों का ही विचार करते हैं।

इस संसार में शाश्वत और नित्य कुछ भी नहीं है। सब कुछ अनित्य, परिवर्तनशीलन, क्षणभंगुर और अनिश्चित हैं। किन्तु लोग अज्ञानी और स्वार्थी होत हैं और केवल क्षणिक लालसाओं और प्राप्य दु:खों की ही चिंता करते हैं। वे सच्चे उपदेशों को न तो सुनते हैं न समझने का प्रयत्न करते है; अपने आपको केवली वर्तमान हितों में, संपत्ति और लालसा में खो देते हैं।

7. सनातन काल से असंख्य लोग इस भ्रांतिमय संसार में पैदा होते आ रहे हैं और कष्ट भोग रहे है और आज भी पैदा हो रहे हैं। किन्तु यह सौभाग्य

की बात हैं कि संसार में भगवान बुद्ध के उपदेश विद्यमान हैं और मनुष्य उनमें विश्वासकर अपना उद्धार कर सकते हैं।

अतः, लोगों को चाहिए कि गहरा चिंतन करें, अपने मन को पवित्र रखें और शरीर को स्वस्थ रखें, लोभ और पाप से दूर रहें और कल्याण की साधना करें।

हमें, सौभाग्य से, भगवान बुद्ध के उपदेशों का लाभ हुआ है; हमें उनमें श्रद्धा रखनी चाहिए और बुद्ध-क्षेत्र में पैदा होने की कामना करनी चाहिए। बुद्ध के उपदेशों को जान लेने के बाद, हमें दूसरों का अनुसरण करके लोभ और पाप के मार्गों पर नहीं चलना चाहिए। साथ ही हमें बुद्ध के उपदेशों को केवल अपने तक ही नहीं रखना चाहिए, अपितु उन उपदेशों के अनुसार आचरण करना और उन्हें दूसरों तक पहुँचाना चाहिए।

पंचम अध्याय

बुद्ध की दी हुई मुक्ति

1
अमिताभ बुद्ध के प्रणिधान (संकल्प)

1. जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, लोग सदा सांसारिक वासनाओं के वश होकर एक के बाद एक पापकर्म करते चले जाते हैं और अवांछनीय कर्मों का भार ढोते रहते हैं। उनके लिए यह संभव नही होता कि वे निजी ज्ञान यानिजी शक्ति से लोभ और भोगलालसा के बंधनों को तोड़े। जब उनके लिए सांसारिक वासनाओं पर विजय पाना या उन्हें नष्ट करना संभव नहीं, तब वे बुद्धत्व के सत्य स्वभाव का साक्षात्कार भला केसे कर सकते हैं?

मनुष्य-स्वभाव के पूर्ण ज्ञाता बुद्ध के मन में मनुष्यों के प्रति अपार करुण थी और उन्होनें प्रतिज्ञा की थी कि भले ही कितने भी कष्ट क्यों न उठाने पड़ें, मनुष्यों को भय और दुःखों से मुक्त करने के लिए वे यथासंभव सब कुछ करेंगे। इस मुक्ति को कार्यान्वित करने के लिए, बहुत पुरातन काल में वे बोधिसत्त्व के रूप में प्रकट हुए और उन्होंने ये दस प्रणिधान किए थे :

(क) मैं स्वयं बुद्धत्वप्राप्ति कर लूँ फिर भी जब तक मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा हुए सभी तत्त्वों का बुद्धत्व में प्रवेश करना और निर्वाण प्राप्त करना निश्चित नहीं हो जाता, स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा

(ख) में स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी मेरी प्रभा प्रामाणिकी (मर्यादित) होकर विश्व के कोने-कोने को प्रकाशित न कर दे तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(ग) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी यदि मुझे कुछ सीमित समय तक ही जीना पड़े, चाहे वह सीमा कई हजारों अथवा लाखों वर्षों की क्यों न हो तब तक मैं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(घ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दसों दिशाओं के सभी बुद्ध मेरी प्रशंसा नहीं करते, मेरे नाम का संकीर्तन नहीं करते तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(ङ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दसों दिशाओं के सभी सत्त्व सच्ची श्रद्धापूर्वक दस बार मेरे नाम का जापकर सच्ची श्रद्धा के साथ मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा होने का प्रयास करके भी पैदा होने में सफल नहीं होते, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्सोंधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(च) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दसों दिशाओं के सभी सत्त्व चित्त में अनुत्तरसम्यक्संबोधि की कामना करते हुए, बहुत पुण्य की प्राप्ति कर सच्चे दिल के साथ मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा होने की इच्छा रखते हुए भी, यदि उनका मरणकाल उपस्थित हो जाए और मैं उस समय महान् बोधिसत्त्वों से परिवृत उस व्यक्ति के सामने खड़ा न होने पाऊँ, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(छ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दशों दिशाओं के सत्त्व मेरा नाम सुनकर मेरे बुद्धक्षेत्र में चित्त को प्रेरितकर, उसके लिए असंख्य

कुशल मूलों का अवरोपणकर, दिल लगाकर दान-पुण्यकर मेरे बुद्धक्षेत्र में पैदा होने की कामना रखें और फिर भी इच्छा के अनुसार उसमें पैदा न होने पाएँ, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूंगा

(ज) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ, फिर भी जब तक मेरे बुद्ध क्षेत्र में पैदा हुए सत्व 'एक-जाति-प्रतिबद्ध' यानी अगले जन्म में बुद्ध बनने की योग्यता रखने वाले' न हों, तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा। इस प्रतिज्ञा में वो सत्व नहीं है जो, अपने निजि प्रणान्सार, मनुष्यों के हित हेतु अपने महाप्रण का कवच पहनते हुए, संसार के कल्याण और शान्ति हेतु असंख्य लोगों को निर्वाण प्राप्त कराकर, महाकरुणा का पुण्य प्राप्त करते हैं।

(झ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी संसार के सभी लोग तन-मन को पवित्रकर उन्हें सांसारिक बातों से ऊपर उठानेवाली मेरी प्रेमभरी करुणा की भावना से प्रभावित नहीं होते, तब तक स्वयं अनुत्तर सम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

(ञ) मैं स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर लूँ फिर भी दशों दिशाओं के सभी बुद्धक्षेत्र के सत्त्व, मेरा नाम सुनकर, जन्म और मृत्यु के संबंध में सही धारणाएँ नहीं सीखते और सांसारिक ताप, क्लेश और दु:खों के बीच मन को शान्त और पवित्र बनाए रखनेवाला पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेते तब तक स्वयं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा।

"इस प्रकार मैं प्रतिज्ञाएँ करता हूँ और जब तक वे पूरी नहीं होतीं मैं अनुत्तरसम्यक्संबोधि प्राप्त नहीं करूँगा। मैं अपकिरमित प्रभा का स्वामी बनकर सभी देश को प्रकाशित कर संसार के कष्टों को दूर करूँगा और लोगों के लिए उपदेशों के भंडार खुलवाकर, व्यापक रूप से पुण्य के रत्नों का दान करूँगा।"

2. इस प्रकार, अनेक कल्पों तक असंख्य पुण्यों का संचय कर आमिदा अर्थात् अमिताभ या अमितायु बुद्ध बने और अपने बुद्धक्षेत्र को पवित्रता

से परिपूर्ण किया, जिससे स्वर्गीय वातावरण में रहते हुए वे लोगों को उपदेश देकर उनका उद्धार कर रहे हैं।

यह सुखावती लोकधातु, जहाँ किसी प्रकार का दुःख नहीं, सचमुच, अत्यधिक सुख ओर शांति से परिपूर्ण है। वहाँ के रहनेवाले, जब-जब इच्छा करते हैं, उनके सामने वस्त्र, अन्न और सभी प्रकार की सुंदर वस्तुएँ प्रकट हो जाती हैं। जब-जब वहाँ के पारिजात वृक्षों को टहनियों में पवन अठखेलियाँ करता है तो ज्ञानगर्भित दिव्यवाणी दसों दिशाओं में व्याप्त हो जाती है, जिससे सुननेवालों के चित्त का मैल धुल जाता है।

इस सुखावती लोकधातु में तरह-तरह के सुगंधित कमल पुष्प खिलते हैं, जिनकी अति सुन्दर कोमल पँखुड़ियाँ अनिर्वचनीय दिव्य आभा से द्युतिमान होती रहती है! कमल पुष्पों की यह दिव्य आया ज्ञान के पथ को प्रकाशित करती और इस पवित्र उपवेश का श्रवण करनेवालों को परम शांति प्रदान करती है।

3. दसों दिशाओं के सभी बुद्ध इस अमिताभ अथवा अमितायु बुद्ध का गुणगान किया करते हैं।

जो भी मनुष्य इस बुद्ध के नाम का श्रवण करेगा, उसमें गहरी आस्था रखेगा, आनन्दित होगा, वह उस बुद्ध के क्षेत्र में जन्म ले सकेगा।

जो उस सुखावती में जन्म लेते हैं, उन्हें अमितायु बुद्ध के समान अनन्त आयु प्राप्त होती है और वे भी दूसरे सत्त्वों के उद्धार का प्रणिधान लेकर, उस प्रणिधान के अनुसार कार्य करने में लग जाते हैं।

अपने इस प्रणिधान के कारण वे सभी आसक्तियों का त्याग करते हैं और इस संसार की अनिन्तया का साक्षात्कार करते हैं। वे सभी जीवों के उद्धार के लिए अपनु पुण्यों की पूँजी लगा देते हैं; वे दूसरे सभी जीवों की भ्रांतियों और दु:खों में सहभागी होते हुए उनके और अपने जीवन को एकाकार कर देते हैं; किन्तु साथ ही सांसारिक जीवन के बंधनों और आसक्तियों से स्वयं मुक्त हो जाते हैं।

सांसारिक जीवन की बाधाओं और कठिनाइयों से वे भली भांति परिचित होते हैं, किन्तु साथ ही उन्हें बद्ध की करुणा की असीम संभावनाओं का भी ज्ञान होता है। वे स्वेच्छा से आ-जा सकते हैं, वे स्वेच्छा से आगे बढ़ या रुक सकते हैं, फिर भी वे उन लोगों के साथ रहना पसन्द करते हैं, जिनपर बुद्ध की करुणा होती है।

अत: जो भी इस अमिताभ बुद्ध का नाम सुनकर परम श्रद्धा से एक बार भी उसका जप करेगा वह बुद्ध की करुणा का भागी हो सकेगा। अत: सब लोगों को चाहिए कि वे बुद्ध के उपदेश का श्रवण और अनुसरण करें, चाहे वह उन्हें फिर से जन्म-मृत्यु के संसार को व्याप्त करनेवाली ज्वालाओं में से ले जानेवाला ही क्यों न प्रतीत हो।

अनुत्तरसम्यक्संबोधि की वास्तव में कामना करनेवालों को बुद्ध की शक्ति पर भरोसा करना होगा। सामान्य मनुष्य के लिए बुद्ध के आधार के बिना अनुत्तरसम्यक् संबोधि प्राप्त करना सर्वथा असंभव है।

4. अमिताभ बुद्ध यहाँ से कहीं दूर नहीं हैं। कहा जाता है कि उनकी सुखावती लोकधातु कहीं दूर पश्चिम दिशा में है; किन्तु वह तो उन लोगों के हृदय में भी है, जो दिल से उनके साथ रहने की इच्छा रखते हैं।

जब कुछ लोग अपने चित्त में अमिताभ बुद्ध की सुवर्ण आभा में दमकती आकृति चित्रित करते हैं, तो चित्र चौरासी हजार आकृतियों अथवा विशषताओं में प्रकीर्ण हो जाता है। हर आकृति या विशेषता चौरासी हजार किरणें प्रकाशित करती है और हर किरण विश्व को प्रकाशित करती हुई, बुद्ध के नाम का जप करनेवाले किसी भी व्यक्ति को अँधेरे में नहीं रहने देती। इस प्रकार बुद्ध लोगों के लिए बुद्धत्व मुक्ति का लाभ उठाने में सहायक होते हैं।

बुद्ध की मूर्ति का दर्शन मनुष्य को बुद्ध के हृदय का दर्शन कराने में सहायक होता है। बुद्ध का हृदय महाकरुणा से भरा हुआ है, जिसमें सभी लोग समाये रहते हैं, वे भी जो उनकी करुणा को नहीं जानते या भूल गए है; फिर जो उनका श्रद्धापूर्वक स्मरण करते हैं उनका तो कहना ही क्या!

श्रद्धा रखनेवालों को वे अपने साथ एक रूप हो जाने का अवसर प्रदान

करते हैं। क्योंकि बुद्ध की काया सबके लिए समान रूप से सर्वसमावेशी है; जो भी उनका स्मरण करता है, बुद्ध भी उसका स्मरण करते हुए उसके मन में प्रवेश करते हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि जब हृदय बुद्ध का ध्यान करता है, तब वह हृदय वास्तव में परिपूर्ण आकृति या विशेषता से युक्त बुद्ध ही है। यह हृदय स्वयं बुद्ध बन जाता है; यह हृदय स्वयं बुद्ध ही है।

अत: निर्मल और सच्ची श्रद्धा रखनेवाले मनुष्य को अपने हृदय की कल्पना बुद्ध के हृदय के रूप में करनी चाहिए।

5. बुद्ध का शरीर विभिन्न रूप धारण करने में सक्षम है और हर मनुष्य की क्षमता के अनुरूप विविध रूपों में प्रकट हो सकता है।

वे अपने शरीर को विराट रूप में प्रकट कर सारे आकाश और अनन्त नक्षत्रलोक के अवकाश को व्याप्त करते हैं। वे अपने को सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में भी प्रकट करते हैं कभी आकारों में, कभी शक्ति में, कभी मन में पहलुओं में तो कभी व्यक्तित्व में।

फिर भी किसी न किसी रूप में उन लोगों के सामने अवश्य प्रकट होते हैं, जो श्रद्धा से उनके नाम का जप करते हैं। ऐसे लोगों के सामने वे सदा दो बोधिसत्त्वों के साथ प्रकट होते हैं–करुणा के बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर और ज्ञान के बोधिसत्त्व महास्थामप्राप्त। उनका यह

प्रकटीकरण विश्वव्यापी होने के कारण यद्यपि कोई भी देख सकता है, किन्तु वास्तव में श्रद्धावान् लोग ही उन्हें देख पाते हैं।

जो उनका आधिभौतिक रूप देख पाते हैं वे अपरिमित संतोष और सुख पाते हैं। और जो सच्चे बुद्ध को देख पाते हैं उसको तो अगणित आनंद और अखण्ड शांति का लाभ होता है।

6. अमिताभ बुद्ध का हृदय साक्षात् महान करुणा तथा प्रज्ञा ही है इसलिए वे किसी भी मनुष्य का उद्धार कर सकते हैं।

सबसे दुष्ट लोग–जो अविश्वसनीय अपराध करते हैं, जिनके मन में लोभ, क्रोध और मूढ़ता भरी होती है; जो झूठ बोलते हैं, बकवास करते हैं, गालियाँ देते हैं और ठकते है; जो हत्या करते हैं, चोरी और व्यभिचार करते हैं; वर्षों के दुष्कर्मो के बाद जो अपने जीवन की अंतिम घड़ी में पहुँच गए हैं–उन्हें निश्चित ही अनंतकाल तक कष्ट भुगतने पड़ेंगे।

एक भला मित्र उनके पास आ जाता है और उनकी अंतिम घड़ी में उन्हें समझाता है, "भाइयों तुम लोग अब मृत्यु के सम्मुख हो; अब तुम अपेन जीवन से दुष्कर्मो को मिटा नहीं सकोगे, किन्तु तुम अमिताभ बुद्ध के नाम का जाप करके उसकी करुणा की शरण में जा सकते हो।"

यदि ऐसे दुष्ट लोग एकाग्र चित्त से अमिताभ बुद्ध के पवित्र नाम का

जाप करें तो उनके सब पाप, जो उन्हें निश्चित रूप से भ्रांतिपूर्ण संसार के मोह जाल में भरमाये रहते हैं, नष्ट हो जाएँगे।

यदि केवल पावन नाम का जाप ही ऐसा चमत्कार कर सकता है तो अगर हम अपना हृदय इस बुद्ध पर केन्द्रित कर सकें तो कहना ही क्या!

इस प्रकार पावन नाम का जाप करनेवालों की जब अन्तिम घड़ी आ जाएगी, तब अमिताभ बुद्ध बोधिसत्त्व अवलोकितेश्वर ओर बोधिसत्त्व महास्थामप्राप्त के साथ उनके सामने प्रकट होंगे ओर वे सुखावती लोक धातु को ले जाए जाएँगे, जहाँ वे पुण्डरीक की पूर्ण पवित्रता के साथ जन्म लेंगे।

अतः हर एक को यह प्रार्थना ध्यान में रखनी चाहिए: 'नमु आमिदा बुत्सु!' (नमो अमिताभबुद्धाय!) अर्थात मैं अतिम प्रकाश और अतिम आयुवाले बुद्ध की शरण जाता हूँ।

2
अमिताभ बुद्ध की पवित्र भूमि-सुखावती

1. अमिताभ बुद्ध अमितायु बुद्ध चिरंजीव हैं और वर्तमान में भी धर्मोपदेश कर रहे हैं। उनकी सुखावती लोकधातु में न किसी प्रकार का दु:ख है, न अंध:कार और वहाँ हर दिन आनंद में बीतता है। इसलिए उसे स्वर्गभूमि कहते हैं।

इस सुखावती लोकधातु में अनेक सप्तरत्नमयी पुष्करिणियाँ हैं, जो निर्मल जल से परिपूर्ण हैं, जिनके तल में सुवर्णबालुका बिछी हुई है और

जिन में रथचक्र जितने बड़े विभिन्न रंगों के कमल खिले हुए हैं। नीलवर्ण के फूलों पर नीली, पीतवर्ण के फूलों पर पीली, लोहितवर्ण के फूलों पर लाल तथा श्वेतवर्णों के फूलों पर शुभ्र आभा विकसित है और उनकी दिव्य सुगन्ध से सारा वातावरण गमक रहा है।

उन पुष्करिणियों के चतुर्दिक सुवर्ण, रौप्य, वैदूर्य तथा सूर्यकान्त मणियों से बने मंडप हैं, जहाँ से पुष्करिणियों के तट तक स्फटिक सोपान बने हुए हैं। कहीं-कहीं वेदिकाएँ बनी हुई हैं जो रत्नखचित परदों और जालियों से परिवृत हैं। बीच-बीच में सुगंधित वृक्षों के झुरमुट और खिले हुए फूलों से सुशोभित पौधे लगे हुए हैं।

वहाँ आकाश मं दिव्य संगीत गूँजता है और पृथ्वी पर सुवर्ण वर्ण की आभा फैली रहती है। रात को तीन बार और दिन में तीन बार दिव्य मान्दारपुष्पों की वर्षा होती है। उस बुद्धक्षेत्र के लोग उन फूलों को एकत्रितकर टोकरी में रखकर अन्य लोक धातुओं को जाते और वहाँ के असंख्य बुद्धों को समर्पित करते हैं।

2. फिर इस बुद्धक्षेत्र के उद्यानों में हंस, मयूर, शुक, सारिका, कलविक आदि असंख्य पक्षी कलकूजित स्वर से बुद्ध के पुण्यों और गुणों की प्रशंसा करते हुए उनके उपदेशों का प्रचार करते हैं।?

जो भी इन पक्षियों का कलकूजन सुनता है उसे बुद्ध का स्मरण हो

आता है, धर्म का स्मरण हो आता है और संघ का स्मरण हो आता है। जो भी इन पक्षियों का कलकूजन सुनता है उसे लगता है कि वह बुद्ध की वाणी ही सुन रहा है और वह नए सिरे से बुद्ध के प्रति अपनी श्रद्धा दृढ़ करता है, उपदेश सुनने के आनन्द का अनुभव करता है, शान्ति-लाभ करता है, और सभी बुद्धक्षेत्रों के बुद्धों के उपदेशों को ग्रहण करनेवाले सत्त्वों के साथ भ्रातृत्व दृढ़ करता है।

मन्द पवन पारिजातवृक्षों की पंक्तियों में से गुजरता है और रत्न खचित परदों को हिलाता है, तब उससे ऐसी मधुर ध्र्वान निकलती है, मानो अनेकविध वाद्यों का संगीत प्रतिध्वनित हो रहा हो।

इस संगीत लहरी को सुनने वाला, फिर स्वाभाविक रूप से बुद्ध का स्मरण करता है, धर्म का स्मरण करने लगता है और संघ का स्मरण करने लगता है। वह बुद्धक्षेत्र इस प्रकार के गुणव्यूहों से समलंकृत हैं।

3. किस कारण से उस बुद्धक्षेत्र के बुद्ध को अमिताभ अथवा अमितायु कहते हैं? इसलिए कि इन बुद्ध की प्रभा अपरिमित होकर, दशों दिशाओं के बुद्धक्षेत्रों को प्रकाशित करके जरा भी नहीं घटती। फिर उनकी आयु भी अपरिमित होने के कारण उन्हें अमितायु कहा जाता है।

फिर दूसरा कारण यह है कि उस बुद्धक्षेत्र में पैदा होने वाले सभी सत्त्व अविवर्तनीय-अर्थात् दुबारा भ्रांति के संसार में न लौटनेवाले होते हैं और उनकी संख्या अप्रमेय होती है।

और एक कारण यह भी है कि इन बुद्ध की प्रभा से नए जीवन का साक्षात्कार करनेवालों की संख्या भो अप्रमेय है।

अत: जो भी इन बुद्ध का नाम एकाग्र चित्त से, अविपक्षिप्त चित्त होकर एक दिन अथवा सात दिन तक हृदय में धारण करे तो उस मनुष्य की अंतिम घड़ी में ये बुद्ध बोधिसत्त्वों और श्रावकसंघ के साथ उसके सामने प्रकट होंगे। वह मनुष्य शांत चित्त से प्राण छोड़ेगा और तुरन्त उन बुद्ध की सुखावती लोकधातु में पैदा होगा।

यदि कोई मनुष्य अमिताभ बुद्ध का नाम सुनकर उनके उपदेशों में विश्वास करे, तो वह बुद्धपरिगृहित (सब बुद्धो से रक्षित) बनकर अनुत्तर सम्यक्संबोधि प्राप्त करेगा।

साधना का मार्ग

प्रथम अध्याय

विशुद्धि का मार्ग

1
चित्त-शुद्धि

1. मनुष्य की भ्रांति और दुःखों का कारण क्लेश होते हैं। इन क्लेशों से मुक्त होने के पाँच मार्ग हैं।

पहला मार्ग है, सम्यक्दृष्टि से वस्तुओं को देखते हुए, उनके कारणों और परिणामों को ठीक से पहचाना। सभी दुःखों का मूल कारण हृदय में स्थित क्लेश होते हैं। इसलिए यह ठीक से समझ लेना चाहिए कि यदि ये क्लश नष्ट हो जाएँ तो दुःखरहित अवस्था प्रकट होती।

मिथ्यादृष्टि के कारण आत्मदृष्टि तथा कार्य-कारण- संबंधी नियम की उपेक्षा करने का विचार उठता है, और मिथ्यादृष्टि के वश में होन के कारण क्लेश पैदा होकर भ्रांति और दुःख भोगने पड़ते हैं।

दूसरा मार्ग है, वासनाओं पर विजय पाकर क्लेशों का शमन करना। मनः संयम के द्वारा नेत्र, कर्ण, नासिका, जिह्वा, त्वचा और चित्त इन षडिंन्द्रियों में पैदा होने वाली वासनाओं को संयत करके उनका शमन

करना, जिससे क्लेशों का मूलस्रोत ही कट जाए।

तीसरा मार्ग है, सभी वस्तुओं का उपयोग करते समय, ठीक विचार से उनका उपयोग करना। वस्त्र पहनते समय या अन्न ग्रहण करते समय केवल उपभोग का विचार न करें। वस्त्र तो गर्मी या सर्दी से बचने के लिए और लज्जा ढँकने के लिए होते हैं और अन्न धर्मसाधना का मूलसाधन जो शरीर है उसके पोषण के लिए है, ऐसा मानना चाहिए। ऐसा विवेक रखने से क्लेश पैदा होना असंभव हो जाता है।

चौथा मार्ग है, तितिक्षा, अर्थात् सब सहन करने की शक्ति। गर्मी हो या सर्दी, भूख हो या प्यास उसे सहन करना चाहिए। कोई गाली दे या निन्दा करे तो भी उसे सहन करने से, अपने शरीर को जलाकर भस्म कर देनेवाली क्लेशों की आग बुझ जाती है।

पाँचवाँ मार्ग है, सभी प्रकार के संकटों से यथासंभव दूर रहना। सयाने लोग जंगली घोड़ों या पागल कुत्तों से दूर रहते हैं, वैसे ही जहाँ नहीं जाना चाहिए ऐसे स्थानों से या जिनसे संबंध नहीं रखना चाहिए ऐसे बुरे मित्रों से दूर रहना। ऐसा करने से क्लेशों की आग का शमन हो जाता है।

2. संसार में पाँच प्रकार की वासनाएँ होती हैं।

आँखों द्वारा देखे जाने वाले आकारों के कारण, कानों द्वारा सुनी जानेवाली ध्वनियों के कारण, नाक द्वारा सूँघी जानेवाली सुगंधों के कारण जिह्वा को भानेवाले स्वादों के कारण तथा त्वचा को भानेवाले स्पर्शो के कारण तरह-तरह की वासनाएँ पैदा होती हैं। इन पाँच इन्द्रिय-द्वारों से शरीर की भोग-लालसा पैदा होती है।

अधिकतर लोग शरीर की भोग-लालसा के वश होकर, भोग के बाद पैदा होनेवाले बुरे परिणामों को नहीं देखते, और जैसे वन में बहेलिये के जाल में हिरन फँस जाता है, वैसे ही मार के फैलाए हुए जाल में फँस जाते हैं। सचमुच इन्द्रिय-रूपी वासनाओं के ये पाँच द्वार बहुत ही खतरनाक जाल हैं। उनमें फँस जाने पर मनुष्य में क्लेशों का उद्भव होता है और उसे दुःख भोगना पड़ता है। इसलिए उसे इन जालों से बचने का उपाय जान लेना चाहिए।

3. यह उपाय केवल एक ही नहीं हो सकता। मान लीजिए कि हम साँप, मगरमच्छ, चिड़िया, कुत्ता, लोमड़ी और बन्दर इस प्रकार छह बिलकुल भिन्न स्वभाववाले प्राणियों को पकड़कर उन्हें किसी दृढ़ रज्जु से एक साथ बाँधकर रख दें तो ये छह प्रकार के प्राणी, अपने भिन्न स्वभावों के अनुसार अपने-अपने रहने के स्थान की ओर अपने-अपने ढंग से जाने की कोशिश करेंगे। साँप अपने बिल में, मगरमच्छ पानी में, चिड़िया आसमान में, कुत्ता गाँव में, लोमड़ी सूने मैदान में और बन्दर जंगल में जाना चाहेगा और इसलिए उनमें पारस्परिक संघर्ष होगा, और एक ही रज्जू से बँधे होने के कारण जिनकी शक्ति सब से अधिक होगी, वह दूसरों को अपने साथ

घसीट जाएगा।

ठीक इस दृष्टान्त के अनुसार मनुष्य नेत्र, श्रवण, नासिका, जिह्वा, त्वचा और चित्त इन षडिन्द्रियों की वासनाओं द्वारा विविध प्रकार से लुभाए जाते हैं और प्रबल वासना के अधीन हो जाते हैं।

यदि इन छह प्राणियों को एक खंभे से बाँध दिया जाए, तो वे तब तक छूटने की कोशिश करते रहेंगे, जब तक कि थककर चूर न हो जाएँ और फिर खंभे के पास चुपचाप पड़े रहेंगे। ठीक वैसे ही, यदि लोग अपने मन को अभ्यास के द्वारा संयत करें तो बाकी पाँच इन्द्रियाँ उन्हें और नहीं सताएँगी। यदि मन संयत हो तो लोगों को वर्तमान में और भविष्य में सुख का लाभ होगा।

4. लोग अपने अहंकार की तृप्ति के लिए यश-कीर्ति की कामना करते हैं। किन्तु यश-कीर्ति तो उस अगरु के समान है, जो कुछ देर जलकर बुझ जाता है। लोग अगर सम्मान और लोकेषणा के पीछे पड़ जाएँ और सत्यपथ से विचलित हो जाएँ, तो वे बड़े संकट में हैं और उन्हें शीघ्र ही पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

जो मनुष्य कीर्ति, संपत्ति और विषयवासना के चक्कर में पड़ जाता है, वह छुरी की धार पर लगे हुए शहद को चाटनेवाले बच्चे के समान है। शहर के माधुर्य का स्वाद लेते समय वह अपनी जिह्वा को घायल कर लेता है। वह उस आदमी के समान है जो तेज हवा के विरुद्ध मशाल को लेकर चलने की कोशिश कर रहा है; मशाल निश्चित ही उसके हाथों और चेहरे को जला देगी।

लोभ, क्रोध और मूढ़ता से भरे मन पर भरोसा नहीं करना चाहिए। मन को स्वतंत्र, निर्बाध दौड़ने नहीं देना चाहिए, उस पर कड़ा नियंत्रण रखना चाहिए।

5. संपूर्ण मन:संयम अत्यंत कठिन है। निर्वाण प्राप्ति की कामना करने वालों को पहले अपनी सब वासनाओं की ज्वालाओं को बुझा देना होगा। वासना एक जलती आग है, निर्वाण-प्राप्ति की कामना रखनेवालों को वासना की आग से बचे रहना चाहिए, जैसे घास के बोझ को उठाकर ले जानेवाला आदमी आग की चिनगारियों से बचकर रहता है।

किन्तु यह भी बड़ी मूर्खता होगी कि मनुष्य सुन्दर आकृतियों से मोहित होने के डर से अपनी आँखें ही निकाल बैठे। मन ही सब इन्द्रियों का स्वामी है, अगर मन पूरा नियंत्रित हो तो दूसरी दुर्बल वासनाएँ अपने-आप नष्ट हो जाएँगी।

निर्वाण के पथ का अनुसरण करना कठिन है, किन्तु उस पथ पर चलने का मन ही न हो तो वह और अधिक कठिन हो जाता है। बिना निर्वाण-प्राप्ति के जन्म-मृत्यु के इस संसार में दु:ख ही दु:ख भरा हुआ है।

निवार्ण के पथ का अनुसरण करना बैल के भारी बोझ पीठ पर लेकर कीचड़ से भरे खेल में होकर चलने के समान है। यदि बैल दूसरी बातों की ओर ध्यान दिए बिना अपनी सारी शक्ति लगाकर चलता रहे तो कीचड़ पार कर सकेगा और विश्राम ले सकेगा। ठीक वैसे ही यदि चित्त निर्योत्रत हो और उसे सत्थ-पथ से विचलित न होने दिया जाए, तो लोभ का कीचड़ बाधक नहीं होगा और चित्त के सभी दु:ख नष्ट हो जाएँगे।

6. निर्वाण के पथ का अनुसरण करनेवालों को सर्वप्रथम अहंकार का त्याग करना चाहिए और विनम्र भाव से बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण करने के लिए तैयार रहना चाहिए।

अच्छे स्वास्थ्य का आनंद लेने के लिए, अपने परिवार को सच्चा सुख देने के लिए, सब लोगों को शांति प्रदान करने के लिए हमें सबसे पहले अपने मन को वश में करना चाहिए। यदि मनुष्य अपने मन को नियंत्रित कर सके तो उसे निर्वाण का मार्ग मिल जाएगा और सभी ज्ञान और पुण्य उसे अपने-आप प्राप्त हो जाएँगे।

जैसे पृथ्वी में से रत्न निकलते हैं वैसे ही पुण्य सत्कर्मों से प्रकट होते हैं और ज्ञान पवित्र और शांत हृदय में पैदा होता है। मनुष्य-जीवन की भुलभुलैया में से सुरक्षित आगे बढ़ना हो, तो हमें ज्ञान के प्रकाश तथा सद्गुणों के मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

लोभ, क्रोध और मूढ़ता इन तीन विषों का त्याग करना चाहिए, इस आशय का बुद्ध का उपदेश अच्छा उपदेश है और जो उसका पालन करते हैं उन्हें सुखमय जीवन का आनन्द और शान्ति प्राप्त होती है।

7. सभी मनुष्य अपने विचारों के अनुसार आचरण करते हैं। यदि उनके मन में लोभ के विचार उठें तो वे लोभी हो जाते हैं; क्रोध के विचार उठें तो वे अधिक क्रोधी हो जाते हैं; यदि उनमें प्रतिहिंसा के विचार पैदा हो जाएँ तो वे उसी ओर कदम बढ़ाते हैं।

फसल के समय किसान अपने ढोरों को बाँधकर रखते हैं कि कहीं वे बाड़ तोड़कर दूसरों के खेतों में घुस न जाएँ और इस तरह पीटे या मार न डाले जाएँ। ठीक उसी प्रकार मनुष्यों को बेईमानी और बुरी बातों से अपने मन को अच्छी तरह बचाना चाहिए। उन्हें लोभ, क्रोध और मूढता को उत्तेजित करनेवाले विचारों को अपने मन से हटा देना चाहिए, किन्तु परोपकार और दयालुता को उत्तेजन देनेवाले विचारों को प्रोत्साहित करना चाहिए।

जब वसन्त का आगमन होता है और चरागाह हरी घास से लहलहाने लगते हैं, तो किसान अपने मवेशियों को खुला छोड़ देते हैं, किन्तु उस समय भी उनकी उन पर कड़ी नजर रहती है। मनुष्यों के मन के साथ भी ऐसा ही होना चाहिए; उत्तम अनुकूल परिस्थिति में भी मन पर से नजर हटाई नहीं जानी चाहिए।

8. एक बार शाक्यमुनि बुद्ध कौशाम्बी नगर में विहार कर रहे थे। उस नगर में उनका द्वेष करनेवाला एक मनुष्य था जिसने दो दुष्टों को घूस देकर नगर में बुद्ध के संबंध में गलत अफवाहें फैलाईं। ऐसी स्थिति में उनके शिषयों को भिक्षा में पर्याप्त अन्न मिलना कठिन हो गया और नगर में उनकी बहुत निन्दा होने लगी।

आनन्द ने शाक्यमुनि से कहा, ''भगवान, हमें ऐसे नगर में विहार नहीं करना चाहिए। विहार के लिए और दूसरे अच्छे नगर हैं। हमें यह नगर छोड़कर चला जाना चाहिए।''

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया: ''मान लो कि अगला नगर भी ऐसा ही हो, तो हम क्या करेंगे?''

"तो हम दूसरे नगर में चले जाएँगे।"

भगवान ने कहा: "नहीं आनन्द, इसका कोई अन्त नहीं होगा। हमें यहीं रहना चाहिए और धैर्य से निन्दा को सहन करना चाहिए, जब तक कि उसका अन्त न हो जाए। और तब हमें दूसरे स्थान में जाना चाहिए।

"इस संसार में लाभ-हानि, मानापमान, निन्दा-स्तुति, सुख-दु:ख होते ही हैं। बुद्ध इन बाह्य उपाधियों से विचलित नहीं होते। जैसे वे उत्पन्न होती हैं, वैसे ही उनका अन्त भी हो जाता है।"

2
सदाचार का मार्ग

1. निर्वाणपथ पर चलनेवाले को काया, वाचा और मन की पवित्रता का सतत ध्यान रखना चाहिए। काया को पवित्र रखने के लिए किसी भी जीव की हत्या नहीं करनी चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए और व्यभिचार से बचना चाहिए। वाणी की शुद्धता के लिए झूठ नहीं बोलना चाहिए, निन्दा नहीं करनी चाहिए, किसी को ठगना नहीं चाहिए, और व्यर्थ बकवास नहीं करनी चाहिए। मन की शुद्धि के लिए लोभ, क्रोध और स्वार्थपरक दृष्टि का त्याग करना चाहिए।

यदि मन अशुद्ध है तो निश्चित ही सारे आचरण अशुद्ध हा जाएँगे; यदि आचरण अशुद्ध हो, तो दु:ख ही पैदा होगा। इसलिए मन और शरीर को पवित्र रख्ना सबसे महत्त्वपूर्ण है।

2. पुराने समय में एक धनी विधवा थी, जो अपनी दयालुता विनय शीलता और शील के लिए प्रसिद्ध थी। उसके पास एक नौकरानी थी, जो बहुत सयानी और परिश्रमी थी।

एक दिन उस नौकरानी ने सोचा: ''मेरी मालकिन की ख्याति बहुत अच्छी है। भला व सचमुच स्वभाव से ही अच्छी है या परिस्थितियों ने उसे अच्छा बनाया है? मैं उसकी परीक्षा लूँगी।''

अगले दिन वह नौकरानी दोपहर तक अपनी मालकिन की सेवा मे नहीं गई। मालकिन बहुत नाराज़ हुई और उसने नौकरानी को बहुत डाँटा। नौकरानी ने कहा:

''अगर मैं एकाध दिन अलसा जाऊँ, तो आपको धीरज नहीं खोना चाहिए।'' यह सुनकर मालकिन को और गुस्सा आया।

दूसरे दिन नौकरानी फिर देर से उठी। इससे मालकिन बहुत गुस्सा हो गई और उसने नौकरानी को छड़ी से पीटा। यह बात सर्वत्र फैल गई और वह धनी विधवा बदनाम हो गई।

3. बहुत-से लोग इस विधवा के समान होते हैं। अनुकूल परिस्थितियों में वे दयालु, विनयी और क्षमाशील होते हैं। किन्तु परिस्थितियाँ बदल जाने और प्रतिकूल हो जाने पर भी वे वैसा ही व्यवहार करेंगे, यह नहीं कहा जा सकता।

उस व्यक्ति को हम तभी भला कह सकते हैं जब वह कानों में अप्रिय शब्द पड़ने पर भी, दूसरों द्वारा दुर्व्यवहार किए जाने पर भी अथवा अन्न

वस्त्र और निवास की कमी होने पर भी मन को शुद्ध, शान्त और स्थिर रखे और भलाई का व्यवहार करता रहे।

इसलिए जो लोग तभी तक भला काम करें और मन को शांत रख सकें, जब तक कि परिस्थितियाँ संतोषजनक हों तो, वे वास्तव मे भले लोग नहीं होते। केवल उन्हीं लोगों को वास्तव में अच्छा विनयी और शांत कहा जा सकता है, जिन्होंने बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण किया है और जो उन उपदेशों के अनुसार अपने मन और शरीर को साध रहे हैं।

4. उचित शब्दों के प्रयोग के संबंध में सोचा जाए तो पाँच प्रकार के विपरीत अर्थबोधक शब्दों के जोड़े पाए जाते हैं प्रसंगानुकूल शब्द और प्रसंग के प्रतिकूल शब्द; तथ्यपूर्ण शब्द तथा तथ्यहीन शब्द; सुनने में प्रिय शब्द तथा अप्रिय कठोर शब्द: कल्याणकारी शब्द तथा हानिकारक शब्द: सहानुभूति-भरे शब्द तथा द्वेषपूर्ण शब्द।

हम जो भी शब्द मुँह से निकालें, उन्हें सावधानी से चुनना चाहिए, क्योंकि लोग उन्हें सुनेंगे और उनका उनपर अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ेगा। यदि हमारा हृदय सहानुभूति और करुणा से भरा हो, तो जो भी बुरे शब्द हम सुनेंगे उनका वह प्रतिरोधक होगा। हमें उद्धत शब्दों को अपने मुँह से निकलने नहीं देना चाहिए कि कहीं वे क्रोध और द्वेष की भावनाएँ पैदा न करें। हम जो भी शब्द बोलते हैं वे सदा सहानुभूति और विचारपूर्ण होने चाहिए।

मान लीजिए कि कोई आदमी इस पृथ्वी पर से सारी मिट्टी को हटाना

चाहे और मिट्टी को खाद कर इधर-उधर फेंकता हुआ 'मिट्टी तू नष्ट हो जा' कहता रहे तो क्या कभी मिट्टी को हटा सकेगा? वैसे ही हम सभी शब्दों का कभी हटा नहीं सकते।

इसलिए अपने मन को अभ्यास से दृढ करना और अपने हृदय की सहानुभूतिपूर्ण रखना चाहिए जिससे दूसरों के द्वारा कहे गए वचनों में अविचलित रह सकें।

चित्रांकन के समस्त साधनों के रहते हुए भी आकाश में चित्र बनाना असंभव है। उसकी तरह घास को जलाकर उसके ताप से बड़ी नदी को सुखाना या अच्छी तरह कमाए हुए चमड़े के दो टुकड़ों को घिसकर उनसे चर्रमर्र की ध्वनि निकालना असंभव है। इन उदाहरणों की तरह लोगों को अपने मन को अभ्यास द्वारा इस तरह दृढ़ बना देना चाहिए कि केसे भी शब्द क्यों न सुनने पड़े हृदय कभी विचलित न हो।

उन्हें अपने मन को अभ्यास द्वारा दृढ़कर पृथ्वी के समान विशाल, आकाश के समान असीम, बड़ी नदी के समान गहरा आर अच्छी तरह कमाये हुए चमड़े मृदु रखना चाहिए।

यदि शत्रु आपको बन्दी बना ले और अत्याचार करें और आपमें प्रतिहिंसा और विरोध जागे, तो समझना चाहिए कि आप बुद्ध के उपदेश का अनुसरण नहीं कर रहे हैं। किसी भी परिस्थिति में आपको इस प्रकार सोचना-सीख लेना चाहिए : "मेरा मन स्थिर है। द्वेष और क्रोध के शब्द मेरे होठों पर नहीं आएँगे मैं अपने शत्रु को भी सर्वव्यापिनी करुणा से परिपूर्ण अपने हृदय से निःसृत सहानुभूति और दया के विचारों से परिवेरिष्टत कर लूँगा।"

5. एक लोककथा है। एक मनुष्य ने एक बाँबी देखी जो दिन में जलती और रात को धुआँ उगलती। उसने एक ज्ञानी पुरुष से उसके बारे में जानना चाहा। ज्ञानी पुरुष ने उसे तलवार से उस बाँबी को खोदने के लिए कहा। मनुष्य ने वैसा ही किया। उसको बाँबी मे से सबसे पहले छड़, फिर पानी में कुछ बुलबुले, एक जंलरा, एक बक्सा, एक कछुआ, कसाई की छुरी माँस का एक टुकड़ा और सब में अंत में एक नाग मिला। उस मनुष्य ने ज्ञानी पुरुष को बताया। तब ज्ञानी पुरुष ने उसे समझाया ''नाग के अतिरिक्त बाकी सब कुछ फैंक दो; नाग को वैसे ही रहने दो, उसे मत छेड़ना''

यह एक दृष्टान्त-कथा हैं। इसमें 'बाँबी' का अर्थ मनुष्य का शरीर हैं। 'दिन में जलने' का मतलब है लोग पिछली रात को सोची हुई बातों को दिन में कार्यान्वित करते हैं। 'रात को धुआँ उगलने' का मतलब है लोग दिन-भर किए हुए कर्मों के संबंध में रात को सोचकर आनन्द का या दुःख का अनुभव करते हैं।

इस दुष्टान्त–कथा का 'एक मनुष्य' वह व्यक्ति है जो निर्वाण की कामना करता है। 'ज्ञानी मनुष्य' बुद्ध है। 'तलवार' का मतलब है शुद्ध ज्ञान। 'खोदने' का मतल है निर्वाण-प्राप्ति के लिए प्रयास करना।

आगे इस दृष्टान्त-कथा में 'छड़' अविद्या का प्रतीक है; 'बुलबुले' क्रोध और दु:ख हैं; 'जंतरा' हिचकिचाहट और बेचैनी सूचित करता है; 'बक्सा' लोभ, क्रोध, आलस्य, चंचलता, पश्चात्ताप और भ्रांति का भण्डार सूचित करता है; 'कछुए' का अर्थ है शरीर और मन; 'कसाई की छुरी' का मतलब है पंचन्द्रियों की तृष्णाएँ; 'माँस के एक टुकड़े' का मतलब है उनमें से उत्पन्न वासना, जो मनुष्य में तृप्ति की लालसा पैदा करती है। ये सब बातें मनुष्य के लिए हानिकर हैं और इसलिए बुद्ध ने कहा, "सब कुछ फेंक दो।"

और आगे, 'नाग' क्लेश-मुक्त चित्त सूचित करता है। यदि मनुष्य ज्ञान-खड्ग से अपने आसपास की वस्तुएँ खोदता जाए तो वह अन्त में इस नाग को देख पाता है। 'नाग को वैसे ही रहने दो, उसे मत छेड़ना,' का अर्थ है खोदते चलो और क्लेशों से विमुक्त चित्त को खोद निकालो।

6. बुद्ध का एक शिष्य पिंडोल भारद्वाज, निर्वाण-प्राप्ति के बाद, अपनी जन्मभूमि का ऋण चुकाने के लिए कौशाम्बी लौटा और वहाँ उसने प्रयत्नपूर्वक बुद्ध-बीज बोने के लिए क्षेत्र-भूमि तैयार करने का विचार किया।

कौशाम्बी के नगरोपान्त में गंगा नदी के किनारे एक छोटा-सा उद्यान है, जहाँ नारियल के पेड़ों की अन्तहीन पंक्तियाँ खड़ी हैं और जहाँ शीतल पवन सतत बहता रहता है।

गर्मी के एक दिन, जब पिंडोल एक वृक्ष की शीतल छाया में ध्यानस्थ बैठा था, राजा उदयन अपने रनिवास के साथ क्रीड़ा करने इस उद्यान में आया और संगीत व मौज-शौक के बाद, किसी दूसरे वृक्ष की छाया में सो गया।

राजा को सोया देखकर, उसने साथ की स्त्रियाँ उसे वही छोड़कर घूमने निकल पड़ी और अचानक उन्होंने ध्यान में बैठे हुए पिंडोल को देखा। वे पहचान गईं कि यह कोई पहुँचा हुआ पुरुष है और उन्होंने उससे उपदेश देने के लिए प्रार्थना की और वे उसके प्रवचन को सुनने लगीं।

जब राजा की नींद खुली, तब वह अपनी स्त्रियों की खोज में निकला और देखा कि वे तो एक परिव्राजक को घेरे बैठी हैं और उसका उपदेश सुन रही है। ईर्ष्यालु और लम्पट राजा के क्रोध का कोई ठिकाना न रहा। उसने गालियाँ देते हुए पिंडोल से कहा, "श्रमण होते हुए तुम स्त्रियों के बीच बैठो और उनसे स्वैर वार्तालात का आनन्द लेते रहो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता।" पिंडोल शांति से आँखें मूँदकर बैठा रहा और उसने एक शब्द भी नहीं कहा।

गुस्से से भरकर राजा ने तलवार निकाली और पिंडोल को धमकाया, किन्तु वह मौन और शिला के समान अडिल रहा। इस पर राजा को और गुस्सा आ गया; उसने एक बाँबी तोड़कर लाल चींटियों से भरी धूल उसपर फेंकी, किन्तु तो भी पिंडोल शांति से अपमान और पीड़ा सहन करता हुआ ध्यान में बैठा रहा।

यह देखकर राजा को अपने क्रूर व्यवहार पर लज्जा आई और उसने पिंडोल से क्षमायाचना की। इस घटना के कारण बुद्ध के उपदेश को राजा के प्रासाद में प्रवेश मिला और वहाँ से वह सारे देश में फैल गया।

7. कुछ दिन बाद राजा उदयन वन में पिंडोल के निवास स्थान पर गया और उससे पूछा, ''पूज्य गुरुजी, बुद्ध क शिष्य तरुण होते हुए भी वासना के शिकार हुए बिना अपने शरीर और मन को पवित्र कैसे रख सकते हैं?''

पिंडोल ने उत्तर दिया : ''महाराज, भगवान बुद्ध ने हमें सभी स्त्रियाँ का सामन रूप से आदर करना सिखाया है। भगवान ने कहा है कि भिक्षुओ, जो स्त्रियाँ आपकी माँ की आयु की हों उन्हें आप माँ मानिए; जो बहन की उमर की हों उन्हें बहन समझिए ओर जो पुत्री की आयु की हों उन्हें पुत्री समझिए। इस उपदेश के कारण बुद्ध के शिष्य, तरुण होते हुए भी बिना वासना का शिकार हुए अपने शरीर और मन को पवित्र रख सकते हैं।''

''किन्तु गुरुजी, चित्त बड़ा ही चंचल है। माँ की आयु की, बहन की आयु की या पुत्री की आयु की स्त्रियों के संबंध में भी उसमें कामविकार पैदा होते हैं। बुद्ध के शिष्य अपनी वासनाओं का दमन कैसे करते है?''

''महाराज, भगवान ने हमें सिखाया है कि अपने शरीर को रक्त, पीप, स्वेद और लसिका जैसे अशुचि पदार्थो से भरा हुआ देखों इस प्रकार देखने से हम लोग, तरुण होते हुए भी, अपने मन को पवित्र रखकर ब्रह्मचर्य

का पालन कर सकते हैं।''

''पूज्य गुरुजी,'' राजा ने फिर प्रश्न किया, ''जिन भिक्षुओं ने अपने देह और मन को साधा हो, प्रज्ञा को परिष्कृत किया हो, उनके लिए यह कार्य सरल होगा, किन्तु जिनकी साधना अभी अपरिपक्व है, उनके लिए यह कठिन हागा। अशुचि दृष्टि से वे देह को देखने का प्रयास करें तो भी उन्हें वहाँ सौंदर्य दिखाई देगा। कुरूपता देखने का प्रयास करने पर भी सुन्दर आकृतियाँ उनका मन हर लेंगी। भगवान बुद्ध के तरुण शिष्य अपने आचरण को शुद्ध रख सकते हैं, इसका कोई और कारण होना चाहिए।

''महाराज,'' पिंडोल ने उत्तर दिया, ''भगवान ने कहा है कि 'भिक्षुओं, तुम लोग पंच इन्द्रियों के द्वारों की रखवाली करना।' जब हम अपनी आँखों से सुन्दर आकृतियाँ और रंग देखते हैं, जब हम अपने कानों से श्रवणमधुर ध्वनियाँ सुनते हैं, जब हम अपनी नाक से सुगंध सूँघते हैं अथवा जब अपनी जिह्वा से मिठाई का स्वाद लेते हैं या हाथों से मृदु वस्तुओं का स्पर्श करते हैं, तो इन आकर्षक वस्तुओं में आसक्त नहीं होते और न अनाकर्षक वस्तुओं से घृणा करते हैं। हमें इन पाँच इन्द्रियों के द्वारों की ठीक रखवाली करना सिखाया गया है। भगवान के इस उपदेश के कारण तरुण भिक्षु भी अपने मन और शरीर को पवित्र रखकर ब्रह्मचर्य का पालन कर सकते हैं।''

''बहुत अच्छा, बहुत अच्छा! भगवान बुद्ध का उपदेश सचमुच अद्भुत है। मैं अपने अनुभव से जानता हूँ कि जब मैं असंवृत इन्द्रियों से किसी सुन्दर या आह्लादक वस्तु का सामना करता हूँ, तो कामविकार मेरा

पूर्णरूप से पराभव करते हैं। पंचेन्द्रियों के द्वारों की रखवाली करना, अपने आचरण को शुद्ध रखने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।''

8. जब कोई व्यक्ति अपने मन के विचार को आचार में अभिव्यवत करता है तो सदा उसकी त्वरित प्रतिक्रिया भी होती है। यदि कोई आपको गाली देता है, तो तुरन्त उसका जवाब देने की या बदला लेने की इच्छा होती है। मनुष्य को इस स्वभाविक प्रतिक्रिया से सावधान रहना चाहिए। यह तो चाँद का थूकने जैसा है, जो स्वयं को ही हानि पहुँचाता है। अथवा हवा के विरुद्ध धूल झाड़ने जैसा है, धूल तो नष्ट नहीं होती, उल्टा हमारे शरीर को गंदा कर देती है। बदले की भावना के अधीन होने वाले का दुर्भाग्य हमेशा पीछा करता है।

9. लोभ को त्याग कर दानशील वृत्ति धारण करना बहुत अच्छा कार्य है। अपने मन को समादरपूर्वक आर्यमार्ग के सन्धान में एकाग्रता से लगा देना और भी अच्छा है।

मनुष्य को स्वार्थ का त्यागकर उसके बदले दूसरों की सहायता करने की तत्परता को अपनाना चाहिए। यदि हम किसी को सुखी करते हैं तो उससे उसे किसी और को सुखी करने की प्रेरणा मिलती है और इस प्रकार ऐसे कर्म से सुख पैदा होता है।

एक मशाल से हज़ारों मशालें जलाई जा सकती हैं और फिर भी वह मशाल तो जैसी की वैसी ही रहती है; वैसे ही सुख कितना भी बाँटो उसमें कोई कमी नहीं होती।

निर्वाण की साधना करनेवालों को हर एक डग सावधानी से उठाना चाहिए। हमारी आकांक्षा कितनी ही ऊँची क्यों न हो, एक-एक कदम बढाकर ही हम उसे प्राप्त कर सकते हैं। हमें यह भी भूलना नहीं चाहिए कि निर्वाण का मार्ग तो हमारे दैनंदिन जीवन में ही है, हमारे प्रतिदिन के जीवन से पृथक नहीं।

10. इस संसार में निर्वाण के पथ पर चलते ही बीस बाधाएँ रास्ता रोकरकर खड़ी हो जाती हैं। वे हैं। (1) गरीब मनुष्य के लिए दानशील बनना कठिन हैं। (2) घमंड़ी मनुष्य के लिए निर्वाण के पथ को सीखना कठिन है। (3) आत्मबलिदान करके निर्वाण-प्राप्ति की खोज करना कठिन है। (4) बुद्ध जब इस संसार में अवतरित होते हैं उस समय जन्म लेना कठिन है। (5) बुद्ध के उपदेश का श्रवण करना कठिन है। (6) शारीरिक वासनाओं के होते हुए मन को शुद्ध रखना कठिन है। (7) सुन्दर ओर आकर्षक वस्तुओं की कामना न करना कठिन है। (8) बलवान मनुष्य के लिए अपनी इच्छा-पूर्ति के हेतु बल-प्रयोग न करना कठिन है। (9) अपमान होने पर भी क्रोध न करना कठिन है। (10) मन को लुभाने वाली परिस्थितियों में सहसा फँसकर निर्दोष रह पाना कठिन है। (11) व्यापक और गहन स्वाध्याय में अपने को लगाए रखना कठिन है। (12) नौसिखिये को तुच्छता से न देखना कठिन है। (13) घमंड़ को त्यागकर अपने को विनम्र रखना कठिन है। (14) अच्छे और हितैषी मित्र मिलना कठिन है। (15) निर्वाण की ओर ले चलने वाले आत्मनिग्रह को सहन करना कठिन है। (16) बाह्य अवस्थाओं और परिस्थितियों से विचलित न होना कठिन है। (17) सामने वाले की क्षमता के अनुसार उसे उपदेश देना कठिन है। (18) अपने चित्त को सदा शांत रखना कठिन है। (19) धर्माधर्म के संबंध में विवाद न करना

कठिन है। (20) अच्छी पद्धति को ढूँढ़ना और सीखना कठिन है।

11. धर्मात्मा ओर पापात्मा दोनों ही तरह के आदमियों का अपना-अपना स्वभाव होता है। पापात्मा पापकर्म को पाप नहीं समझते; यदि पाप की ओर ध्यान दिलाया जाए, तो भी उसे नहीं छोड़ते और न यही पसन्द करते हैं कि कोई उन्हें उनके पापकर्मों के बारे में बताए। धर्मात्मा धर्माधर्म के संबंध में बहुत सतर्क रहते हैं; जब भी वे देखते हैं कि उनका कोई कर्म अधार्मिक है, तो वे तुरन्त उनका त्याग करते हैं; वे ऐस किसी भी व्यक्ति के प्रति कृतज्ञ होते हैं, जो उनका ध्यान ऐसे पापकर्म की ओर दिलाए।

इस प्रकार धर्मात्मा और पापात्मा मनुष्यों में मूलभूत अन्तर होता है। पापी मनुष्य अपने प्रति दर्शाए गए सौजन्य की कभी कदर नहीं करते, किन्तु सत्पुरुष उसकी कदर करते हैं और कृतज्ञ होते हैं। वे न केवल अपने उपकारकर्त्ता के प्रति, अपितु सभी मनुष्यों के प्रति सौजन्य दिखाकर आदर और कृतज्ञता को व्यक्त करने का प्रयास करते हैं।

3
भगवान बुद्ध के दृष्टान्त

1. पुराने जमाने में किसी देश में एक विचित्र प्रथा थी, जिसके अनुसार बूढ़े लोगों को सुदूर ओर दुर्गम पहाड़ों पर ले जाकर छोड़ दिया जाता था।

उस देश के राजा के मंत्री के लिए अपने बूढ़े पिता के संबंध में इस

प्रथा का पालन करना कठिन हो गया। इसलिए उसने जमीन में एक गहरा गड्ढा खोदकर एक घर बनाया और उसमें पिताजी को छिपाकर उनकी सेवा करने लगा।

एक दिन उस देश के राजा के सामने एक देवता प्रकट हुए और राजा के सामने एक कठिन पहेली पेशकर कहा कि यदि वह उसे संतोषपूर्वक सुलझा न सका तो देश का नाश हो जाएगा। पहेली यह थी: "यहाँ दो साँप हैं; उनमें से कौन नर है और कौन मादा–मुझे बताना।"

न राजा, न राजभवन का कोई निवासी इस पहेली को सुलझा सका; इसलिए राजा ने घोषणा की कि उसके राज में जो कोई भी इस पहेली को सुलझा सके, उसे महान पुरस्कार दिया जाएगा।

वह मंत्री घर लौटा ओर चुपके–से पिताजी के पास जाकर उसने उनसे इस पहेली का उत्तर पूछा। वृद्ध पिता ने कहा, "इसमें क्या बड़ी बात है! दोनों साँपों को एक मुलायम गलीचे पर रख दो। जो इधर–उधर हलचल करने लगेगा वह नर है, और जो चुपचाप पड़ा रहेगा वह मादा है।" मंत्री उस उत्तर को लेकर राजा के पास चला गया और पहेली सफलतापूर्वक सुलझ गई।

फिर देवता ने और कठिन प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर राजा और उसके अनुचर नहीं दे पाए: किन्तु मंत्री, अपने वृद्ध पिता से पूछकर, उन्हें सुलझा सका।

उसमें से कुछ प्रश्न और उनके उत्तर इस प्रकार हैं। ''ऐसा कौन है, जो सोता हुआ भी जाग्रत कहलाता है और जागता हुआ भी सोता हुआ कहलाता है?'' उत्तर है: ''वह जो निर्वाण की साधना में लगा हुआ है। जो लोग निर्वाण में रुचि नहीं रखते उनकी तुलना में वह जाग्रत है; जो पहले ही निर्वाण प्राप्त कर चुके हैं उनकी तुलना में वह सोया हुआ है।''

''हाथी को केसे तौला जा सकता है?'' ''उसे एक नाव पर रखिए और नाव पानी में जहाँ तक गहरी डूबती है वहाँ निशान के लिए एक रेखा अंकित कीजिए। उसके बाद हाथी को नाव से बाहर निकालिए और उसे पत्थरों से भर दीजिए, जब तक कि वह उतनी ही गहराई तक न डूब जाए, और फिर उन पत्थरों को तौलिए।''

इस कहावत का क्या मतलब है कि ''एक प्याला पानी महासागर के पानी से भी अधिक है?'' उत्तर है: ''विशुद्ध और प्यार-भरे हृदय से एक प्याला भरकर पानी अपने मात-पिता को या बीमार आदमी को दिया जाए तो उसका पुण्य अनन्तकाल तक नष्ट नहीं होता। महासागर का पानी कितना ही अधिक क्यों न हो, किसी न किसी दिन वह नष्ट हो जाएगा।''

फिर देवता ने एक ऐसे बुभुक्षित का निर्माण किया, जिसकी केवल हड्डियाँ और चमड़ी ही शेष रह गई थीं और उससे शिकायत करवाई,

"इस संसार में मुझसे अधिक भूखा कोई है?"

"है। जो मनुष्य इतना स्वार्थी और लोभी है कि वह बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिरत्न में विश्वास नहीं करता और जो अपने माता-पिता और गुरुजनों का ऋणमोचन नहीं करता, वह न केवल अधिक भूखा है अपितु वह भूखे प्रेतों के नरक में गिरेगा और वहाँ दीर्घकाल तक भूख से कष्ट भोगेगा।"

"यह चन्दन का तख्ता है; इसका कौन-सा सिरा जड़ की तरफ वाला है?" तख्ते को पानी में रखिए: उसका जो सिरा पानी में अधिक डूबेगा वही जड़ की ओर का होगा।"

"एक ही रूप और आकार के दो घोड़े हैं; इनमें माँ कौन-सी है और बेटा कौन-सा है, यह आप कैसे कह सकेंगे?" "उनके सामने थोड़ी-सी घास डाल दीजिए माँ घोड़ी बच्चे के सामने घास सरका देगी।

इन सब कठिन प्रश्नों के उत्तर सुनकर देवता एवं राजा बहुत संतुष्ट हुए। राजा को जब पता चला कि ये उत्तर उस वृद्ध पिता ने दिए थे, जिसे मंत्री ने जमीन के नीचे घर बनाकर छिपा रखा था, तो वह कृतज्ञ हुआ और उसने बूढ़े लोगों को पहाड़ों पर छोड़ आने की प्रथा को बंद करवा दिया और उनके प्रति दयापूर्ण व्यवहार करने का आदेश दिया।

2. भारत की विदेह नगरी की रानी ने एक बार सपने में एक छह दाँतोंवाला सफेद हाथी देखा। रानी को उन हाथी दाँतों को पाने की तीव्र इच्छा हुई और उसने उन्हें लाने के लिए राजा से अनुनय किया। अपनी रानी को बहुत चाहनेवाला वह राजा इस असंभव-सी माँग को ठुकरा न सका और उसने घोषणा की कि जो भी आखेटक ऐसे हाथी को देखकर उसकी सूचना देगा उसे पुरस्कार दिया जाएगा।

संयोगवश हिमाचल पर्वत पर ठीक ऐसा छह दाँतोंवाला हाथी था, जो बुद्धत्व-प्राप्ति की साधना कर रहा था। इस हाथी ने एक बार पहाड़ों पर संकट के समय एक शिकारी की जान बचाई थी और वह शिकारी सुरक्षित अपने देश ौट सका था। वही शिकारी बड़े इनाम के लालच में अंधा हो गया और हाथी के उपकारों को भूलकर उसे मारने के लिए पर्वत की ओर चल पड़ा।

शिकारी जानता था कि हाथी बुद्धत्व-प्राप्ति की साधना कर रहा है, इसलिए उसने चीवर परिधानकर परिव्राजक का रूप धारण कर लिया: और इस प्रकार हाथी का आक्रमण के प्रति असावधानकर उस पर विषयुक्त बाण छोड़ा।

हाथी ने देखा कि उसका अन्त निकट आ रहा है और शिकारी पुरस्कार के लालच से अभिभूत है, तो उसे दया आ गई और बदला लेने पर तुले हुए दूसरे हाथियों के क्रोध से बचाने के लिए उस शिकारी को उसने अपने पैरों के नीचे छिपा लिया। फिर हाथी ने शिकारी से पूछा कि उसने ऐसा मूर्खता का काम क्यों किया। शिकारी ने पुरस्कार की बात कहीं और स्वीकार किया कि वह उसके छह दाँतों को पाना चाहता है। हाथी ने तुरन्त दाँतों को एक बड़े वृक्ष से टकराकर तोड़ डाला और शिकारी को देते हुए कहा ''इस दान के साथ मेरी बुद्धत्व-प्राप्ति की साधना पूर्ण हो गई है और मैं अब बुद्धक्षेत्र में पैदा हूँगा। जब मैं बुद्ध बनूँगा, तब तुम्हारे हृदय में घुसे हुए लोभ, क्रोध और मूढ़ता के तीन जहरीले बाणों को उखाड़ने में मैं तुम्हारी सहायता करूँगा।''

3. हिमाचल पर्वत की तलहटी में किसी झुरमुट में एक तोता अन्य कोई पशु–पक्षियों के साथ रहता था। एक दिन तेज़ हवा के कारण बाँसों के घर्षण से उस झुरमुट में आग लग गइ और सभी पशु–पक्षी घबराकर इधर–उधर दौड़ने लगे। तोता, दीर्घकाल तक निवासस्थान देनेवाले झुरमुट के उपकरों का बदला चुकाने और संकट में पड़े हुए असंख्य पशु–पक्षियों के प्रति दयाभाव के कारण, उन्हें बचाने के लिए, निकट के तालाब में जाकर अपने पंख भिगाकर आग के ऊपर उड़ गया और उसे बुझाने के लिए अपने पंखों को फड़फड़ाकर पानी के बिन्दु छिड़कने लगा। झुरमुट के उपकारों को यादकर और असीम करुणा से भरे हृदय से वह बिना थकावट अनुभव किए यह काम करता रहा।

उसकी यह करुणा और आत्म–समर्पण की भावना देखकर स्वर्ण के एक देवता बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने आकाश से पृथ्वी पर उतरकर तोते से कहा, ''तुम बहुत बहादुर हो, किन्तु इतनी बड़ी आग पर पानी के कुछ छींटे गिराकर तुम किस लाभ की अपेक्षा करते हो?'' तोते ने उत्तर दिया: ''ऐसा कुछ भी नहीं जो कृतज्ञता ओर आत्मसमर्पण की भावना से सिद्ध नहीं हो सकता। मैं बार–बार कोशिश करता रहूँगा, फिर चाहे मुझे एक और जन्म क्यों न लेना पड़े।'' देवता तोते की इस भावना से बहत प्रभावित हुए और उन दोनों ने मिलकर आग को बुझा दिया।

4. किसी समय हिमाचल में जीवंजीव नामक एक पक्षी रहता था। उसके एक शरीर और दो सिर थे। एक दिन एक सिर ने देखा कि दूसरा सिर कोई स्वादिष्ट मीठा फल खा रहा है, तो उसके मन में ईर्ष्या पैदा हुई

और उसने कहा, ''तो फिर मैं विषैला फल खा लेता हूँ।'' इस प्रकार उसने विष खा लिया और पूरा पक्षी मर गया।

5. एक बार किसी साँप की पूँछ और सिर के बीच झगड़ा पैदा हुआ कि कौन आगे रहे। पूँछ नपे सिर से कहा, ''हमेशा तुम आगे रहते हो, यह ठीक नहीं है, तुम्हें कभी मुझे भी आगे रहने का अवसर देना चाहिए।' सिर ने उत्तर दिया, ''यह तो प्रकृति का नियम है कि मैं आग रहूँ; मैं तुम्हारे साथ स्थान बदल नहीं सकता।''

किन्तु झगड़ा चलता रहा औ एक दिन पूँछ ने गुस्से से अपने–आप को पेड़ से बाँध लिया और इस प्रकार सिर को आगे बढ़ने से रोक दिया। जब सिर इस संघर्ष से थककर लोथपोथ हो गया तब पूँछ ने अवसर देखकर मन की कर डाली। नतीजा यह हुआ कि वह साँप आग के कंड में गिर गया और मर गया।

इस विश्व में हर एक वस्तु का समुचित क्रम और अपना निश्चिय कार्यक्षेत्र होता है। असंतोष के कारण इस क्रम को यदि तोड़ा जाए, तो सरलता से कार्य करने में बाधा पैदा होगी और सारी व्यवस्था टूट जाएगी।

6. एक अत्यन्त शीघ्रकोपी मनुष्य था। एक दिन दो आदमी उस मनुष्य के घर के सामने उसके संबध में बातें कर रहे थे। एक ने दूसरे से कहा : ''यह आदमी वैसे तो अच्छा है, पर बहुत अधीर है; स्वभाव से क्रोधी है और जल्दी गुस्सा हो जाता है।'' वह मनुष्य यह सुनते ही घर से बाहर निकल आया और उसने दोनों पर हमला कर उन्हें पीटते हुए, घायल कर दिया।

जब प्रज्ञावान मनुष्य का उसकी भूलों की ओर ध्यान दिलाया जाए, तो वह उन पर गौर करेगा और अपने को सुधार लेगा। किन्तु मूर्ख मनुष्य का उसके दुराचरण के प्रति ध्यान दिलाया जाए तो न केवल वह उसकी उपेक्षा करेगा, अपितु फिर वही गलती करेगा।

7. किसी समय एक धनी किन्त मूर्ख मनुष्य रहता था। एक बार उसने किसी दूसरे आदमी का सुन्दर तिमंजिला भवन देखा और उसे ईर्ष्या हुई। यह सोचकर कि मैं भी तो इतना धनी हूँ, उसने अपने लिए ठीक वैसा ही भवन बनवाने का निश्चय किया। उसने बढ़ई को बुलाकर मकान बनाने का आदेश दिया। बढ़ई ने तुरन्त स्वीकार किया और पहले बुनियाद बनाकर फिर उस पर पहली मंजिल, दूसरी मंजिल और अन्त में तीसरी मंजिल बनाने का निश्चय किया। धनी मनुष्य का धीरज छूट गया और उसने कहा: 'मुझ बुनियाद या पहला या दूसरा मंजिला नहं केवल वहीं सुन्दर तिमंजिला चाहिए। उसे जल्दी बना दो।''

मूर्ख मनुष्य बिना परिश्रम और प्रयास के ही अच्छे परिमाणों की अपेक्षा रखता है। किन्तु जैसे बुनियाद के बिना तीसरा मंजिला बन ही नहीं सकता ठीक वैसे ही बिना परिश्रम और प्रयास के अच्छे परिणाम या फल प्राप्त नहीं हो सकते।

8. एक बार एक मूर्ख मनुष्य शहद उबाल रहा था। अचानक उसका मित्र वहाँ आ पहुँचा। मूख ने उसे कुछ शहद देना चाहा, किन्तु वह बहुत गरम था; इसलिए वह मूर्ख उसे आग पर से उतारे बिना ही ठंडा करने के लिए

पंखा झलता रहा। उसी तरह क्लेशों की आग बुझाए बिना शीतल निर्वाण के मधु को प्राप्त करना चाहें, तो उसकी प्राप्ति सर्वथा असंभव है।

9. किसी समय दो राक्षस एक बक्से, एक छड़ी और जूतों के एक जोड़े को लेकर दिन-भर विवाद करते और झगड़ते रहे। वहाँ से गुजरते हुए एक आदमी ने यह देखा और पूछा "तुम दोनों इन चीजों को लेकर क्यों विवाद कर रहे हो? इनमें ऐसी कौन-सी अद्‌भुत शक्ति है कि तुम दोनों को इन्हें पाने के लिए इतना झगड़ा करना पड़े?"

राक्षसों ने उसे बताया कि बक्से से उन्हें कोई भी इच्छित वस्तु प्राप्त हो सकती है—फिर वह अन्न हो, वस्त्र हो या धन, छड़ी से वे अपने सभी शत्रुओं का पराजय कर सकते हैं और जूते पहनने से वे आसमान में उड़कर जा सकते हैं।

यह सुनकर उस आदमी ने कहा: "झगड़ते क्यों हो? यदि तुम दोनों थोड़ी देर के लिए यहाँ से चले जाओ तो मैं तुम दोनों के बीच इन वस्तुओं का समान विभाजन करने की तरकीब सोच सकूँगा।" ज्यों ही दोनों राक्षस वहाँ से गए, उस आदमी ने जूते पहन लिये, बक्स को और छड़ी को उठा लिया और देखते-देखते आसमान में उड़कर चला गया।

ये 'राक्षस' विधर्मी लोगों के प्रतिनिधि है। 'बक्सा' दान-पुण्य का प्रतीक है; वे नहीं जानते कि दान-पुण्य से कितने प्रकार की संपत्ति पैदा हो सकती है। 'छड़ी' का मतलब है, चित्त को एकाग्र करने की साधना। लोग जानते नहीं कि चित्त को एकाग्र करने की आध्यात्मिक साधना के

कारण वे क्लेशों-रूपी मार पर विजय प्राप्त कर सकते हैं। 'जूतों के एक जोड़े' का मतलब है, विचार और आचरण क पवित्र शील, जो उन्हें सभी लालसाओं और विवादों के परे ले जाते हैं। इन्हें न जानने के कारण वे बक्से, छड़ी और जूतों के बारे में लड़ते और विवाद करते रहते हैं।

10. एक बार एक आदमी अकेला यात्रा कर रहा था। एक रात उसने एक खाली घर देखा और उसमें रात गुजारने का निश्चय किया। लगभग आधी रात को एक राक्षस एक शव ले आया और उसे फर्श पर रखा। कुछ ही देर बाद, और एक राक्षस आया और कहने लगा कि, ''यह तो मेरा शव है।'' इसलिए दोनों में उसके बारे में झगड़ा शुरू हो गया।

तब पहले राक्षस ने कहा कि इसके बारे में और झगड़ा करने से कोई फायदा नहीं और सुझाया कि किसी न्यायाधीश के पास चलकर निर्णय करवाएँगे कि इस पर किसका अधिकार है। दूसरे राक्षस ने यह मान्य किया और कोने में छिपकर सिकुड़कर बैठे हुए आदमी को देखकर उसे शव के स्वामित्व का निर्णय करने को कहा। वह आदमी भय से काँपने लगा क्योंकि जानता था कि वह चाहे जो भी निर्णय दे हारे हुए राक्षस को नाराज करेगा और बदला लेने के लिए वह उसे मार डालेगा। किन्तु उसने जो देखा वही ईमानदारी से कहने का निश्चय किया।

जैसे कि अपेक्षित था, इससे दूसरा राक्षस गुस्से से भर गया और उसने उस आदमी का हाथ पकड़कर कन्धे से उखाड़ दिया। किन्तु पहले राक्षस ने उसके बदले में शव से लिया हुआ हाथ जोड़ दिया। क्रुद्ध राक्षस

ने आदमी का दूसरा हाथ उखाड़ डाला, किन्तु पहले राक्षस ने तुरन्त उसके बदले में शव से दूसरा हाथ लेकर जोड़ दिया। ऐसा करते-करते उस आदमी के दोनों हाथ, पैर और सिर तक एक के बाद एक उखाड़ दिए गए और शव के उन-उन अवयवों से बदल दिए गए। फिर दोनों राक्षस फर्श पर बिखरे हुए उस आदमी के अवयवों को उठा उठाकर खा गए और मुँह पोंछकर चल दिए।

उस सुनसान घर में आश्रय लेने आया हुआ वह आदमी अपने दुर्भाग्य से बहुत उद्विग्न हो गया। राक्षसों द्वारा खाए गए उसके अवयव माता-पिता से मिले हुए थे और अब जो अवयव उसके शरीर से जुड़े हुए थे वे उस शव के थे। तो वह कौन था? सारे तथ्यों को जानते हुए, उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था इसलिए पागल-सा होकर वह घर से बाहर निकल आया। रास्ते में एक मन्दिर देखकर वह उसमें चला गया और वहाँ उसने भिक्षुओं को अपनी आपबीतो कही। लोग उसकी कहानी में अनात्म के सिद्धान्त का सच्चा अर्थ देख सके।

11. किसी घर के द्वार पर सुन्दर और अच्छे वस्त्र पहने हुए एक स्त्री आ खड़ी हुई। घर के स्वामी ने उससे पूछा कि तुम कौन हो तो उसने उत्तर दिया कि वह संपत्ति की देवी लक्ष्मी है। घर का स्वामी बह्त प्रसन्न हुआ। और उसने उसका अच्छा स्वागत-सत्कार किया।

उसके तुरन्त बाद और एक स्त्री आई, तो देखने में कुरूप थी और फटे हुए कपड़े पहने हुए थी। घर के स्वामी ने उससे भी पूछा कि तुम कौन हो तो उसने उत्तर दिया वह दरिद्रता की देवी है। गृहस्थ घबराया और उसने उसे घर से बाहर भगाने की कोशिश की, किन्तु उस स्त्री ने जाने से इन्कार कर दिया और कहा, ''लक्ष्मी मेरी बहन है। हम दोनों में समझौता है कि हम कभी एक दूसरे से अलग नहीं रहेंगी। अगर तुमने मुझे भगा दिया, तो उसे भी मेरे साथ जाना पड़ेगा। और सचमुच ज्योंहो वह कुरूप स्त्री बाहर निकली, दूसरी स्त्री भी गायब हो गई।

जन्म के साथ मरण जुड़ा है। सौभाग्य के साथ दुर्भाग्य जुड़ा हुआ है। बुरी बातें अच्छी बातों के पीछे-पीछे चलती है। मनुष्यों को यह पूर्ण रूप से समझना चाहिए। मूर्ख लोग दुर्भाग्य से डरते हैं। और कवल सौभाग्य के पीछे भागते हैं। किन्तु निर्वाण की कामना रखनेवालों को इन दोनों के परे होना चाहिए और दोनों में से किसी से भी आसक्त नहीं होना चाहिए।

12. पुराने समय में एक गरीब चित्रकार रहता था। अपनी पत्नी को गाँव में छोड़कर वह अपने भाग्य की परीक्षा करने यात्रा पर निकल पड़ा। लगातार तीन वर्ष कठिन परिश्रम करके उसने तीन सौ सुवर्ण मुद्राएँ बचाईं और घर लौटने का निश्चय किया। रास्ते में एक जगह उसने देखा कि बहुत-से भिक्षुओं को दान-दक्षिणा देने का महोत्सव मनाया जा रहा है। वह उससे बहुत प्रभावित हुआ और उसने सोचा: ''अब तक मैं इहलोक के सुख का ही विचार करता रहा; परलोक के सुख का मैंने कभी विचार नहीं किया। मेरा यह सौभाग्य है कि मैं इस जगह पहुँच गया हूँ। मुझे पुण्य

के बीज बोने के लिए इस अवसर का लाभ अवश्य उठाना चाहिए।'' इस प्रकार सोचकर उसने अपनो सारी बचत उदारता से दान में दे डाली और अकिंचन बनकर अपने घर लौटा।

जब वह घर पहुँचा तब खाली हाथ लौटे हुए पति को देखकर पत्नी ने उसे बहुत फटकारा और पूछा कि पैसों का क्या हुआ? गरीब चित्रकार ने उत्तर दिया कि उसने कुछ पैसा कमाया तो था, किन्तु उसे किसी सुरक्षित स्थान पर रख छोड़ा है। पत्नी ने जब हठ पकड़कर बताने के लिए बाध्य किया कि धन कहाँ छिपाया है, तब उसने कबूल किया कि वह किसी भिक्षुओं के संघ को दे आया है।

इससे पत्नी बहुत गुस्सा हो गई और उसने पति को बहुत डाँटा। अन्त में यह मामला स्थानीय न्यायाधीश के पास ले जाया गया। न्यायाधीश ने जब चित्रकार को अपनी सफाई देने को कहा, तब चित्रकार ने कहा कि उसने कोई मूर्खता का काम नहीं किया, क्योंकि उसने बहुत दीर्घकाल तक और कठिन परिश्रम से पैसा कमाया था और उसका उपयोग वह भावी सौभाग्य का बीज बोने के लिए करना चाहता था। जब उसने भिक्षुओं का विहार देखा तो उसे लगा कि यहाँ वह क्षेत्र है जिसमें उसे सौभाग्य के बीज के रूप में सोना बो देना चाहिए। उसने आगे कहा: ''जब मैंने भिक्षुओं को सोना दान में दिया तब मुझे लगा कि मै अपने मन से सारा लोभ और कृपणता निकाल फेंक रहा हूँ, और मुझे पूर्णरूप से ज्ञात हुआ कि सच्ची संपत्ति सोना नहीं किन्तु मन है''

न्यायाधीश ने चित्रकार की भावना को सराहा और जिन्होंने यह बात सुनी, उन्होंने उसे सभी प्रकार की सहायता देकर अपनी सहारना प्रकट की। इस प्रकार चित्रकार और उसकी पत्नी न स्थायी सौभाग्य में प्रवेश किया।

13. एक आदमी कब्रस्तान के नज़दीक रहता था। एक रात उसयने सुना कि कब्र में से उसे कोई बार-बार बुला रहा है। वह इतना डरपोक था कि उसे खुद जाकर जाँच-पड़ताल करने का साहस न हुआ। किन्तु दूसरे दिन उसने अपने एक साहसी मित्र से इसका जिक्र किया। मित्र ने निश्चय किया कि वह अगली रात कब्रस्तान जाकर जहाँ से आवाज आती है उस स्थान का पता लगाएगा।

जब डरपोक आदमी भय से थर-थर काँप रहा था, उसका मित्र कब्रस्तान गया और सचमुच वहीं आवाज कब्र में से आती हुई सुनाई दी। मित्र ने पूछा कि तुम कौन हो और तुम्हें क्या चाहिए? तब जमीन के नीचे से आवाज ने उत्तर दिया: ''मैं गुप्त खजाना हूँ और अपने-आपको किसी को दे देना चाहता हूँ। मैंने कल रात उस आदमी को देना चाहा, किन्तु वह इतना डरपोक है कि आने की हिम्मत नहीं कर सका। तुम बहादुर हो इसलिए मुझे प्राप्त करने के योग्य हो। कल मैं अपने सात अनुचरों को लेकर तुम्हारे घर आऊँगा।''

मित्र ने कहा, ''मैं आप लोगों की प्रतिक्षा करूँगा, किन्तु कृपया बताएँ कि आपका कैसे आदर-सत्कार किया जाए ?''आवाज ने उत्तर दिया: ''हम लोग भिक्षुओं के वेष में आएँगे। तुम स्नान करके कमरा साफ करके रखो। कमरे में पानी रख देना ओर आठ कटोरे पतले चावल से भरकर हमारी प्रतीक्षा करना। भोजन के पश्चात् तुम हमें एक-एक करके बन्द कमरे में ले चलना, जहाँ हम अपने-आपको सोने के घड़े में बदल देंगे।

दूसरे दिन उस मनुष्य ने उसे जैसा कहा गया था ठीक उसी प्रकार स्नान करके कमरे की सफाई की और उन आठ भिक्षुओं के आने की

प्रतीक्षा करता रहा। ठीक समय पर वे प्रकट हुए और उसने आदरपूर्वक उनका स्वागत किया। जब उन्होंने खाना खा लिया तब वह उन्हें एक-एक करके बन्द कमरे में ले गया, जहाँ हर भिक्षु ने अपने-आपको सुवर्ण से भरे घड़े में बदल दिया।

उसी गाँव में एक बहुत ही लोभी मनुष्य रहता था। उसने यह घटना सुनी और उसे भी सोने के घड़े पाने की इच्छा हुई। उसने आठ भिक्षुआं को अपने घर पर निमंत्रित किया। उन्हें खाना खिलाने के बाद वह उन्हें एक बन्द कमरे में ले गया, किन्तु, अपने-आपको सोने के घड़ों में परिवर्तित करने के बदले वे बहत नाराज हो गए और उन्होंने पुलिस के पास उस लोभी आदमी की शिकायत की और वह कैद कर लिया गया।

और डरपोक आदमी, जिसका नाम पहले पुकारा गया था, जब उसने सुना कि कब्र को आवाज ने बहादुर आदमी को बहुत संपत्ति दी है, तो उसने मन में भी लोभ पैदा हुआ। उस बहादुर आदमी के घर जाकर वह जोर से कहने लगा कि शुरू में उस आवाज ने मुझी को बुलाया था, इसलिए वे सब घड़े मेरे ही हैं। जब उस डरपोक आदमी ने घर में घुसकर घड़े में जाने का प्रयत्न किया तो क्या देखता है कि घड़ों में बहुत से साँप फन उठाए उस पर हमला करने को तैयार हैं।

उस देश के राजा ने यह सुना तो अपना निर्णय दिया कि वे घड़े उस बहादुर आदमी के ही हैं। फिर राजा ने अपना यह अभिप्राय प्रकट किया, ''यही दुनिया की परिपाटी है। मूर्ख लोग केवल अच्छे फलों का लोभ

करते हैं, किन्तु इतने डरपोक होते हैं कि उनके लिए प्रयास नहीं करते और सदा असफल रहते हैं। उनमें न तो इतनी श्रद्धा होती है न साहस कि अपने मन के आन्तरिक संघर्षों का डटकर सामना करें, जिसके द्वारा ही सच्ची शांति प्राप्त हो सकती है।''

द्वितीय अध्याय

प्रत्यक्ष आचरण का मार्ग

1
सत्य का अन्वेषण

1. सत्य के अन्वेषण में कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका कोई महत्त्व नहीं होता। इस विश्व का निर्माण किस वस्तु से किया गया है? क्या यह विश्व अनन्त है? विश्व की कोई सीमाएँ हैं या नहीं? समाज का गठन किस प्रकार हुआ? समाज के लिए संगठन का आदर्श रूप क्या होगा? यदि मनुष्य कहे कि जब तक इन प्रश्नों का उत्तर नहीं मिलता, वह निर्वाण की खोज और साधना स्थगित रखेगा, तो निर्वाण-पथ प्राप्त करने से पहले ही वह मर जाएगा।

मान लीजिए कि किसी मनुष्य को एक विषैला बाण लगा और उसके रिश्तेदार और मित्र उस बाण को निकलवाने और घाव का इलाज कराने के लिए किसी वैद्य को बुलाते हैं।

अब यदि वह घायल मना करे और कहे कि जरा ठहरिए। इसे खींच निकालने से पहले मैं जानना चाहता हूँ कि यह बाण किसने मारा? जिसने मारा वह पुरुष था या स्त्री? वह ऊँचे खानदान का था या गँवार किसान?

फिर धनुष किस चीज का बना हुआ था? जिस धनुष से बाण मारा गया वह बड़ा था या छोटा? वह लकड़ी का बना हुआ था या बाँस का? उसकी प्रत्यंचा किस चीज़ की बनी हुई थी? तंतु की बनी हुई थी या आँत की? बाण बेंत का बना हुआ था या सरकण्डे का? उसमें किस तरह के पर लगे हुए थे? बाण निकाले जाने से पहले मैं इन सब बातों के बारे में जानना चाहता हूँ।'' तो क्या होगा?

यह सारी जानकारी प्राप्त करने से पहले, निस्संदेह, विष का सारे शरीर में फैलने का समय मिल जाएगा और वह मनुष्य मरेगा। पहला काम बाण को निकालना और विष को फैलने से रोकना है।

जब वासना की आग ने संसार को संकट में डाल रखा है, तब विश्व की रचना का सवाल कोई महत्त्व नहीं रखता, मानव-समाज का आदर्श रूप क्या हो, यह बात भी इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है।

विश्व की सीमाएँ हैं या नहीं, विश्व अनन्त है या नहीं, इस समस्या को तब तक एक तरफ रखा जा सकता है, जब तक कि जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु की अग्नियों को बुझा न लिया जाए। शोक, विलाप, दुःख और पीड़ा से भरे इस संसार में हमें पहले इन समस्याओं के हल का मार्ग ढूँढ़ना चाहिए और निष्ठापूर्वक उस मार्ग का आचरण करना चाहिए।

भगवान बुद्ध के उपदेश में जिन बातों के बारे में उपदेश करना अत्यावश्यक है (व्याकृत) उन्हीं के बारे में उपदेश किया गया है,

अनावश्यक (अव्याकृत) बातों की चर्चा नहीं की गई। उनकी बातों का सारतत्त्व यह है कि लोगों को जानने योग्य बातों को जान लेना चाहिए। त्यागने योग्य बातों का त्याग करना चाहिए, और साक्षात्कार करने योग्य बातों के लिए साधना करनी चाहिए।

इसलिए लोगों को सर्वप्रथम तो यह तय करना चाहिए कि सबसे महत्त्वपूर्ण बात क्या है। उनके अपने जीवन में कौन-सी समस्या सर्वतोमुखी है, सबसे पहले ध्यान देने योग्य समस्या क्या है यह जानकर, मनोनिग्रह की साधना आरंभ कर देनी चाहिए।

2. मान लीजिए कि कोई आदमी वन में वृक्ष के तने के भीतर का गूदा लेने के लिए जाए और शाखाओं और पत्तों का भार लेकर लौटे और यह मान बैठे कि जिस चीज में लिए वह गया था, वह प्राप्त हो गई, गूदे के बदले छाल और टहनियाँ पाकर संतोष कर ले तो क्या यह उसकी मूर्खता न होगी! किन्तु यही बात अधिकतर लोग कर रहे हैं।

कोई मनुष्य जन्म, जरा, व्याधि और मृत्यु अथवा शोक, विलाप, दुःख और पीड़ा से मुक्ति दिलानेवाले मार्ग पर चलने लगता है, और थोड़ी दूर चलकर, साधना में कुछ प्रगति होते ही, एकदम घमंडी, आत्मश्लाघी और हेकड़ बन जाता है। यह उसी आदमी के समान है जो गूदा पाने के लिए गया और टहनियों और पत्तो के भार से संतोष मानकर लौट आया।

दूसरा मनुष्य थोड़े-से प्रयास से जो कुछ प्रगति हुई उसो से संतोष मानकर साधना में ढील देता है और घमंडी, आत्मश्लाघी और हेकड़ हो जाता है तो यह मनुष्य भी गूदे के बदले टहनियों का भार उठाकर लौटनेवाले मनुष्य के समान है।

और भी एक मनुष्य है, जो अपने मन को शांत और विचारों को शुद्ध होते हुए देखकर साधना में ढीला पड़ जाता है और घमंडी, आत्मश्लघी और हेकड़ हो जाता है; वह भी गूदे के बदले में वृक्ष की छाल का भार ढो रहा होता है।

फिर वह मनुष्य जो जरा-सी अन्तर्दृष्टि पाकर चौंधिया जाता और घमंडी, आत्मश्लाघी और हेकड़ बन जाता है उसने भी गूदे के बदले छाल ही पायी है। ऐसे सभी साधक, जो अपने अपर्याप्त प्रयास से सन्तुष्ट हो जाते हैं, घमंडी और हेकड़ होकर साधना में ढीले पड़ जाते हैं और आसानी से आलस्य के शिकार हो जाते हैं, ये सभी लोग निःसंशय पुनः दुःख भोगेंगे।

निर्वाण की कामना करनेवालों का कार्य आसान नहीं होता; उन्हें इस मार्ग में आदर, मान और प्रतिष्ठा की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए। न उन्हें अल्प प्रयास से चित्त की शांतिए ज्ञान अथवा अन्तर्दृष्टि में जो थोड़ी सी प्रगति होती है उससे संतोष मानना चाहिए।

सब से पहले तो हमें जन्म-मरणवाले इस संसार में वास्तविक स्वरूप को सही-सही समझना होगा।

3. यह संसार किसी ठोस तत्त्व पर आधारित नहीं, एकदम निस्सार है। जिसे हम संसार कहते हैं वह कार्य-कारण की एक व्यापक शृंखला ही है। कार्य-कारण अथवा हेत प्रत्यय मन की उपज है; ऐसे मन की जो अज्ञान, भ्रान्त धारणाओं, वासनाओं और मोह द्वारा उत्तेजित होता रहता है। बाह्य जगत् का तो अपना कोई अस्तित्व नहीं होता, इसलिए, भ्रान्ति बाह्य जगत् में नहीं मन के भ्रान्त व्यापारों के ही कारण है। बाह्य जगत् का अस्तित्व, उसकी उत्पत्ति और रचना मन की वासनाओं द्वारा होती है; मन के अपने लाभ, क्रोध और मूढ़ता के कारण पैदा हुई पीड़ा से सांसारिक दु:ख और संघर्ष पैदा होते हैं। निर्वाण के पथ पर चलनेवाले मनुष्यों को, अपने ध्येय की सिद्धि के लिए, ऐसे मन से संषर्ष करने की साधना करनी चाहिए।

4. ''हे मेरे मन! तुम जीवन की परिवर्तनशील परिस्थितियों पर इतनी बेचैनी से क्यों मँडराते रहते हो? तुम मुझे इतना भ्रान्त और अस्वस्थ क्यों करते हो? तुम मुझे इतनी सारी चीज़ें इकट्ठा करने के लिए क्यों प्रवृत्त करते हो? तुम उस हल के समान हो, जो खेत में चलने से पहले ही टूट जाता है; तुम उस पतवार के समान हो, जो जीवन-मरण के सागर को पार करने की यात्रा पर चलने से पहले ही टूट जाता है। यदि हम इस जन्म को सार्थक न कर सके, तो अब तक के असंख्य पुनर्जन्मों का क्या लाभ?

''हे मेरे मन! एक बार तुमने मुझे राजा का जन्म दिलाया और फिर मुझे गरीब दरिद्र का जन्म दिलाकर अन्न की भीख माँगने के लिए बाध्य किया। कभी तो तुम मुझे देवताओं के स्वर्ग में जन्म दिलाकर भोगविलास

और हर्षोन्माद में जीवन व्यतीत करने का सौभाग्य प्रदान करते हो तो कभी नरक की ज्वालाओं में धकेल देते हो।

''हे मेरे मूर्ख मन! इस प्रकार तुम मुझे भिन्न-भिन्न मार्गों पर ले गए औरा मैं भी तुम्हारा आज्ञाकारी बनकर तुम्हारे वश में होता रहा। किन्तु अब मैंने बुद्ध के उपदेश का श्रवण किया है। अब मुझे अस्वस्थ मत करना या मेरी साधना में बाधा मत डालना। जिस उपाय से मैं तरह-तरह के दु:खों सें मुक्त हो जाऊँ और शीघ्रातिशीघ्र निर्वाण प्राप्त कर सकूँ इसके लिए प्रयास करना।

''हे मेरे मन! यदि तुम इतना ही जान लो कि यहाँ सब कुछ निस्सार और अनित्य है, यदि तुम वस्तुओं के प्रति आसक्ति न रखो, वस्तुओं को अपना न समझो, लोभ, क्रोध और मूढ़ता से मुक्त हो जाओ तो हमं शांति मिल जाएगी। यदि प्रज्ञा के खड्ग से आसक्तियों के बंधनों को काटकर, लाभ या हानि, स्तुति या निंदा से विचलित न बनो तो हम शांति से दिन गुजार सकेंगे।

''हे मेरे प्रिय मन! तुमने ही मुझमें पहले श्रद्धा उत्पन्न की, और तुम्हीं ने निर्वाण के पथ पर चलने की बात सुझाई। तो फिर क्यों इतनी आसानी से लोभ, आरामतलबी और आह्लादक उत्तेजना के वश हो जाते हो?

''हे मेरे मन! तुम इधर-उधर उद्देश्यहीन क्यों भटकते रहते हो? चलो, हम इस भ्रान्ति के सागर को पार कर जाएँ। अब तक मैं तुम्हारी इच्छा

के अनुसार सब कुछ करता आया, किन्तु अब तुम्हें मेरी इच्छा के अनुसार चलना होगा और हम मिलकर बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करेंगे।

"हे मेरे प्रिय मन! ये पर्वत, नदियाँ और सागर सब परिवर्तनशील है और संकटों से भरे हुए हैं। इस भ्रान्तिमय संसार में सुख की अपेक्षा किससे करें? चलो, हम बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करें और शीघ्र यह भवसागर पार करके निर्वाण प्राप्त कर लें।"

5. इस प्रकार, वास्तव में निर्वाण की कामना करने वाले लोग अपने मन को अपनी इच्छा के अनुसार आदेश देते हैं। फिर वे दृढ़ निश्चय के साथ आगे बढ़ते हैं। काई उनकी निन्दा करे या कोई उनका उपहास करे, वे अविचलित मन आगे बढ़ते जाते हैं। कोई उन्हें घूँसे लगाए या पत्थरों से मारे या तलवार से काटने पर ही क्यों न उतारू हो जाए वे मन में क्रोध को उभरने नहीं देते।

शत्रु चाहे धड़ से सिर को अलग कर दे, तो भी मन को विचलित नहों होने देना चाहिए। अत्याचारों के कारण मन कलुषित हो गया, तो वह बुद्ध के उपदेश का अनुसरण नहीं। चाहे जो भी बीते, निश्चयपूर्वक दृढ़ रहना चाहिए, अविचलित रहना चाहिए और सदा करुणा व सद्भावना के विचारों को फैलाते रहना चाहिए। भले ही कोई निन्दा करे या कैसी भी विपत्ति आन पड़े इस श्रद्धा के साथ कि इससे तो हृदय बुद्ध के उपदेश से और भी भर जाएगा, अविचलित और शांत रहने का निश्चय करना चाहिए।

निर्वाण-प्राप्त करने के लिए जो असाध्य है उसे साहय करने का

प्रयास करना चाहिए, जो असह्य है उसे सहना चाहिए, जो आसानी से दिया नहीं जा सकता, उसका भी दान करना चाहिए। यदि कहा जाए कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए अपना आहार दिन में चापल के एक दाने तक सीमित करना चाहिए, तो उसका पालन करना चाहिए। निर्वाण का पथ आग में से होकर जाता हो, तो भी अग्निपथ पर आगे बढ़ने में हिचकना नहीं चाहिए।

और ये सारी बातें केवल दिखावे के लिए नहीं अपितु इसलिए करनी चाहिए कि इसी में बुद्धिमानी है, सत्याचरण है। और ये सारी बातें करुणा की भावना से करनी चाहिए, जैसे माँ अपने छोटे बच्चे की या अपने बीमार बच्चे की सेवा करते समय करती है और उस समय अपनी शक्ति या आराम का कोई विचार नहीं करती।

6. पुराने काल में एक राजा था। राजा प्रज्ञावान, अत्यंत दयालु और प्रजावत्सल था, इसलिए उसके देश में समृद्धि और शांति थी। वह राजा सदा श्रेष्ठ ज्ञान और निर्वाण की खोज में रहता था; और उसने घोषणा भी कर रखी थी कि जो भी उसे ज्येष्ठ धर्म का उपदेश देगा उसे बहुमूल्य पुरस्कार दिया जाएगा।

उसकी श्रद्धा और प्रज्ञा ने अन्त में देवताओं का भी ध्यान आकर्षित किया, किन्तु उन्होंने उसकी परीक्षा लेने का निश्चय किया। एक देवता यक्ष का रूप लेकर राजा के महल के द्वार पर जा खड़े हुए और बोले, ‘‘मैं ज्येष्ठ धर्म को जानता हूँ। मुझे राजा के पास ले जाया जाए।’’

राजा यह सन्देश सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने देवता को आदरपूर्वक अन्दर बुलाकर धर्म का उपदेश देने की प्रार्थना की। यक्ष ने अपना विकराल रूप धारण कर लिया और कहा, "इस समय मुझे बहुत भूख लगी है। ऐसी बुभुक्षित अवस्था में धर्म का उपदेश नहीं किया जा सकेगा।" तब उत्तम स्वादिष्ट भोज्य पदार्थ उसे दिए गए, किन्तु उसने हठ पकड़कर कहा कि मुझे तो आदमी का गरम खून और माँस ही चाहिए। राजकुमार न उसे अपना शरीर दे दिया और रानी ने भी अपना शरीर अर्पण किया, किन्तु फिर भी यक्ष को संतोष नहीं हुआ और उसने राजा के शरीर की माँग की।

तब राजा ने शांति से कहा, "मुझे अपने प्राणों की परवाह नहीं। किन्तु जब यह शरीर ही न रहेगा तो मैं धर्म कैसे सुन पाऊँगा? अतः मुझे पहले धर्म का उपदेश कीजिए। धर्म-ग्रहण करने के पश्चात् मैं आपको अपना शरीर दे दूँगा।"

तब यक्ष ने इस प्रकार धर्म का उपदेश किया: "प्रिय वस्तुओं से शोक पैदा होता है, प्रिय वस्तुओं से भय पैदा होता है। जो प्रिय वस्तुओं से मुक्त हो गए, उन्हें शोक नहीं होता, तो भय कहाँ से होगा?" फिर पलक मारते देवता ने अपना मूल रूप धारण किया। और साथ ही राजकुमार एवं रानी भी अपने मूल शरीरों में प्रकट हो गए।

7. बहुत पुराने काल में हिमालय पर्वत पर सत्य की खोज करनेवाला एक मनुष्य रहता था। उसे पृथ्वी पर की सभी संपत्तियों का तो क्या, स्वर्ग के उपभोगों तक का कोई आकर्षण न था, उसे चाह थी चित्त की सभी भ्रान्तियाँ दूर करनेवाले उपदेश की।

देवता उसकी तत्परता और सत्यनिष्ठा से प्रभावित हुए और उन्होंने उसके चित्त की परीक्षा लेने की ठानी। इसलिए उसमें से एक देवता ने

यक्ष का रूप धारण किया और वह गाता हुआ हिमालय में प्रकट हुआ कि ''सब कुछ परिवर्तनशील है, सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं।''

साधक को गीत सुनकर बह्त खुशी हुई। उसे इतनी खुशी हुई जितनी कि प्यासे को ठंडे जल का झरना पाकर होती है या अचानक मुक्त किए दास को होती है। उसने अपने-आपसे कहा, ''जिस सत्य की मैं इतने दिन खोज में था वह अन्ततः मुझे मिल गया।'' वह आवाज की दिशा में चला गया और अंत में उसे वह भयानक यक्ष दिखाई दिया। डरते-डरते वह यक्ष के पास गया और उससे कहा, ''क्या तुम्हीं वह पावन गीत गा रहे थे, जो मैंने अभी सुना? यदि तुम्हीं हो तो कृपा करके और आगे सुनाओ।''

यक्ष ने उत्तर दिया, ''जी हाँ , वह मेरा ही गीत था, किन्तु जब तक मुझे कुछ खाने को न मिले, मैं और गा नहीं पाऊँगा। मैं बहुत भूखा हूँ।''

उस मनुष्य ने उससे और आगे गाने के लिए आग्रहपूर्वक प्रार्थना करते हुए कहा, ''गीत में मेरे लिए पवित्र अर्थ भरा हुआ है और मैं दीर्घ काल से इस उपदेश की खोज में था। मैंने उसका कुछ ही हिस्सा सुना है, कृपया और आगे सुनाओ।''

यक्ष ने फिर कहाः ''मैं भूख से व्याकुल हूँ। यदि मुझे मनुष्य का ताजा माँस और खून चखने को मिले, तो मैं उस गाने को पूरा कर सकूँगा।''

मनुष्य ने उपदेश सुनने की उत्कंठा से उस यक्ष को वचन दे दिया कि

उपदेश सुनने के बाद वह उसका शरीर ले सकते है। तब यक्ष ने पूरा गीत गाकर सुनाया:

सब कुछ परिवर्तनशील है,
सब वस्तुएँ उत्पन्न होती और नष्ट हो जाती हैं,
जीवन-मरण से परे होने पर ही
परम शांति प्राप्त होती है।

यह सुनकर, वह मनुष्य इस कविता को आसपास की शिलाओं और वृक्षों पर लिखकर चुपचाप पेड़ पर चढ़ गया और वहाँ से अपने आपको यज्ञ के चरणों में फेंक दिया; किन्तु यक्ष अन्तर्धान हो गया और बदले में एक दिव्य देवता ने उस मनुष्य के शरीर को झेल लिया, जिससे उसे कोई चोट नहीं पहुँची।

8. किसी समय निर्वाण के पथ की खोज करनेवाला सदाप्ररुदित नाम का एक साधक था। उसने लाभ या सम्मान के हर प्रलोभन को त्याग दिया था और वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर निर्वाण के पथ की खोज कर रहा था। एक दिन उसे आकाशवाणी सुनाई दी, "हे सदाप्ररुदित! सीधे पूर्व की ओर जा। गरमी या ठंड की परवाह न करना, लोक-स्तुति या निन्दा की ओर ध्यान न देना, अच्छे या बुरे के निर्णय की भी चिंता न करना, बस पूर्व की ओर चलते रहना। अतिपूर्व में तुम्हें एक सच्चा गुरु प्राप्त होगा और तुम निर्वाण प्राप्त करोगे।"

सदाप्ररुदित यह निश्चित आदेश पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने तुरन्त पूर्व की ओर प्रस्थान किया। सुनसान मैदान हो या बीहड़ पहाड़, जहाँ भी रात हो वहीं वह सो जाता था।

परदेश में अजनबी होने के कारण उसे बहुत अपमान सहन करने पड़े; एक बार उसने अपने-आपको दास के रूप में बेच दिया और अपनी भूख मिटाने के लिए उसे अपना माँस बेचना पड़ा; किन्तु अन्त में सच्चे गुरु से उसकी भेंट हो गई। उसने गुरु से ज्ञानदान की प्रार्थना की।

एक कहावत है, 'अच्छी वस्तुएँ महँगी होती हैं।' और सदाप्ररुदित को अपने जीवन में यह अनुभव हो चुका था। सन्मार्ग की खोज में उसे बहुत संकटों का सामना करना पड़ा था। उसके पास गुरु को अर्पित करने के लिए फल-फूल खरीदने को भी पैसा न था। उसने परिश्रम करके पैसा कमाने की कोशिश की, किन्तु उसे काम देने को कोई तैयार न हुआ। जहाँ भी वह जाता, मार उसके काम मं बाधा डालने पहुँच जाता। निर्वाण का मार्ग बहुत कठिन है और हो सकता है कि मनुष्य को उसके लिए अपने प्राण भी निछावर करने पड़ें।

आखिर सदाप्ररुदित गुरु के पास पहुँच ही गया। लेकिन फिर एक नई समस्या उसके सामने आ खड़ी हुई। गुरु का उपदेश लिखने के लिए उसके पास न तो कागज था, न कलम, न स्याही। उसने तलवार से अपनी कलाई काटी और अपने रक्त से गुरु का उपदेश लिपिबद्ध किया। इस प्रकार उसने परमसत्य को प्राप्त किया।

9. पुराने काल में सुधन नाम का एक लड़का था। सम्यक्संबोधि प्राप्त करने की इच्छा से प्रेरित वह एकाग्र होकर मार्ग की खोज करने लगा। एक मछुए से उसने समुद्र का ज्ञान प्राप्त किया। एक वैद्य से उसने कष्ट पीड़ित रोगियों के प्रति करुणा से व्यवहार करना सीखा। एक धनी से

उसने सीखा कि कौड़ी–कौड़ी बचाना ही धनी होने का रहस्य है और इससे उसे यह समझ में आ गया कि निर्वाण के पथ पर छोटी–सी उपलब्धि को भी हाथ से न जाने देना कितना आवश्यक है।

एक ध्यानमार्गी भिक्षु से उसने सीखा की पवित्र और शांत मन में दूसरों के मन की पवित्र और शांति देने की कितनी अद्‌भुत शक्ति होती है। एक दिन किसी असाधारण व्यक्तित्ववाली महिला से उसकी भेंट हो गई और उसके परोपकारी स्वभाव से प्रभावित सुधन ने सीखा की परोाकार ज्ञान का ही फल है। एक बार किसी वृद्ध परिव्राजक से उसकी भेंट हुई, जिसने उससे कहा कि लक्ष्य तक पहुँचने के लिए तुम्हें तलवारों का पहाड़ लाँघकर जाना होगा और अग्नि की घाटी में से गुजरना होगा। इस प्रकार सुधन ने अपने अनुभव से सीखा कि उसने जो भी देखा या सुना वह सब सदुपदेश ही था।

एक गरीब, अपंग स्त्री से उसने धैर्य की शिक्षा ली। रास्ते में खेलते हुए बच्चों को देखकर उसने सहज आनन्द का पाठ सीखा। कुछ सौम्य एवं विनम्र स्वभाव के लोगों से, जो दूसरों द्वारा इच्छित वस्तुओ की कभी चाह नहीं रखते थे, उसने संसार के सभी लोगों के साथ मिल–जुलकर रहने का रहस्य सीखा।

अगरु के लिए अलग–अलग द्रव्यों के मिश्रण को देखकर उसने सामंजस्य का सबक सीखा और फूलों की सजावट के द्वारा धन्यवाद ज्ञापन की शिक्षा प्राप्त की। एक दिन, वन में से गुजरते हुए वह एक वृक्ष के नीचे आराम करने बैठ गया और उसने देखा कि गिरकर सड़ते हुए वृक्ष के समीप ही एक छोटा–सा पौधा उगा हुआ है; उससे उसने जीवन

की अनित्यता का ज्ञान प्राप्त किया।

दिन में सूर्य का प्रकाश और रात को टिमटिमाते तारे उसके मन को ताजगी देते थे। इस प्रकार सुधन ने अपनी लम्बी यात्रा के विविध अनुभवों से लाभ उठाया।

सचमुच, जो निर्वाण की कामना करते हैं उन्हें चाहिए कि अपने हृदय को किला समझें और बुद्ध के प्रवेश के लिए उसके दरवाजे पूरे खोल दें और विनम्रता से उन्हे अन्तरतम कक्ष में निमन्त्रित कर श्रद्धा का सुगन्धित अगरु तथा कृतज्ञता और प्रसन्नता के पुष्प अर्पित करें।

2
आचरण के विविध माग

1. सम्यक्संबोधि की कामना करनेवालों को आचरण के तीन मार्गों को समझ लेना चाहिए और उनका अनुसरण करना चाहिए; पहला है शीलों का पालन, दूसरा है ध्यान की साधना और तीसरा है प्रज्ञा का विकास।

शील क्या है? हर एक को, चाहे वह भिक्षु हो या उपासक, शीलों का पालन करना चाहिए। उसे अपने चित्त और शरीर को नियंत्रित कर पाँच इन्द्रिय द्वारों की रखवाली करनी चाहिए। उसे छोटे से छोटे पाप से भी डरना चाहिए और हर क्षण केवल सदाचरण करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

ध्यान का क्या अर्थ है? उसका अर्थ है चित्त में लोभ और पाप–वास्नाएं उठते ही उनका त्याग करना और चित्त को पवित्र और शान्त रखना।

प्रज्ञा क्या है? वह हे चार आर्यसत्यों का सम्यक् आकलन और उनका धैर्यपूर्वक पालन। यह दु:ख है, यह दु:ख समुदय है, यह दु:खनिरोध है और यह दु:खनिरोधगामिनी प्रतिपदा है–इस प्रकार स्पष्ट रूप से साक्षाकार करना चाहिए।

जो इन तीन मार्गों का आस्था से अनुसरण करते हैं वे ही बुद्ध भगवान के सच्चे शिष्य कहलाते हैं।

मान लीजिए कि एक गधा, जिसका न तो आकार गाय का–सा है न आवाज़, न जिसके गाय के समान सींग हैं, गायों के झुंड के पीछे चले और घोषणा करे, ''देखिए, मैं भी गाय हूँ।'' तो क्या उसका कोई विश्वास करेगा? यह भी वैसी ही मूर्खता होगी यदि मनुष्य शील, ध्यान और प्रज्ञा के मार्गों का अनुसरण न करें और बड़ाई करना फिरे कि में निर्वाण के मार्ग का साधक हूँ या बुद्ध का शिष्य हूँ।

शरद में फसल काटने के लिए किसान को पहले खेत जोतना पड़ता है, बीज बोने पड़ते है, पानी देना पड़ता है और वसंत ऋतु में जब घास–पतवार उगती है तब उसे नींदना पड़ता है। ठीक वैसे ही निर्वाण के साधक को आचरण के इन तीन मार्गों का अनुसरण करना चाहिए। किसान यह अपेक्षा नहीं रख सकता कि उसका बोया हुआ बीज आज

ही उगे, कल तक पौधा बन जाए और परसों फसल काटी जा सके। वैसे ही निर्वाण का साधक यह अपेक्षा नहीं कर सकता कि आज ही सब क्लेशों से मुक्त हो जाऊँ , कल तक सभी आसक्तियों से छुटकारा पा जाऊँ और परसों निर्वाण प्राप्त कर लूँ।

जैसे बीज बाने के बाद पौधा उगकर उसमें फल लगने तक, मौसमों के परिवर्तनों के साथ, किसान धीरज से निगरानी करता है, वैसे ही निर्वाण के साधक को आचरण के तीन मार्गों का अनुसरण करके धीरज और अध्यवसाय के साथ निर्वाण की भूमि को जोतना चाहिए।

2. सांसारिक भोगविलासों से मोहित होकर, वासनाओं के कारण चित्त का स्वास्थ्य खो बैठने वाले के लिए निर्वाण के पथ पर चलना कठिन है। सांसारिक आनन्द और सत्यपथ पर चलने का आनन्द दोनों में जमीन आसमान का अन्तर है।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया है, चित्त की सभी वस्तुओं का मूल है। यदि चित्त सांसारिक बातों में आनन्द ले, तो उसमें से भ्रान्तियाँ और दु:ख ही पैदा हागें, किन्तु यदि चित्त सत्यपथ में आनन्द का अनुभव करे, तो नि:संशय उसमें से सुख, संतोष और निर्वाण की उत्पत्ति होगी।

अत: निर्वाण की कामना करनेवालों को अपने चित्त को शुद्ध रखना चाहिए और धीरज से तीन मार्गों का अंगीकार और आचरण करना चाहिए

शीलों का पालन करने से चित्त सहज में एकाग्र हो जाता है, चित्त की एकाग्रता साध्य होने से सहज ही प्रज्ञा का विकास होता है, और प्रजा की मनुष्य को निर्वाण की ओर ले जाती है।

सचमुच ये तीनों (शीलों का पालन, ध्यान की साधना और प्रज्ञा का विकास) निर्वाण के सही मार्ग है।

इनका अनुसरण न करने से, लोग दीर्घ काल तक मानसिक भ्रान्तियों का संचय करते आए हैं। उन्हें सांसारिक लोगों से विवाद नहीं करना चाहिए, अपितु निर्वाण-प्राप्ति के लिए अपने विशुद्ध चित्त की गहराई में उतरकर धीरज के साथ ध्यान करना चाहिए।

3. यदि आचरण के इन तीन मार्गों को विस्तार से कहें तो उन्हें आर्य अष्टांगिक मार्ग, चार स्मृत्युपस्थान, चार सम्यक्प्रहाण, पंच बल और छह पारमिताएँ कहा जा सकता है।

आर्यअष्टांगिक मार्ग है सम्यक्-दृष्टि, सम्यक्-संकल्प, सम्यक्वचन, सम्यक्-कर्म, सम्यक्-जीविका, सम्यक्-उद्योग, सम्यक्-स्मृति और सम्यक् समाधि।

सम्यक्-दृष्टि का अर्थ है चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान, कार्य कारण-संबंध के सिद्धान्त में विश्वास और मिथ्यादृष्टि का त्याग।

सम्यक्-संकल्प का अर्थ है वासनाओं में न फँसने, लोभ न करने

क्रोध न करने और कोई भी हानिकर कार्य न करने का संकल्प।

सम्यक्-वचन का अर्थ है झूठ न बोलना, वृथा बकवास न करना, गाली-गलौच न करना और दौमुँही बात न कहना।

सम्यक्-कर्म का अर्थ है किसी जीव की हिंसा न करना, और न चोरी और न व्यभिचार करना।

सम्यक्-जीविका का अर्थ है जीवनयापन के किसी भी लज्जास्पद ढंग से बचे रहना।

सम्यक्-उद्योग का अर्थ है सही दिशा की ओर आलस्य छोड़कर सतत बढ़ते रहने का प्रयत्न करना।

सम्यक्-स्मृति का अर्थ है पवित्र और विवेकपूर्ण चित्त की रक्षा करना।

सम्यक्-समाधि का अर्थ है गलत लक्ष्य की चित्त को हटाकर, प्रजा के विकास के लिए ठीक, शांत और एकाग्र करना।

4. चार स्मृत्युपस्थान ये हैं: पहला, अपने शरीर को अपवित्र मानकर उसके प्रति सब आसक्तियों का त्याग करने का प्रयत्न; दूसरा, सभी

इन्द्रियों को दु:ख का मूल समझना, चाहे उनकी अनुभूतियाँ कष्ट देने वाली हों या आनन्द, तीसरा, अपने मन को सतत परिवर्तनशील, अस्थिर मानना और चौथा, यह मानना कि इस संसार की सभी वस्तुएँ हेतु ओर प्रत्ययों के कारण उत्पन्न होती हैं और कोई भी वस्तु अनन्तकाल तक शाश्वत नहीं रहती।

5. चार सम्यक् प्रहाण ये हैं: पहला, किसी भी पाप को पैदा होने से पहले ही रोकना; दूसरा, उत्पन्न हुए पाप का तुरन्त निवारण करना; तीसरा, पवित्र कार्य करने के लिए अपने को प्रवृत्त करना; और चौथा, आरंभ किए गए पवित्र कार्यों को चालू रखने और उनको विकसित करने के लिए प्रयत्नशील रहना। इन चारों प्रहाणों का पालन करना चाहिए।

6. पंच बल ये हैं: पहला, श्रद्धा:, दूसरा, प्रयत्न करने का संकल्प; तीसरा, हृदय में गहरे विवेक का धारण; चौथा, मन को एकाग्र करने की शक्ति और पाँचवाँ, शुद्ध प्रजा को धारण करना। ये पाँच निर्वाण-प्राप्ति के लिए आवश्यक बल हैं।

7. छह पारमिताएँ हैं दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, ध्यान, तथा प्रज्ञा। इनका आचरण करने से, इनके द्वारा मोह के इस तट को पार कर निर्वाण के उस तट तक पहुँच सकते हैं, अत: इन्हें षट्पारमिता कहते हैं।

दान के कारण स्वार्थ से मुक्ति मिलती है; शीलों के आचरण से दूसरों के अधिकारों और सुख-सुविधाओं के प्रति मनुष्य सोचने लगता है; क्षान्ति के पालन से भयभीत अथवा क्रुद्ध मन को नियंत्रित रखने में सहायता मिलती है; वीर्य की साधना मनुष्य को अध्यवसायी और प्रामाणिक बनने में सहायक होती है; ध्यान की साधना इधर-उधर व्यर्थ भटकने वाले चंचल मन को शांत करती है और प्रज्ञा की साधना अन्धकारपूर्ण सम्भ्रमित मन को स्पष्ट और तीक्ष्य अन्तर्दृष्टि से आलोकित करती है।

दान और शीलों का पालन, बड़े दुर्ग के निर्माण के लिए आवश्यक मजबूत बुनियाद के समान, साधना की बुनियाद है। क्षान्ति तथा वीर्य दुर्ग की दीवारों की तरह बाहर के संकटों से बचाते हैं। ध्यान और प्रज्ञा मनुष्य का अपना कवच है, जो जन्म और मृत्यु के आक्रमणों से उसकी रक्षा करता है।

यदि मनुष्य केवल अपनी सुविधा के अनुसार दान करे अथवा इसलिए दान करे कि न देने की अपेक्षा देना आसान है, तो वह दान है सही, किन्तु सच्चा दान नहीं है। सच्चा दान किसी के याचना करने से पहले ही सहानुभूति के कारण दिया जाता है और सच्चा दान वही है जो कभी-कभी नहीं, अपितु सतत दिया जाता है।

दान के बाद पछतावे या घमंड की भावना पैदा हो तो उसे भी सच्चा दान नहीं कहा जा सकता। सच्चा दान खुशी से दिया जाता है। जिसमें

दानी अपने-आपको, ग्रहणकर्ता को और दान को भी भूल जाता है।

सच्चा दान सहज रूप में शुद्ध करुणापूर्ण हृदय से दिया जाता है, जिसमें प्रत्युपकार की कोई कामना नहीं होती। कामना होती है केवल एक साथ निर्वाण में प्रवेश करने की।

पास में अधिक धन न होते हुए भी सात प्रकार के दान आसानी से किए जा सकते हैं। पहला है शरीर-दान। यह अपने शारीरिक परिश्रम द्वारा दिया जा सकता है। इसका सर्वश्रेष्ठ प्रकार अपने जीवन को समर्पित करना है, जैसा कि आगे की कथा में बताया गया है। दूसरा है हृदय-दान इसका मतलब करुणापूर्ण हृदय से दूसरों के साथ पेश आना है। तीसरा नत्र-दान है; प्रेमपूर्ण दृष्टि से सब की ओर देखना, जिससे उनका मन प्रसन्न हो उठे। चौथा मुखाकृति-दान है; यह है सौम्य मुखाकृति से सदा स्मित करते हुए सब के साथ व्यवहार करना। पाँचवाँ है वाणी-दान; दूसरों से सहृदय और प्यार-भरे शब्दों में बात करना। छठा है आसन दान; अपना आसन दूसरों को देना। सातवाँ है आश्रय-दान। दूसरों की एक रात अपने घर पर बिताने देना। इस प्रकार के दान कोई भी अपने दैनंदिन जीवन में कर सकता है।

8. पुराने समय में सत्त्व नाम का एक राजपुत्र था। एक दिन वह अपने दो बड़े भाइयों के साथ बन में क्रीड़ा करने गया। वहाँ उन्होंने भूख से व्याकुल एक शेरनी को देखा जो अपनी भूख मिटाने के लिए अपने सात बच्चों को खाने के लिए विवश हो गई थी।

सभी बड़े भाई भय के मारे वहाँ से भाग खड़े हुए किन्तु सत्त्व एक ऊँची चट्टान पर चढ़ गया और वहाँ से उसने अपन-आपको शेरनी के सामने झोंक दिया ताकि उसके बच्चों के प्राण बचें।

राजकुमार सत्त्व ने यह दानशीलता का कार्य स्वयंस्फूर्ति से किया किन्तु मन ही मन वह सोच रहा था: "यह शरीर परिवर्तनशील और अनित्य है; अब तक उसका दान करने की बात सोचे बिना, मैं उससे प्यार ही करता आया हूँ किन्तु अब मैं इसे इस शेरनी को अर्पित कर दूँ, ताकि निर्वाण की प्राप्ति कर सकूँ।" राजकुमार सत्त्व का यह विचार निर्वाण-प्राप्ति के उसके सच्चे संकल्प का दिग्दर्शक है।

9. फिर चित्त की चार अप्रामाण्य (जिनका कोई प्रमाण नहीं है) अवस्थाएँ है, जिनकी निर्वाण-प्राप्ति की इच्छा रखनेवालो को भावना करनी चाहिए। इनको 'ब्रह्म-विहार' कहते हैं। वे हैं मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा। मैत्री की भावना से लोभ को दूर किया जा सकता है, करुणा की भावना से क्रोध का उपशम होता है, मुदिता से दु:खों का अन्त किया जा सकता है तथा उपक्षा से शत्रु और मित्र के बीच भेदभाव करने की आदत छूट जाती है।

जो लोगों को सुखी और संतुष्ट करे वही महान मैत्री है, लोगों को सुखी और संतुष्ट न करनेवाली बातों को जो मिटाती है वही महाकरुणा

है; सभी लोगों का हर्षोत्फुल्ल हृदय से स्वागत करना महान मुदिता है। सभी लोगों के प्रति समानता से, भेदभाव किए बिना, व्यवहार करना महान उपेक्षा है।

बड़ी सावधानी से इन चार ब्रह्मविहारों की भावना करनी चाहिए और लोभ, क्रोध, दुःख तथा राग-द्वेष-भरे चित्त से मुक्ति पानी चाहिए। किन्तु यह इतना आसान काम नहीं है। पापी मन को हटाना रखवाली के कुत्ते को हटाने के जितना मुश्किल है और पवित्र मन को खो बैठना वन में दौड़ते हुए हिरन को खोने जितना आसान है। अथवा पापी मन को मिटाना पत्थर पर खोदे हुए अक्षरों को मिटाने जितना कठिन है और पवित्र मन का नष्ट हो जाना पानी पर लिखे गए अक्षरों के नष्ट हो जाने जितना आसान है। निर्वाण की साधना करना बहुत कठिन तपस्या है।

10. श्रोण (सोण) नाम का एक युवक था, जिसका जन्म धनी परिवार में हुआ था, किन्तु जो शरीर से बहुत कोमल था। वह निर्वाण-प्राप्ति के लिए बहुत उत्सुक था, इसलिए भगवान बुद्ध का शिष्य बन गया। रात को पैरों के तलवों में खून निकलने तक चंक्रमण करके वह साधना करता था, किन्तु फिर भी उसे निर्वाण-प्राप्ति नहीं हुई।

भगवान को उस पर दया आई और उन्होंने कहा, ''श्रोण, जब तुम गृहस्थ थे, तब तुमने वीणा तो बजाई ही होगी। तुम जानते ही हो कि वीणा के तार अधिक खींचे जाएँ या अधिक ढील छोड़े जाएँ तो उनसे मधुर संगीत नहीं निकलता। संगीत तभी निकलता है जब उसके तार ठीक अनुपात में खींचे गए हों।

''निर्वाण की साधना में भी शिथिल बनने से निर्वाण प्राप्त नहीं हो सकता और अति उत्साह से तनकर प्रयत्न करने पर भी निर्वाण की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिए मनुष्य को प्रयत्न करते समय ठीक अनुपात का सतत ख्याल रखना चाहिए।''

इस प्रकार शिक्षा प्राप्तकर श्रोण ने वीर्यसमता संपादन की और इंद्रियसमत्व प्राप्त कर उसने शीघ्र ही निर्वाण प्राप्त कर लिया।

11. पुराने काल में एक राजकुमार था, जो पाँच प्रकार के शस्त्रों के प्रयोग में प्रवीण था। एक दिन शस्त्राभ्यास से घर लौटते समय उसकी भेंट एक भीमकाय दैत्य से हुई, जिसकी त्वचा अभेद्य थी।

दैत्य ने राजकुमार पर धावा बोल दिया, किन्तु वह बिलकुल घबराया नहीं। उसने दैत्य पर बाण मारा किन्तु उससे उसका बाल भी बाँका न हुआ। फिर राजकुमार ने अपना भाला फेंका, किन्तु वह भी दैत्य की मोटी त्वचा को छेद नहीं पाया। फिर उसने डण्डा और नेजा फेंककर देखा, किन्तु वे दैत्य को चोट नहीं पहुँचा पाए। फिर उसने तलवार का प्रयोग किया, किन्तु वह टूट गई। फिर उसने मुष्टियों और लातों स दैत्य पर आक्रमण करने का प्रयास किया किन्तु व्यर्थ, क्योंकि दैत्य ने उसे अपने विशाल बाहुओं में जकड़ लिया। फिर राजकुमार ने मस्तक को शस्त्र के रूप में काम में लाने का प्रयास किया, किन्तु वह भी व्यर्थ गया।

दैत्य ने कहा, ''अब विरोध करने से कोई फायदा नहीं; मैं तुम्हें खाने ही वाला हूँ।'' राजकुमार ने उत्तर दिया, ''तुमने मान लिया होगा कि मेरे सब शस्त्र समाप्त हो चुके और मैं अब लाचार हूँ, किन्तु मेरे पास और एक शस्त्र बचा हुआ है। अगर मुझे खा लिया तो मैं तुम्हारे पेट के भीतर से तुम्हें नष्ट करूँगा।'

राजकुमार के सीस से दैत्य घबरा गया और उसने पूछा, 'वह केसे?'' रामकुमार ने उत्तर दिया, ''सत्य की सामर्थ्य से।

तब दैत्य ने उसे छोड़ दिया और सत्य का उपदेश करने की प्रार्थना की।

इस कथा की शिक्षा यह है कि शिष्य अपने प्रयत्नों में बराबर लगा रहे और कितने भी संकट क्यों न आएँ धीरज न खोए।

12. निन्दनीय स्वाग्रह और निर्लज्जता दोनों इस लोक में झगड़ा पैदा करते हैं, किन्तु लोकापवाद और लज्जा इस लोक की रक्षा करते हैं। लोग अपने माता-पिताओं, बुजुर्गों, भाई-बहनों का आदर इसलिए करते हैं कि वे लोकापवाद और लज्जा से चौकन्ने रहते हैं। आत्म-परीक्षण करने के बाद दूसरों का निरीक्षण करते हुए अपने घमंड को काबू में रखना और लज्जा का अनुभव करना लाभदायक है।

मनुष्य में यदि पश्चात्ताप की भावना है तो उसके पाप नष्ट हो जाएंगे; किन्तु वह पश्चात्ताप की भावना से रहित हो तो उसके पाप बढ़ते जाएँगे और उसका सत्यानाश कर देंगे।

जो सत्य धर्म का ठीक से श्रवण करता है और उसके अर्थ तथा उसके साथ अपने संबंध को जानता है वही उसको ग्रहण कर उससे लाभ उठा सकता है।

यदि मनुष्य केवल सत्य-धर्म का श्रवण-मात्र करे, किन्तु ग्रहण न करे तो वह निर्वाण-प्राप्ति की अपनी खोज में असफल होगा।

श्रद्धा, विनय, विनम्रता, प्रयत्न और प्रज्ञा निर्वाण की साधना करने वाले के लिए बल के बड़े स्रोत हैं। इनमें प्रज्ञा सब से श्रेष्ठ है और दूसरे प्रज्ञा के पहलू-मात्र हैं। साधनारत मनुष्य यदि सांसारिक मामलों में उलझ जाए, व्यर्थ बातों करना पसन्द करे या निदालु बन जाए तो वह निर्वाण के पथ से भ्रष्ट हो जाएगा।

13. निर्वाण की साधना में कुछ लोगों को शीघ्र सफलता मिलेगी तो कुछ लोगों को देर से। अतः दूसरों को पहले निर्वाण-प्राप्त करते हुए देखकर किसी को निरुत्साहित नहीं होना चाहिए।

जब मनुष्य धनुर्विद्या का अभ्यास करता है, तब वह शीघ्र सफलता की अपेक्षा नहीं करता, किन्तु वह जानता है कि यीद वह धीरज के साथ अभ्यास करता रहेगा तो अधिकाधिक अचूक लक्ष्यवेध कर सकेगा। नदी प्रारंभ में एक छोटा सा झरना होती है, किन्तु धीरे-धीरे वह बढ़ती चली जाती है और अन्त में सागर में जा मिलती है।

वैसे ही, यदि मनुष्य धीरज और अध्यवसाय से साधना करता रहे, तो उसे वश्य निर्वाण की प्राप्ति होगी।

जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, यदि मनुष्य अपनो आँखें खुली रखे, तो उसे हर जगह उपदेश दिखाई देगा, इस तरह निर्वाण-प्राप्ति के उसके अवसर भी अनन्त हैं।

एक बार एक मनुष्य अगरु जला रहा था। उसके ध्यान में आया कि सुंगध न तो आ रही है, न जा रही है; वह न तो प्रकट हुई, न उसका लोप हुआ। यह साधारण सी घटना उसकी निर्वाण प्राप्ति का कारण बन गई।

एक बार किसी आदमी के पाँव में काँटा चुभ गया। उसने तीव्र वेदना का अनुभव किया और उसके मन में विचार उठा कि वेदना चित्त की प्रतिक्रिया-मात्र है। इस घटना से उसके मन में और गहरे विचार उठते चले गए कि मन को यदि नियंत्रित न किया गया तो वह हाथ से बाहर निकल जाता है और अगर संयत रखा गया तो पवित्र बन जाता है। इन विचारों से, कुछ समय बाद, उसे निर्वाण-प्राप्ति हुई।

और एक आदमी था जो बहुत लोभी था। एक दिन जब वह अपने लोभी मन पर सोच रहा था तो उसे साक्षात्कार हुआ कि ये लोभी विचार तो चैले और चिप्पियाँ-मात्र हैं, जो ज्ञान द्वारा जलाए और भस्म किए जा सकते हैं। यह उसके निर्वाण का आरंभ था।

एक पुरानी कहावत है: "अपने चित्त को सन्तुलित रखो। यदि चित्त सन्तुलित हो तो सारी दुनिया सन्तुलित होगी।" इन शब्दों पर सोचिए। ध्यान में रखिए कि संसार के सारे भेदभाव चित्त के भेदभावपूर्ण विचारों के कारण पैदा होते हैं। इन्हीं शब्दों में निर्वाण का पथ है। सचमुच निर्वाण की ओर ले चलने वाले मार्ग अनंत हैं।

3
श्रद्धा का मार्ग

1. जो बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिरत्न की शरण लेते हैं वे बौद्ध धर्म के

उपासक कहलाते हैं। बौद्ध धर्म के उपासक चार साधनामार्गों को अपनाते हैं –शील, श्रद्धा, दान तथा प्रजा।

प्राणातिपात–विरति (किसी भी जीवन की हत्या न करना) अदत्तादान–विरति (चोरी न करना), काम–मिथ्याचार–विरति (व्यभिचार न करना), मृषावाद–विरति (झूठ न बोलना) और सुरा–मैरेय–प्रमाद स्थान–विरति (शराब न पीना) इन पाँच शीलों का पालन उपासकों को करना चाहिए।

बुद्ध की प्रज्ञा में विश्वास करना उपासकों की श्रद्धा है; लोभ और आसक्ति का त्याग कर सदा दूसरों को दान करने में आनन्द अनुभव करना उपासकों का दान है। और फिर हेतु और प्रत्यय के सिद्धान्त को जानकर इस सिद्धान्त का ज्ञान होना कि सभी वस्तुएँ परिवर्तनशील हैं, उपासकों की प्रज्ञा है।

पूर्व की ओर झुका हुआ पेड़ गिरते समय निश्चित रूप से पूर्व की ओर ही गिरेगा, वैस ही जो लोग जीवन–भर बुद्ध के उपदेश का श्रवण कमरते हैं और उसमें श्रद्धा रखते हैं, उनक जीवन का अन्त कहीं भी, कैसे भी हो, वे निश्चित ही बुद्ध की पवित्र भूमि सुखवती में जन्म लेंगे।

2. ठीक ही कहा गया है कि बुद्ध, धर्म और संघ में श्रद्धा रखनेवाले बुद्ध के उपासक कहलाते हैं।

बुद्ध वही हैं जिन्होंने सम्यक्सबोधि को प्राप्त किया और उसके द्वारा सारी मानव–जाति का उद्धार और कल्याण किया। ऐसे बुद्ध द्वारा किए गए उपदेशों को धर्म कहते हैं। संघ उन उपदेशों के अनुसार सची साधना करनेवालों का समन्वित समुदाय है।

बुद्ध, धर्म और संघ ये तीनों तीन होते हुए भी एक दूसरे से अलग तीन वस्तुएँ नहीं हैं। बुद्ध धर्म में प्रकट होते हैं और उस धर्म का आचरण संघ द्वारा होता है। इसलिए धर्म में विश्वास करना और संघ की उपासना करना बुद्ध में श्रद्धा रखना है और बुद्ध में श्रद्धा रखने का मतलब है धर्म में विश्वास करना और संघ की उपासना करना।

इसलिए लोग केवल बुद्ध पर श्रद्धा रखकर अपना उद्धार और साक्षात्कार कर सकते हैं। बुद्ध सम्यक्संबुद्ध हैं और वे हर एक से अपने पुत्र के समान प्यार करते हैं। इसलिए यदि कोई बुद्ध को अपना पिता मानता है तो वह बुद्ध के साथ एकरूप हो जाता है और निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

जो इस प्रकार भगवान बुद्ध का ध्यान करते हैं उन्हें उनकी प्रज्ञा का आधार मिलेगा और उनकी कृपा की सुगंध से उनका जीवन महक उठेगा।

3. भगवान बुद्ध पर श्रद्धा रखने से अधिक लाभदायक इस संसार में और कुछ नहीं हैं। केवल एक बार बुद्ध के नाम का श्रवणकर श्रद्धा और हर्ष करना भी महान फलदायी है।

इसलिए इस संसार में व्याप्त ज्वालाओं में प्रवेश करके भी, बुद्ध के उपदेश का श्रवणकर श्रद्धा और हर्ष का अनुभव करना चाहिए।

धर्म का उपदेश करनेवाले गुरु से भेंट होना कठिन है, बुद्ध से भेंट होना और भी कठिन है, और उनके उपदेश में श्रद्धा करना तो सब से कठिन है।

किन्तु जिनसे भेंट होना कठिन है उन बुद्ध से भेंट हुई है, और जो कठिनाई से ही सुना जा सकता है वह सुनने का अवसर मिला है, तो आपको हर्ष करना चाहिए, विश्वास करना चाहिए और बुद्ध में श्रद्धा रखनी चाहिए।

4. जीवन की दीर्घ यात्रा में श्रद्धा सब से अच्छा साथी है; यात्रा का सब से अच्छा पाथये है और सर्वोत्तम संपत्ति है।

श्रद्धा बुद्ध के उपदेशों को ग्रहण करके सभी पुण्यों को प्राप्त करने वाला पवित्र हाथ है। श्रद्धा सांसारिक वासनाओं की अशुद्धियों का जलाकर खाक करनेवाली आग है, वह बोझ को हटाकर मनुष्य के पथ का मार्गदर्शक बनती है।

श्रद्धा लोभ, भय और अभिमान को दूर करती है; वह विनय और दूसरां का आदर करना सिखाती है; वह परिस्थितियों के बंधन से मनुष्य को मुक्त करती है; संकटों का सामना करने का साहस देती है; प्रलोभनों पर विजय पाने की सामर्थ्य देती है; अपने आचरण को तेजस्वी और शुद्ध रखने में सहायक होती है और ज्ञान से हृदय को समृद्ध कर देती है।

पथ जब लम्बा और उकतानेवाला होता है तब श्रद्धा प्रेरक शक्ति बनती है और निर्वाण की ओर ले जाती है।

श्रद्धा हमें ऐसा अनुभव कराती है क मानो हम सदा भगवान बुद्ध के सामने हैं, बुद्ध ने अपनी बाँहों में हमें समेट लिया है।

श्रद्धा हमारे कठोर और स्वार्थी मन को कोमल बनाती है और दूसरों के साथ आत्मीयता से घुलमिल जाने की वृत्ति और सहानुभूतिपूर्ण हृदय का निर्माण करती है।

5. जो श्रद्धावान हैं उन्हें, वे कुछ भी सुनाते हैं उसमें, भगवान बुद्ध का उपदेश श्रवण करने की प्रज्ञा प्राप्त होती है। श्रद्धावान लोगों को यह देखने की प्रज्ञा भी प्राप्त होती है कि सभी घटनाएँ हेतु और प्रत्यय के कारण घटती रहती है; और फिर श्रद्धा उन्हें अपनी परिस्थितियों को धीरज के साथ स्वीकार करने और उनके साथ मेल बिठाने की सामर्थ्य प्रदान करती है।

यह जानते हुए कि परिस्थितियाँ और घटनाएँ चाहे जितनी बदलें जीवन का सत्य सदा अपरिवर्तित रहता है, श्रद्धा उन्हें जीवन की अनित्यता को पहचानने की प्रज्ञा देती है; और उनपर केसी भी विपत्ति क्यों न पड़े, या खुद जीवन का अन्त ही क्यों न हो जाए, अचंभित न होने और शोक न करने का बल प्रदान करती है।

श्रद्धा के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं: पश्चात्ताप, दूसरों के गुणों के प्रति प्रशंसा की भावना तथा बुद्धमय जीवन की कामना करते रहना।

लोगों को श्रद्धा के इन पहलूओं का विकास करना चाहिए; उन्हें अपने पापों और अशुद्धियों के प्रति सचेत रहना, उनके प्रति लज्जित होना ओर उनपर पछताना चाहिए। उन्हें चाहिए कि वे दूसरों के सत्कर्मों और सत्प्रवृत्तियों को मुक्त मन से स्वीकार करें, उनकी प्रशंसा करें और सदा बुद्ध के साथ कर्म करने और बुद्ध के साथ जीवनयापन करने की कामना करें।

श्रद्धावान मन निष्ठावान होता है; उसमें गहराई होती है, वह इस बात में सच्चा आनन्द अनुभव करता है कि बुद्ध उसे अपनी शक्ति से बुद्धक्षेत्र की ओर ले जाएँगे।

अतः, बुद्ध लोगों को बुद्धक्षेत्र की ओर ले जाने वाली उनकी श्रद्धा को दृढ़ करते हैं। वह सामर्थ्य उन्हें पावन करती और आत्मा-भ्रान्ति से उनकी रक्षा करती है। सारे संसार में जिसका गुणगान हो रहा है उस बुद्ध के नाम को सुनकर यदि वे एक क्षण भी श्रद्धा करें तो वे बद्ध के सुखावती बुद्धक्षेत्र की ओर ले जाए जाएँगे।

6. श्रद्धा सांसारिक मन में बाहर से नहीं डाली जाती-वह तो मन की तह में पड़े हुए बुद्धत्व का आविर्भाव है। क्योंकि बुद्ध को जाननेवाला स्वयं बुद्ध होता है; बुद्ध में श्रद्धा रखने वाला भी स्वयं बुद्ध होता है।

मन में बुद्धत्व होते हुए भी वह क्लेशों के कीचड़ में इतना गहरा डूबा होता है कि उसमें से सम्यक्संबोधि का अंकुर फूटकर फूल खिलना संभव नहीं होता। लोभ और क्रोध जैसे क्लेशों के आक्रमणों के बीच बुद्ध की ओर अभिमुख होकर बढ़ने वाला पवित्र हृदय क्योंकर विकसित होगा?

विषैले एरंड वृक्षों के वन में केवल एरंड के पेड़ ही उगते हैं सुगन्धित चन्दन के वृक्ष नहीं उगते। एरंडवन में यदि चन्दन का वृक्ष पैदा हो जाए तो उसे एक चमत्कार ही कहना चाहिए। उसी प्रकार लोगों के हृदय में बुद्ध के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो तो वह भी एक चमत्कार ही मानना चाहिए।

इसलिए बुद्ध में विश्वास करनेवाली श्रद्धा को 'मूलहीन' कहा गया है। उसके पैदा होने के लिए मनुष्य-हृदय में उसका कोई मूल नहीं होता, बुद्ध करुणामय हृदय में ही उसका मूल होता है।

7. श्रद्धा बड़ी फलदायिनी और पावन है। किन्तु निष्क्रिय मन में उसका पैदा होना कठिन है। विशेषरूप से आगे बताये गए पाँच संदेह मनुष्य के मन में उठते रहते हैं और श्रद्धा में बाधा पैदा करते हैं।

पहला है, बुद्ध की प्रज्ञा पर संदेह करना; दूसरा है, बुद्ध के उपदेश पर संदेह करना; तीसरा है, बुद्ध के उपदेशों की व्याख्या करनेवाले पर संदेह करना; चौथा है, इस बात पर संदेह करना कि निर्वाण-पथ पर चलने के लिए जो साधन और मार्ग बताए गए हैं, वे ठीक हैं या नहीं; पाँचवाँ है, अपने उद्धत और असहिष्णु मन के कारण, बुद्ध के उपदेशों को समझने और उनका अनुसरण करने वाले लोगों की प्रामाणिकता पर संदेह करना।

सचमुच, संदेह से भयानक और कोई वस्तु इस संसार में नहीं है। संदेह लोगों को अलग करता है, तोडता है यह एक ऐसा विष है जो मित्रता को खण्डित करता और अच्छे संबंधों में विच्छेद पैदा करता है। यह हृदय में चुभने और पीड़ा पहुँचानेवाला काँटा है; जान लेनेवाला खड्ग है।

श्रद्ध के बीज बहुत पुराने काल में करुणामूर्ति बुद्ध द्वारा हमारे हृदय में बोये गए हैं। जब हमारे हृदय में श्रद्धा के अंकुर फूट निकलें, तब हमें इस बात को समझने और बुद्ध के प्रति कृतज्ञ होना चाहिए।

हमें यह कभी भूलाना नहीं चाहिए कि हृदय में जागी हुई श्रद्धा हमारी अपनी करुणा के कारण नहीं, बुद्ध की, जिसने मानव हृदय में बहुत पहले श्रद्धा का पावन प्रकाश फैलाया और उनके अज्ञानांधकार को हटाया, करुणा के कारण जागी है। आज वही श्रद्धा हमें विरासत में मिली है।

सामान्य जीवन जीते हुए भी, हम सुखावती बुद्धक्षेत्र में जन्म ले सकते हैं, क्योंकि बुद्ध की अविरत करुणा के कारण ही हमारे हृदय में श्रद्धा पैदा होती है।

सचमुच, मनुष्य-जन्म की प्राप्ति दुष्कर है, धर्म का श्रवण करना दुष्कर है, श्रद्धा का होना तो और भी दुष्कर है। अतः बुद्ध के उपदेशों का श्रवण करने के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील रहना चाहिए।

4
बुद्ध के सुवचन

1. जो यही सोचता रहता है कि "उसने मुझे गाली दी, वह मुझपर हँसा, उसने मुझे मारा।" उसका वैर कभी शान्त नहीं होता।

वैर कभी वैर से नहीं मिटता। वैर को भूल जाने से ही वैर शान्त होता है।

यदि छत ठीक से न बनाई गई, या दुरुस्त न की गई, तो वह बरसात में चूने लगेगी; ठीक उसी तरह अनियंत्रित या बिना साधे हुए मन में लोभ घुस जाता है।

आलस्य मृत्यु की ओर ले जानेवाला और परिश्रम जीवन का मार्ग है; मूर्ख लोग आलसी होते हैं, प्रज्ञावान लोग परिश्रमी होती हैं।

बाण बनानेवाला अपने बाणों को सीधा बनाने का यत्न करता है; वैसे ही ज्ञानी मनुष्य अपने चित्त को सीधा रखने का प्रयत्न करता है।

विक्षिप्त मन इधर-उधर भटकता हुआ सदा अस्थिर और दुर्दमनीय होता है; किन्तु अक्षुब्ध मन शांत होता है; इसलिए सयाने लोग मन को नियंत्रित रखते हैं।

आदमी का मन ही उसे पाप की ओर ललचाता है, उसका शत्रु या द्वेष्टा नहीं।

जो लोभ, क्रोध और मूढ़ता से अपने मन की रक्षा करता है, वही सच्ची और शाश्वत शांति का स्वाद लेता है।

2. अच्छे वचन मुँह से निकालकर उनके अनुसार आचरण न करना सुगन्धहीन पुष्प के समान है।

फूल की सुगन्ध पवन के विरुद्ध फैल नहीं सकती, किन्तु सत्पुरुष का यश पवन के विरुद्ध भी संसार में फैल जाता है

निद्राहीन मनुष्य की रात लम्बी होती है और थके हुए मनुष्य को यात्रा दीर्घ लगती है; वैसे ही सद्धर्म को न जाननेवाले मनुष्य को भ्रान्ति और दु:ख का समय दीर्घ लगता है।

मनुष्य को अपने समकक्ष अथवा श्रेष्ठ के साथ ही यात्रा करनी चाहिए; मूर्ख के साथ यात्रा करने की अपेक्षा अकेले यात्रा करना अच्छा।

हिंस्र पशु से भी अधिक अप्रामाणिक और बुरे मित्र से डरना चाहिए;हिंस्र पशु शरीर को चोट पहुँचा सकता है, किन्तु बुरा मित्र मन को चोट पहुँचाएगा।

'ये मेरे पुत्र है, यह मेरा धन है,' यही सोच–सोचकर मूर्ख मनुष्य दु:खी होता रहता है। जब अपना–आप ही अपना नहीं, तो पुत्र और धन अपने कैसे हो सकते हैं!

मूर्ख होकर अपनी मूर्खता को जानना, मूर्ख होते हुए भी अपने को पण्डित समझने से कही अच्छा है।

मुर्ख मनुष्य किसी पण्डित की संगति करे तो भी वह उसके द्वारा उपदेशित सद्धर्म को जान नहीं सकता, जैसे कड़छी दाल के स्वाद को।

ताज़ा दूध अक्सर जल्दी नहीं जमता; वैसे ही पापकर्म का तुरन्त फल नहीं होता। पापकर्म राख के नीचे दबे हुए अंगारों के समान होते हैं, जो सुलगते रहते हैं और अन्त में बड़े अग्निकांड का कारण बन जाते हैं।

विशेषाधिकार, तरक्की, लाभ अथवा सम्मान की कामना करते रहना मूर्खता है, क्योंकि ऐसी कामनाएँ कभी सुखी नहीं करती, उल्टे दुःख का कारण बनती हैं।

गलतियों और कमियों की ओर ध्यान खींचने तथा बुराई की निन्दा करनेवाले कल्याण-मित्र का इस तरह आदर करना चाहिए, मानो उसने कोई छिपा खजाना दिखा दिया हो।

3. अच्छा उपदेश पाकर जो आदमी प्रसन्न होता है वह चैन की नींद सोएगा, क्योंकि उसका हृदय शुद्ध हो जाता है।

जिस तरह बढ़ई शहतीर को सीधा बनाता है, बाण बनानेवाला बाणों को सीधा बनाता है, पानी की नाली बनानेवाला इस तरह बनाता है कि उसमें पानी बिना रुकावट के बहता रह सके, उसी तरह पंडित अपने मन

को नियंत्रित करता और ऋजु बनाता है कि वह सीधे-सीधे ढंग से काम करता रहे।

जिस तरह बड़ी शिला वायु के झोंके से हिलती-डुलती नहीं, वैस ही पण्डित निन्दा-प्रशंसा से विचलित नहीं होता।

युद्ध में हज़ारों-लाखों को जीतने की अपेक्षा अपने-आपको जीतना ही सच्ची विजय है।

सच्चे उपदेश को न जानते हुए सौ वर्ष जीवित रहने की अपेक्षा सद्धर्म को सुनकर एक ही दिन जीना कहीं अच्छा।

जो भी अपने-आपको सचमुच प्यार करता है, उसे स्वयं को पाप से बचाते रहना चाहिए। जवानी, अधेड़ उम्र अथवा बुढ़ापा भी क्यों न हो, जीवन में एक बार तो आत्म-जागृति कर ही लेनी चाहिए।

यह संसार सतत जल रहा है, लोभ, क्रोध और मूढ़ता की आग में जल रहा है; इस जलते हुए घर से जल्दी से जल्दी भाग निकलना चाहिए।

यह संसार एक बुलबुले के समान है, मकड़ी के महीन जाले के समान है, गंदगी से भरे घट के समान है। इसलिए हरएक को सतत अपने मन की पवित्रता की रक्षा करनी चाहिए।

4. किसी भी पाप-कर्म को न करना, हमेशा अच्छे कर्म करते रहना और अपने मन को शुद्ध पवित्र रखना-यही बुद्ध का उपदेश है।

तितिक्षा की साधना सब से कठिन है, किन्तु जो सहनशील होता है, अंतिम विजय उसकी होती है।

द्वेष-भावना को मन में आते ही तत्काल निकाल बाहर करना चाहिए; हृदय दुःख से भरा हो उसी समय दुःख से मुक्ति पानी चाहिए, लोभाविष्ट स्थिति में ही लोभ को हटा देना चाहिए। समृद्धि में भी, किसी भी वस्तु को अपना समझकर पवित्र निःस्वार्थ जीवन जीना चाहिए।

स्वस्थ और निरोग रहना सब से लाभदायक है; संतोष सब से बड़ा धन है; विश्वासपात्रता मित्रता का सच्चा लक्षण है; निर्वाण प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ सुख है।

जब पाप के प्रति अरुचि पैदा होती है, जब शांति का अनुभव होने लगता है, जब अच्छे उपदेशों के श्रवण में आनन्द आने लगता है जब मनुष्य को ऐसी अनुभूतियाँ होने लगती हैं और वह उनका स्वाद लेने लगता है, तब भयमुक्त हो जाता है।

अपनी प्रिय वस्तुओं के प्रति आसक्त न बनो, अप्रिय वस्तुओं से घृणा न करो; दुःख, भय और बन्धन अपनी रुचि-अरुचि के कारण पैदा होते हैं।

5. लोहे से उत्पन्न मोरचा (जंग) लोहे को खा जाता है, उसी तरह पाप मनुष्य के मन में पैदा होकर मनुष्य का सत्यानाश कर देता है।

घर में धर्मग्रंथ हो पर उसे पढ़ा न जाए तो उसपर धूल चढ़ जाती है;घर की समय पर मरम्मत न की जाए तो वह जर्जर हो जाता है; उसी तरह आलसी का शरीर गन्दा और बेकार हो जाता है।

अपवित्र आचरण मनुष्य को कलुषित करते हैं; कृपणता से दान कलुषित होता है; उसी तरह पापकर्म न केवल इस जन्म को, अपितु आने वाले कई जन्मों के कलुषित कर देते हैं।

किन्तु मलों में सब से भयानक है अविद्या का मल। बिना अविद्या से मुक्ति पाए मनुष्य न तो अपने शरीर को, न मन को निर्मल बना सकता है।

कौए की तरह निर्लज्ज, दुस्साहसी, ढीठ होना, दूसरों को चोट पहुँचाकर भी खेद न करना सुकर है।

विनम्र होना दूसरों का आदर करना, अनासक्त होना, अपना आचरण पवित्र रखना तथा निर्मल प्रज्ञायुक्त होना दुष्कर है।

दूसरों की भूलें निकालना आसान है, किन्तु अपनी भूलें मान लेना बहुत कठिन है। मनुष्य बिना सोचे-विचारे दूसरों की भूलों को इधर-उधर

कहता फिरता है, किन्तु अपनी भूलों को इस प्रकार छुपाता है जैसे कोई जुआरी अतिरिक्त पासे को।

आकाश में पक्षी, धुएँ या आँधी का कोई निशान नहीं बनता; गलत उपदेश निर्वाण की ओर नहीं ले जाता; इस संसार में कुछ भी नित्य और स्थिर नहीं। लेकिन निर्वाण-प्राप्त मनुष्य का मन कभी अस्थिर और विक्षुब्ध नहीं होता।

6. जैसे गढ़पति अपने दुर्ग-द्वार की रक्षा करता है, उसी तरह बाहरी और अन्दरूनी संकटों से मन की रक्षा करनी चाहिए; एक क्षण भी मन को असुरक्षित नहीं छोड़ना चाहिए।

मनुष्य स्वयं ही अपना स्वामी, स्वयं ही अपना आधार है, इसलिए, सब से अधिक स्वयं को नियंत्रण में रखना चाहिए।

अपने मन को संयत रखना, व्यर्थ बकवास न करना और चिंतनशील बनना सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने की दिशा में पहला कदम हैं।

सूर्य दिन में चमकता है, चंद्रमा रात को उजाला करता है, योद्धा शस्त्रास्त्रों से सज्जित होकर शोभा पाता है, शान्ति से ध्यान करनेवाला निर्वाण का अधिकारी होता है।

जो अपने पाँच इन्द्रिय-द्वारों—आँख, कान, नाक, जिह्वा और त्वचा की रखवाली नहीं कर पाता और बाह्य जगत् से आकर्षित होता रहता है, वह निर्वाण का साधक नहीं है। पाँच इन्द्रिय-द्वारों की जो कड़ी रखवाली करता

हो और अपने चित्त को संयत रखता है वही निर्वाण का सफल साधक है।

7. मन में आसक्ति हो, तो उससे मोहित होकर वस्तुओं का सही रूप दिखाई नहीं देता। आसक्ति से मुक्त होने पर ही वस्तुओं का शुद्ध स्वरूप ठीक-ठीक दिखाई देता है। आसक्तिहीन मन को सभी वस्तुएँ नई ओर अर्थपूर्ण प्रतीत होती हैं।

दुःख के पीछे सुख आता है, सुख के पीछे दुःख। सुख और दुःख, पाप और पुण्य के द्वन्द्व से परे होकर ही मुक्ति का लाभ हो सकता है।

अनागत भविष्य के प्रति उत्कंठित होकर चिंतित होनेवाला, अथवा बीते दिनों की छाया का पीछा करके पछतानेवाला कटे हुए सरकण्डे के समान सूखकर काँटा हो जाता है।

अतीत के बारे में शोक न करके अथवा अनागत भविष्य के प्रति उत्कंठित होकर चिन्ता न करते हुए वर्तमान को बुद्धिमानी और लगन से जीने से ही शरीर और मन दोनों स्वस्थ रहते है।

अतीत का पीछा नहीं करना चाहिए, भविष्य की प्रतीक्षा करते हुए बैठ नहीं रहना चाहिए, वर्तमान के एक-एक क्षण को सारी शक्ति जुटाकर जीना चाहिए।

अपने वर्तमान कर्त्तव्य को बिना प्रमाद के अच्छी तरह पूरा करना चाहिए; उसे कल के लिए स्थगित करना या टालना नहीं चाहिए। आज का काम आज करके ही दिन को अच्छी तरह बिताया जा सकता है।

विश्वास मनुष्य का अच्छा मित्र और प्रज्ञा मनुष्य के लिए श्रेष्ठ मार्गदर्शक है। मनुष्य को चाहिए कि वह निर्वाण के प्रकाश की कामना करता हुआ अज्ञान और दुःख के तिमिर से मुक्ति पाने का प्रयास करे।

श्रद्धा मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ धन है, सत्य के प्रति निष्ठा जीवन का सर्वश्रेष्ठ स्वाद है, पुण्य का संचय करना सर्वश्रेष्ठ कार्य है अच्छे काम करते रहना ही तन और मन के संयमित होने का प्रमाण है। यही पुण्य कर्म है।

श्रद्धा इस जीवन-यात्रा का पाथेय है, पुण्य मूल्यवान आश्रयस्थान है, प्रज्ञा दिन का प्रकाश और सम्यक्-विचार रात्रि का संरक्षण है। पवित्र जीवन जीनेवाले मनुष्य का कोई नाश नहीं कर सकता। जिसने लोभ पर विजय पा ली, वही निर्बाध मुक्त है।

कुल के भले के लिए अपने स्वार्थ का त्याग करना चाहिए, गाँव के भले के लिए कुल का स्वार्थ भूल जाना चाहिए, राष्ट्र के हित के लिए गाँव को भी भूल जाना चाहिए, और निर्वाण के लिए तो सब कुछ भूल जाना चाहिए।

सभी वस्तुएँ अनित्य, परिवर्तनशील हैं, जैसे वे उत्पन्न होती हैं वैसे ही उनका क्षय हो जाता है; जीवन-मरण के दुःख को पार करके ही चिर शांति प्राप्त होती है।

संघ

प्रथम अध्याय

संघ के कर्तव्य

1
भिक्षुओं का जीवन

1. जो आदमी मेरा शिष्य बनना चाहता है उसे परिवार का त्याग करना चाहिए, संसार का त्याग करना चाहिए, संपत्ति का त्याग करना चाहिए।

धर्म के लिए जो इस प्रकार का त्याग करता है वह मेरा उत्तराधिकारी है और प्रव्रजित श्रमण कहा जाता है।

कोई मेरे चीवर का छोर पकड़कर मेरे पदचिह्नों पका अनुसरण करे, पर यदि उसका मन लोभ से अशान्त है तो वह मुझसे दूर है। भले ही उसका रूप भिक्षु का हो, पर वह धर्म का दर्शन नहीं कर रहा; और जो धर्म का दर्शन नहीं करता वह मेरा दर्शन नहीं करता।

भले ही कोई मुझसे हज़ारों मील दूर हो, यदि उसका हृदय पवित्र और शान्त है, लोभ से मुक्त है तो वह मेरे बिल्कुल निकट है। क्योंकि वह धर्म का दर्शन कर रहा है और जो धर्म का दर्शन करता है वह मेरा दर्शन करता है।

2. प्रव्रजित शिष्यों को इन चार नियमों (आश्रयों) को अपने जीवन का आधार बनाना होगा:

पहला, चीथड़ों को जोड़कर बनाया गया चीवर पहनना; दूसरा, भिक्षा माँगकर अपना भोजन प्राप्त करना; तीसरा, पेड़ के नीचे या शिला के ऊपर, जहाँ भी रात हो जाए, आवास करना; चौथा गौमूत्र से बनी हुई दवा का ही उपयोग करना।

हाथ में भिक्षापात्र लेकर दर-दर भटकना भिखारी का जीवन है। किन्तु भिक्षु इसके लिए किसी के द्वारा बाध्य नहीं किया जाता, न वह परिस्थितियों के कारण या लालच के कारण भिक्षा माँगता है; ऐसा वह अपनी इच्छा से करता है, क्योंकि वह जानता है कि श्रद्धा का जीवन उसे जीवन की भ्रान्तियों से मुक्त करेगा, सांसारिक दु:खों से बचाएगा और निर्वाण की ओर ले जाएगा।

भिक्षु का जीवन आसान नहीं है; यदि वह लोभ और क्रोध से अपने मन को मुक्त नहीं रख सकता अथवा अपने मन या पंचेन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं रख सकता तो उसे भिक्षु नहीं बनना चाहिए।

3. जो अपने श्रमण मानता है और लोगों द्वारा पूछे जाने पर 'मैं श्रमण हूँ" ऐसा उत्तर देता है, वह नि:संशय यह भी कह सकता है:

"श्रमण के नाते जो भी करना चाहिए उसका मैं अवश्य पालन

करूँगा। इस श्रमण संज्ञा को सार्थक करनेवाले मार्ग पर आरूढ़ होकर मैं यह प्रयास करता रहूँ कि जिसने मुझे दान दिया है उसे इसका महाफल प्राप्त हो और मेरा भी प्रव्रजित होने का उद्देश्य सफल हों''

अच्छा, तो वे कौन-सी बातें हैं जो श्रमण को करनी चाहिए? उसे ही और अपत्रपा को धारण करना चाहिए; जीवन को शुद्ध रखने के लिए अपनी काया, वाचा और मन इन तीनों के आचरण पवित्र होने चाहिए; पंचेन्द्रियों के द्वारों को ठीक रखवाली करनी चाहिए; किसी क्षणिक भोगविलास के लिए अपने मन का संयम खोना नहीं चाहिए; आत्मश्लाघा और परनिन्दा नहीं करनी चाहिए; और उसे आलस्य या दीर्घ निद्रा का शिकार नहीं बनना चाहिए।

शाम को शांति से बैठकर ध्यान करने और सोने से पहले चंक्रमण के लिए उसे समय निकालना चाहिए। रात को सोते समय दाहिनी बगल से लेटकर पैर के ऊपर पैर रखकर सोना चाहिए और उस समय उसका आखिरी विचार दूसरे दिन सवेरे जल्दी वह जब उठना चाहता है उस समय के संबंध में होना चाहिए। सवेरे जल्दी उठकर उसे फिर शांति से बैठकर ध्यान करने ओर चंक्रमण करने का समय निकालना चाहिए।

दिन-भर उसे अपने मन को सतत सचेत रखकर, अपने शरीर और मन को संयमित रखना चाहिए; और इस प्रकार लोभ, क्रोध, मूढ़ता, निद्रालुता, मन की चंचलता, पश्चात्ताप, संदेह स मुक्त होकर हृदय को पवित्र करना चाहिए।

इस प्रकार चित्त को एकाग्रकर, श्रेष्ठ प्रजा का विकासकर क्लेशों से मुक्त होकर उसे केवल निर्वाण की दिशा में बढ़ते जाना चाहिए।

4. प्रव्रजित होकर भी भिक्षु यदि लोभ, क्रोध, आमर्ष, ईर्ष्या, घमंड, आत्मश्लाघा अथवा व्यापाद को नष्ट न कर पाए, उसमें रचापचा रहे तो उसकी प्रव्रज्या चीवर में लिपटे हुए दुधारी आयुध के समान है।

चीवर धारण करने मात्र से और हाथ में भिक्षा-पात्र ले लेने से भिक्षु प्रव्रजित नहीं होता। न वह सरलता से सूत्र-पाठ करने मात्र से प्रव्रजित होता है। उसका तो केवल बाह्य आकार ही श्रमण का होता है।

श्रमण का बाना धारण करके भी वह अपनी सांसारिक वासनाओं से मुक्त नहीं हो पाता। शिशु को भिक्षु के वस्त्र पहनाकर भी भिक्षु कैसे कहा जा सकेगा?

जो अपने चित्त को एकाग्र और संयत कर सकते हैं, जो प्रश्रावान हैं, सभी सांसारिक वासनाओं से मुक्त हैं और जिनका एकमात्र लक्ष्य निर्वाण प्राप्त करना है—केवल उन्हीं लोगों को सच्चा प्रव्रजित कहा जा सकता है।

भले खून सूख जाए और हड्डियाँ चूरचूर हो जाएँ तो भी सच्चा प्रव्रजित श्रमण निर्वाण-प्राप्ति के अपने लक्ष्य से विचलित नहीं होता। ऐसा

व्यक्ति अपनी सारी शक्ति लगाकर अन्त में अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेगा और इस प्रकार प्रव्रजित श्रमण के पुण्यकर्म करने की अपनी योग्यता को साबित कर दिखाएगा।

5. प्रव्रजित भिक्षु का जीवन-कार्य बुद्ध के उपदेशों के प्रकाश को फैलाना है। उसे सब को धर्मोपदेश करना चाहिए; सोए हुए लोगों की आँखें खोलनी चाहिए; मित्यादृष्टि को ठीक करना चाहिए; सम्यक्-दृष्टि प्राप्त करने में लोगों की सहायता करनी चाहिए; उसे अपनी जान खतरे में डालकर भी सर्वत्र धर्म-प्रचार के लिए जाना चाहिए।

किन्तु धर्मोपदेश करना आसान काम नहीं है; जो धर्मोपदेश की आकांक्षा करता है उसे तथागत के वस्त्र धारण करने चाहिए, तथागत के आसन पर बैठना चाहिए और तथागत के निवासस्थान में प्रवेश करना चाहिए।

तथागत की चीवर धारण करने का अर्थ है आर्जव (विनम्रता) और क्षान्ति (सहिष्णुता) धारण करना; तथागत के आसन पर बैठने का अर्थ है सब वस्तुओं को शून्य समझना; तथागत के निवासस्थान में प्रवेश करने का अर्थ है सब प्राणियों के प्रति मित्रता और करुणा की भावना रखना।

6. फिर जो बुद्ध के उपदेशों का प्रकाशन इस प्रकार करना चाहते हैं कि वह सब को स्वीकार हो, तो उन्हें चार बातों का ध्यान रखना चाहिए; पहले, उन्हें अपने खुद के आचरण का ध्यान रखना चाहिए; दूसरे लोगों को उपदेश करते समय शब्दों के चुनाव का ध्यान रखना चाहिए; तीसर उन्हें उपदेश करने के अपने हेतु और लक्ष्यसिद्धि का ध्यान रखना चाहिए और चौथे, उन्हें महाकरुणा का ध्यान रखना चाहिए।

अच्छे धर्मप्रचारक को सर्वप्रथम क्षान्ति की भूमि पर अपने पैर स्थिर रखने चाहिए; उसे विनयी होना चाहिए; उसे आत्यंतिक नहीं होना चाहिए अथवा आत्मप्रचार की इच्छा नहीं करनी चाहिए; उसे वस्तुओं की शून्यता का सतत चिंतन करना चाहिए; और उसे किसी बात से आसक्त नहीं हाना चाहिए। यदि वह इस प्रकार ध्यान रखे तो सदाचरण का पानल कर सकेगा।

दूसरे, उसे भिन्न-भिन्न मनुष्यों और परिस्थितियों से संपर्क करते समय सावधानी बरतनी चाहिए। उसे सत्ताधारी लोगों या पापकर्मियों को टालना चाहिए. उसे स्त्रियों के बचकर रहना चाहिए। वह मैत्रीभाव से लोगों से व्यवहार करे; उसे सदा ख्याल रखना चाहिए कि सभी वस्तुएँ हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न होती हैं और इस भूमिका पर खड़े होकर उसे लोगों को दोष न देना चाहिए या उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए या उनके अपकर्मों की चर्चा नहीं करनी चाहिए, अथवा उन्हें हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए।

तीसरे, उसे बुद्ध को पितृतुल्य समझकर, निर्वाण की साधना करने वाले दूसरे भिक्षुओं को अपना गुरु समझकर और सभी लोगों की ओर

महाकरुणा की दृष्टि से देखते हुए अपने मन को शांत रखना चाहिए। फिर उसे सब को समानता से उपदेश देना चाहिए।

चौथे, बुद्ध के समान ही उसे अत्यधिक मात्रा में करुणावृत्ति प्रदर्शित करके, मन मे यह कामना करनी चाहिए कि जो लोग निर्वाण की कामना करना नहीं जानते, उनके मन में धर्मश्रवण के प्रति अवश्य रुचि बढ़े और फिर अपनी इस कामना के अनुसार उसे प्रयत्न करना चाहिए

2
उपासकों का मार्ग

1. यह पहले भी समझाया जा चुका है कि बुद्ध का शिष्य बनने के लिए त्रिरत्न-बुद्ध धर्म और संघ में श्रद्धा करनी चाहिए।

अतः जो उपासक बनना चाहता है उसे बुद्ध, धर्म और संघ में अविचल श्रद्धा होनी चाहिए और धर्म में उपासक के लिए विहित शीलों का पालन करना चाहिए।

उपासक के लिए विहित पाँच शील हैं: किसी भी प्राणी की हत्या न करना; चोरी न करना, व्यभिचार न करना; असत्य भाषण न करना; नशा न करना।

उपासकों को न केवल स्वयं त्रिरत्न में विश्वास और शीलों का पालन करना चाहिए, अपितु उनका पालन करने में अन्य जनों की भी यथासंभव सहायता करनी चाहिए, विशेषकर अपने संबंधियों और मित्रों की। उनमें बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति अविचल श्रद्धा पैदा करनी चाहिए, ताकि उनपर भी बुद्ध की करुणा बरसे।

उपासकों को इस बात का सदा स्मरण रखना चाहिए कि वे इसलिए त्रिरत्न में विश्वास करते और शीलों का पालन करते हैं कि अंत में वे निर्वाण को प्राप्त कर सकें और इसलिए वासनाओं के संसार में रहते हुए भी उन्हें वासनाओं की आसक्ति से बचे रहना चाहिए।

माता-पिता से भी देर-सबेर अलग होना पड़ेगा। परिवार से भी कभी न कभी अलग होना पड़ेगा। इस संसार से भी अन्त में चल बसना होगा। जिनसे अलग होना पड़ेगा, जहाँ से चले जाना होगा उनके बंधन में न फँसकर, जिसमें प्रवेश कर कभी वियोग नहीं हो सकता उस निर्वाण की ओर हृदय को लगाना चाहिए।

2. बुद्ध का उपदेश सुनकर, गहरी श्रद्धा का अनुभव हो और वह सदा दृढ़ और अविचल रहे तो सहज ही हृदय में आनन्द स्फुरित होता है। इस अवस्था में प्रवेश करें, तो हर वस्तु प्रकाशमय दिखाई देती है, हर बात में आनन्द का अनुभव हो सकता है।

यह श्रद्धामय हृदय सदा पवित्र और मृदु, सदा सहनशील और धीर, कभी दूसरों को परेशान न करनेवाला और सदा बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिरत्न का चिंतन करनेवाला होता है। अतः उसमें आनन्द सहज ही उभर आता है और सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश दिखाई पड़ता है।

क्योंकि श्रद्धावान होने के कारण वे बुद्ध से एकात्म होते हैं और अहंभाव से मुक्त हो जाते हैं, उन्हें अपनी धन-दौलत से कोई आसक्ति नहीं होती। अतः जीवन में उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं होता और निन्दा की कोई परवाह नहीं होती।

मृत्यु का उन्हें कोई भय नहीं होता, क्योंकि उन्हें श्रद्धा होती है कि वे बृद्ध के क्षेत्र में जन्म लेंगे। क्योंकि बुद्ध के उपदेशों की सत्यता और पावनता में उनकी श्रद्धा होती है, वे बिना झिझक के निर्भय होकर लोगों के सामने अपनी श्रद्धा के संबंध में विचार प्रकट कर सकते हैं।

क्योंकि उनके हृदय सब लोगों के प्रति करुणा से परिपूर्ण होते हैं, वे उनमें भेदभाव नहीं करते, अपितु सब से समानता का व्यवहार करते हैं, क्योंकि उनका हृदय प्रिय-अप्रिय भाव से मुक्त होता है, वह शुद्ध और समदृष्टि होता है, इसलिए उत्साह से पुण्यकर्मों में जुट जाता है।

वे विपन्नावस्था में हों या संपन्नावस्था में, उनकी श्रद्धा की वृद्धि में कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि वे विनयशील हों, यदि वे बुद्ध के उपदेशों

का आदर करते हों, यदि उनके वचन और आचरण में एकता हो, यदि प्रज्ञा उनकी मार्गदर्शक हो, यदि उनका मन पर्वत के समान अविचल हो, तो वे निर्वाण के पथ पर स्थिर प्रगति करते रहेंगे।

और यदि उन्हें कठिन परिस्थितियों और दुश्चरित्र लोगों के बीच रहने के लिए बाध्य किया जाए तो भी बुद्ध में गहरी श्रद्धा होने के कारण वे उन लोगों को पुण्यकार्यों की ओर ले जा सकते हैं।

3. इसलिए हरएक को सर्वप्रथम बुद्ध के उपदेशों का श्रवण करने की कामना करनी चाहिए।

यदि कोई कह दे कि निर्वाण प्राप्त करने के लिए आग में से गुजरना होगा, तो उसे ऐसी आग में से गुजरने के लिए भी तैयार हो जाना चाहिए।

बुद्ध के नाम-श्रवण से होने वाले संतोष के लिए आग से भरे संसार में से गुजरने का मूल्य चुकाने की तैयारी होनी चाहिए।

यदि कोई बुद्ध के उपदेश का अनुसरण करना चाहता है तो उसे अहंकारी या स्वेच्छाचारी नही होना चाहिए, अपितु सब के प्रति समानरूप से सद्भावना रखनी चाहिए। जो आदर के योग्य हों उनका आदर करना चाहिए; जो सेवा के योग्य हों उनकी सेवा करनी चाहिए और सब के साथ समान कृपालुता से व्यवहार करना चाहिए।

इस प्रकार उपासकों को सबसे पहले अपने मन को साधना चाहिए और दूसरों की बातों से अस्वस्थ नहीं होना चाहिए। इस तरह उन्हें बुद्ध के उपदेश को ग्रहण करना तथा उसके अनुसार आचरण करना चाहिए और ऐसा करते समय दूसरों से ईर्ष्या नहीं करनाी चाहिए, दूसरों से प्रभावित नहीं होना चाहिए और दूसरे मार्गों पर ध्यान नहीं देना चाहिए।

जो बुद्ध के उपदेश में विश्वास नहीं करते, उनकी दृष्टि संकीर्ण होती है और इसलिए उनका मन अस्थिर रहता है। किन्तु जो बुद्ध के उपदेश में विश्वास करते हैं, उनकी यह श्रद्धा होती है कि बुद्ध की महाप्रज्ञा और महाकरुणा सब को सुलभ है, और इस श्रद्धा के कारण वे छोटी–छोटी बातों से विचलित नहीं होते।

4. जो लोग बुद्ध के उपदेश को श्रवण और ग्रहण करते हैं वे जानते हैं कि उनका जीवन अनित्य है आर उनका शरीर केवल दु:खों की समष्टि–मात्र है और सब पापों का मूल है, और इसलिए वे उससे आसक्त नहीं होते।

साथ ही, वे अपने शरीर का अच्छा ख्याल रखने में आलस्य नहीं करते, इसलिए नहीं कि वे शरीरिक उपभोगों की लालसा रखते हैं, अपितु इसलिए कि ज्ञान–प्राप्ति के लिए और दूसरों का पथप्रदर्शन करने के अपने जीवनकार्य के लिए शरीर एक आवश्यक साधन है।

यदि वे शरीर का ठीक ख्याल नहीं रखते तो वे दीर्घकाल जी नहीं

सकते। यदि वे दीर्घकाल नहीं जीते, तो न वे स्वयं धर्म का आचरण कर सकते हैं, न दूसरों को उसकी शिक्षा दे सकते हैं।

यदि मनुष्य को नदी पार करनी हो तो वह अपने बेड़े का बहुत ख्याल रखता है। यदि उसे लम्बी यात्रा पर जाना है तो वह अपने घोड़े का अच्छा ख्याल रखता है। उसी प्रकार निर्वाण-प्राप्ति की कामना करनेवालों को अपने शरीर का अच्छा ख्याल रखना चाहिए।

बुद्ध के शिष्यों को कपड़े सख्त गर्मी और सर्दी से अपने शरीर की रक्षा करने और गृह्यांग को ढँकने के लिए पहनने चाहिए, अपने शरीर को सजाने के लिए नहीं।

अन्न भी उन्हें अपने शरीर के पोषण के लिए ग्रहण करना चाहिए ताकि वे उपदेश श्रवण और ग्रहण कर सकें और उसकी शिक्षा दे सकें, किन्तु उन्हें केवल स्वाद के लिए नहीं खाना चाहिए।

इसी प्रकार घर का उपयोग भी उन्हें अपने शरीर के लिए अथवा अपने मिथ्याभिमान या झूठे गौरव के लिए नहीं करना चाहिए। निर्वाण के घर में उन्हें इसलिए रहना चाहिए कि क्लेशों के चोरों और मिथ्या उपदेशों की आँधियों से अपनी रक्षा कर सकें।

इस प्रकार सभी वस्तुओं का मूल्यांकन और उनका उपयोग केवल निर्वाण और उपदेश के लिए उनकी उपयोगिता की दृष्टि से ही करना चाहिए। स्वार्थ के लिए उन्हें अपने पास रखना या उनसे आसक्त नहीं होना चाहिए; केवल दूसरों तक उपदेश पहुँचाने की उनकी उपयोगिता के कारण उन्हें अपने पास रखना चाहिए।

इसलिए घर में परिवार के साथ रहते हुए भी उनका मन सदा उपदेश में लगा रहना चाहिए। उसे समझदार और सहानुभूति से परिवार के लोगों का ध्यान रखना चाहिए, साथ ही विभिन्न उपायों से उनके मन में श्रद्धा जाग्रत करनी चाहिए।

5. इस बौद्ध संघ के उपासक अपने माता-पिता की सेवा करने, परिवार की सेवा करने, अपनी सँभाल रखने और बुद्ध की भक्ति करने में प्रत्यनशली रहते हैं।

माता-पिता की अच्छी तरह सेवा करनी हो तो सभी प्राणियों की रक्षा और पोषण करने, सब को सुख और शान्ति प्रदान करने के उपाय करने चाहिए। पत्नी और बाल-बच्चों के साथ सुखपूर्वक रहना हो तो कामुकता और अपने ही सुख के विचार से बचे रहकर यह ख्याल रखना चाहिए कि प्रेमासक्ति के कैदखाने से एक दिन अवश्य मुक्ति पानी होगी।

पारिवारिक संगीत सुनते समय उन्हें बुद्ध के उपदेशों के मधुरतम संगीत की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वही अक्षय आनन्द का स्रोत है। उसी प्रकार घर के आश्रय में रहते हुए उन्हें बार-बार ध्यान का आश्रय भी ग्रहण करते रहना चाहिए, जिस आश्रय को ग्रहण कर विज्ञजन सभी सांसारिक झंझटों और आपदाओं से मुक्तिलाभ करते हैं।

जब कभी दूसरे को दान करना पड़े तब अपने हृदय से सभी प्रकार का लोभ हटाने की भावना रखनी चाहिए; सभा-सम्मेलनों में सम्मिलित होते समय विद्वानों का संग-साथ और बुद्धों की परिषद में प्रवेश करने की भावना रखनी चाहिए; जब भी संकटों का सामना करना पड़े तब मन को स्थिर और शांत रखना चाहिए।

बुद्ध की शरण लेते समय सभी लोगों के साथ निर्वाण–प्राप्ति की कामना करनी चाहिए।

धर्म की शरण लेते समय सभी लोगों के साथ धर्म के खजाने में गहरे उतरकर महार्णव के समान विशाल प्रज्ञा की प्राप्ति की कामना करनी चाहिए।

संघ की शरण लेते समय सभी लोगों के साथ जनता का मार्गदर्शन कर, सभी बाधाओं को दूर करने की कामना करनी चाहिए।

वस्त्र पहनते समय कुशलमूलों को प्रायश्चित्त को अपने वस्त्र बनाने की बात भूलनी नहीं चाहिए।

मल–परित्याग करतेसमय चित्त के मल–लोभ, क्रोध और मूढ़ता को त्यागने कीकामना करनी चाहिए।

उँचे पहाड़ी रास्ते को देखकर उन्हें सोचना चाहिए कि अनुत्तर सम्यक्संबोधि के मार्ग पर चढ़कर मोह के संसार के उस पार चले जाएँ। नीचे की ओर जानेवाले उतराई मार्ग को देखकर उन्हें विचार करना चाहिए कि हलके पाँवों से नीचे उतरकर गहराई में उपदेश के मर्म तक पहुँच जाएँ।

जब वे पुल को देखें, तो उपदेश के पुल बनाकर लोगों को उस पार ले चलने की कामना करें।

जब किसी दु:खी मनुष्य को देखें, तो इस अनित्य परिवर्तनशील संसार की कटुता पर विलाप करें।

जब किसी लोभासक्त मनुष्य को देखें तो इस जीवन की मोह-माया से मुक्त होकर निर्वाण-प्राप्त करने की कामना करें।

जब बहुत स्वादिष्ट भोजन मिले तब मितव्यतिता का ख्याल कर लोभ को कम कर आसक्ति से मुक्ति पाने की कामना करनी चाहिए; जब स्वादहीन भोजन मिले तो सांसारिक लोभ से सदा के लिए मुक्ति पाने की इच्छा करनी चाहिए।

ग्रीष्म की सख्त गर्मी में, क्लेशों के ताप से मुक्त होकर निर्वाण की शीतलता प्राप्त करने की इच्छा करनी चाहिए। शिशिर की असह्य सर्दी में भगवान बुद्ध की महाकरुणा की गरमाहट का ख्याल करना चाहिए।

सूत्रां का पठन करते समय सभी सूत्रों को धारणकर उन्हें न भूलने और आचरण में लाने का दृढ़ निश्चय करना चाहिए।

जब बुद्ध का ख्याल करें तब बुद्ध के समान दिव्यचक्षु पाने की इच्छा करनी चाहिए।

रात को सोते समय यह इच्छा करनी चाहए कि काया, वाचा और मन इन तीनों के व्यापारों को रोककर हृदय को शुद्ध किया जाए; सवेरे आँख खुलने पर यह कामना करें कि सब कुछ साफ नज़र आकर सभी बातें

ठीक ध्यान में आ जाएँ।

6. बौद्ध-दर्शन में विश्वास करनेवाले उपासक सभी वस्तुओं के यथार्थ रूप, अर्थात् 'शून्यता' के सिद्धान्त को जानते हैं, इसलिए वे संसार के सभी कार्यकलापों या मनुष्य-मनुष्य के बीच विभिन्न बातों को तुच्छ नहीं मानते, अपितु उनकों जैसे का तैसा स्वीकार कर उन्हें निर्वाण के लिए साधन बनाने का प्रयत्न करते हैं।

उन्हें ऐसा नहीं सोचना चाहिए कि मनुष्यों का यह जगत् भ्रान्तिपूर्ण और अर्थहीन है एवम् निर्वाण का जगत् शांतिमय और अर्थपूर्ण है। अपितु उन्हें संसार की सभी घटनाओं में निर्वाण के मार्ग का अनुभव करना चाहिए।

अविद्या के आवरण के कारण दूषित दृष्टि से देखा जाए तो यह संसार अर्थहीन और गलतियों से भरा हुआ लगेगा, किन्तु यदि उसे प्रजा की दृष्टि से स्पष्ट रूप से देखा जाए तो वह उसी रूप में निर्वाण का जगत् बन जाएगा।

वस्तुओं में अर्थहीन वस्तु और अर्थपूर्ण वस्तु इस प्रकार का भेद नहीं होता, अच्छी वस्तु और बुरी वस्तु का भेद भी नहीं होता। भेद-दृष्टि रखनेवाला मनुष्य ऐसा द्वैत पैदा करता है।

भेद-दृष्टि का त्यागकर प्रज्ञा के प्रकाश में सब कुछ देखा जाए, तो सभी वस्तुएँ उदात्त अर्थ से भरी हुई दिखाई देंगी।

7. बौद्ध-दर्शन में विश्वास करनेवाले लोग, इस प्रकार बुद्ध में श्रद्धा रखकर, उस श्रद्धापूर्ण हृदय द्वारा संसार की सभी बातों में उदात्तता का अनुभव करते हैं और फिर उसी हृदय से विनीत भाव से दूसरों की सेवा करते हैं।

अत: उन्हें अपने हृदय से सभी प्रकार का लोभ हटा देना चाहिए और विनयशीलता तथा शिष्टाचार अपनाकर दूसरों की सेवा में लगे रहना चाहिए। उनका हृदय उस धरती माता के समान होना चाहिए जो सब का पक्षपात रहित पोषण करती है, जो बिना किसी शिकायत के सेवा करती रहती है, जो सब सहती है और सतत उद्यमशील है। उन्हें सभी गरीब लोगों की सेवाकर उनके हृदय में कुशलमूलों का आरोपण करने की इच्छा रखनी चाहिए।

इस प्रकार लोगों के कंगाल मनों के प्रति दयाभाव रख, सब की वात्सल्यपूर्ण माता बनने की चाह रखनेवाला हृदय, सभी लोगों का माता-पिता के समान आदरकर अपने उदात्त श्रेष्ठ गुरु के रूप में उनकी वन्दना करने वाला हृदय भी होता है।

इसलिए बौद्धधर्म के उपासकों के प्रति चाहे हजारों लोग द्वेषभाव रखें, शत्रुता करें या उन्हें हानि पहुँचाने की इच्छा करें तो भी कोई उनका बाल बाँका नहीं कर पाएगा। महासागर में किसी भी प्रकार का विष डालें तो क्या उसके पानी को दूषित कर हानिकारक बनाया जा सकता है?

8. बौद्धधर्म के उपासकों को सिंहावलोकन करते हुए अपने इस सुख से

हर्षित और कृतज्ञ होना चाहिए कि बुद्ध पर श्रद्धा रखनेवाला उनका हृदय बुद्ध की सामर्थ्य और उनकी कृपा के कारण ही बना है।

क्लेशों के कीचड़ में तो श्रद्धा के बीज नहीं होते, किन्तु, यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि उस कीचड़ में बुद्ध की करुणा और कृपा से श्रद्धा के बीज आरोपित किए जा सकते हैं, जो प्रस्फुटित होकर हृदय को शुद्ध और पवित्र कर देते हैं और हृदय बुद्ध के प्रति श्रद्धालु हो जाता है।

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है, एरंडों के वन में सुगंधित चंदन वृक्ष कभी पनप नहीं सकता, वैसे की क्लेशों के कलुषित हृदय में बुद्ध की श्रद्धा के बीज कभी अंकुरित नहीं हो सकते।

किन्तु वास्तव में यदि क्लेशों से भरे हृदय मे आनंद का पुष्प विकसित हो रहा है, तो यह जान लेना चाहिए कि उसके मूल वहाँ नहीं, कहीं और हैं; अर्थात् उसके मूल बुद्ध के हृदय में हैं।

यदि उपासक अहंभाव से अभिभूत हो जाए, तो वह लोभ, क्रोध और मूढ़ता-भरे हृदय से दूसरों की ईर्ष्या करने, मत्सर करने, द्वेष करने और दूसरों को नुकसान पहुँचानेवाला बन जाता है। किन्तु यदि बुद्ध की ओर लौट आए तो ऊपर कहे अनुसार बुद्ध की सेवा का महान कार्य करनेवाला बन जाएगा। इसे सचमुच एक अद्‌भुत आश्चर्य ही कहना होगा।

3
जीवन का मार्गदर्शक पथ

1. यह मानना गलत है कि विपत्तियाँ पूर्व से या पश्चिम से आती है; उनका मूल तो अपने खुद के हृदय में होता है। इसलिए मन को अनियंत्रित छोड़कर बाहर से उनसे बचने के लिए प्रयास करना बड़ी भूल है।

पुराने समय से एक प्रथा चली आती है, जिसका पालन अब भी साधारण लोग करते हैं। सवेरे जल्दी उठकर वे हाथ-मुँह धोते और हाथ जोड़कर पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण, नीचे और ऊपर की छह दिशाओं की वन्दना करते हैं, और इस प्रकार संकटों के द्वारों को अवरुद्धकर दिन-भर की सुरक्षा की कामना करते हैं।

किन्तु बुद्ध के आर्यधर्म में इस प्रकार नहीं किया जाता। बुद्ध हमें सिखाते हैं कि हम सत्य ही छह दिशाओं की आदर से वन्दना करे और फिर समझदारी से पुण्यकार्य करके सभी संकटों से अपनी रक्षा करें।

छह दिशाओं के द्वारों की रखवाली करने के लिए लोगों को चार

'कर्म-क्लेशों' से छुटकारा पाना होगा, चार 'पापों के स्थानों' से बचना होगा और सम्पत्ति के विनाश के छह 'अपायमुखों' (विनाश के कारणों) को बन्द करना होगा।

चार 'कर्म-क्लेश' हैं : प्राणातिपात (हिंसा), अदत्तादान (चोरी) मृषावाद (झूठ) और काममिथ्याचार।

चार 'पापों के स्थान' हैं : लोभ, द्वेश, मोह और भय।

धन के विनाश के छह अपायमुख हैं : मादक द्रव्यों का सेवन, रात्रिविहार, समज्या (नाच-तमाशे) का सेवन, जूआ, बुरे लोगों का संग-साथ आलस्य में फँसकर कर कर्तव्यच्युत होना।

चार कर्म-क्लेशों से छूटकर, चार पाप स्थानों से बचकर, धन के विनाश के छह अपायमुखों को बन्दकर बुद्ध के शिष्य सत्य की छह दिशाओं की वन्दना करते हैं।

अब सत्य की छह दिशाएँ कौन-सी हैं? पूर्व माता-पिता की दिशा है, दक्षिण आचार्यों की दिशा है, पश्चिम पति-पत्नी की दिशा है, उत्तर मित्र-अमात्यों की दिशा है, नीचे की दिशा दास-कर्मकरों की है और ऊपर की दिशा श्रमण-ब्राह्मणों की है।

प्रथम पुत्र को पाँच प्रकार से माता-पिता की सेवा करनी चाहिए। माता-पिता का भरण-पोषण करना चाहिए, घर के काम में उनकी सहायता करनी चाहिए, कुल-वंश कायम रखना चाहिए, दायज का प्रतिपादन करना चाहिए और मृतकों का श्राद्ध करना चाहिए।

सर्वप्रथम, पूर्वी दिशा के मार्गानुसार पुत्र-पुत्री के पाँच प्रकार के कर्म करने चाहिए अपने माता-पिता का भरण-पोषण, उनक लिए श्रम, वंश की रक्षा, दायज का प्रतिपादन, और पित्रों का श्राद्ध।

बदले में माता-पिता को पुत्र-पुत्री के लिए पाँच प्रकार के कर्म करने चाहिए उन्हें पाप से बचाना, पुण्य कर्मों के लिए प्रेरित करना, शिल्प आदि की शिक्षा प्रदान करना, विवाह करवाना और यथासमय दायज का निष्पादन करना। यह पाँच बातें माता-पिता रूपी पूर्वी दिशा के मार्ग को शान्त और प्रसन्न रखती हैं।

फिर, गुरु-शिष्य के मार्गानुसार शिषय को गुरु के आगमन पर उठकर स्वागत करना चाहिए, अच्छी तरह सेवा करनी चाहिए, आज्ञापालन करना चाहिए, गुरु दक्षिणा प्रदान करनी चाहिए और आदरपूर्वक शिक्षा ग्रहण करना चाहिए।

बदले में गुरु को चाहिए कि वह शिष्य को सही आचार विचार रखते हुए मार्ग दर्शन दें, जो स्वयं सीखा है उसे सिखाएँ और शिष्य के लिए

लाभ, आदर और प्रशंसा प्राप्ति का मार्ग सुलभ करें। इस प्रकार गुरु शिष्य संम्बंध से जुड़ी दक्षिण दिशा का मार्ग शान्त और प्रसन्न रहेगा।

फिर, पति-पत्नि के सम्बन्ध से जुड़ी पश्चिम दिशानुसार, पति को पत्नी के प्रति सम्मान, भद्रता और निष्ठा से व्यवहार करना चाहिए। पत्नी को निर्णय शक्ति देते हुए उपहार भेंट करने चाहिए। पत्नी को चाहिए कि वह सभी काम सही प्रकार करे, परिवारजनों की आवश्यकताओं का ध्यान रखे, पतिव्रता हो परिवार की सम्पत्ति की रक्षा करे और परिवारिक काम-काज में दक्ष हो। इस प्रकार पश्चिमी दिशा का मार्ग शान्त और प्रसन्न रहेगा।

फिर मित्र-रूपी दिशा उत्तर दिशा की बात करें तो मित्रों के अभाव की पूर्त्ति मैत्रिपूर्ण वचन, उनके लाभ हेतु श्रम, विचारशील और सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार, और उनके प्रति सच्चाई—यह सब करना चाहिए।

कुमार्ग से मत्रों की रक्षा, कुमार्ग में पड़ने पर उनकी सम्पत्ति की रक्षा, उनकी कठिनाइयों को ध्यानपूर्वक सुनना, कठिन समय में सहायता करना और आवश्यकता पड़ने पर उनके परिवार का भरण-पोषण करना—इन सब से उत्तर दिशा का मार्ग शान्त और प्रसन्न रहेगा।

इसके बाद, मालिक और दास-रूपी निचली दिशा के मार्गानुसार मालिक को सेवकों से व्यवहार में पाँच बिंदुओं का पालन करें: सेवकों के बलानुसार काम देना, उन्हें अच्छा भोजन और पर्याप्त वेतन प्रदान

करना, उत्तम भोजन उनसे बाँटकर खाना, और उचित समय पर अवकाश देना, बदले में सेवक को मालिक की सेवा करते हुए इन बातों का पालन करना चाहिए: मालिक से पहले बिस्तर से उठना, मालिक के सो जाने के बाद सोना, ईमानदारी रखना, अपने काम में कुशल होना, और मालिक की कीर्ति को बढ़ाना। इस प्रकार निचिली दिशानुसार मालिक-सेवक के संबंध शान्त और प्रसन्न रहेंगे।

फिर, ऊपर की दिशा जो कि धर्म गुरु/श्रमणों की है–की सेवा इस प्रकार करनी चाहिए, काया (शरीर), वाचा (वचन) और मन से श्रद्धापूर्वक उनकी सेना करना, अगामन पर उनका आदर-सत्कार करना, उनकी शिक्षा को सुनना और उसका पालन करना, और उन्हें भेंट दक्षिणा देना।

बदले में गुरु/श्रमण को पाप का त्याग, पुण्य का संचय, करुणामय हृदय रखना धर्म मार्ग दिखलाना, शिक्षा को पूर्णता से सिखाना, और उन्हें शान्ति की प्राप्ति करवाना–इस प्रकार शिक्षा प्रदान करने वालों की ऊपरी दिशानुसार शान्त और दु:ख-रहित रहेगी।

छह दिशाओं की वन्दना करनेवाला मनुष्य बाहरी संकटों को रोकने के लिए ऐसा आचरण नहीं करता। वह अपने मन से पैदा होनेवाली विपत्तियों से बचाव हेतु सावधान रहने के लिए दिशाओं की वन्दना करता है।

2. मनुष्य को इस बात का विवेक करना चाहिए कि किसके साथ मित्रता करे और किसके साथ न करे।

चार तरह के लोगों से मित्रता नहीं करनी चाहिए-जो लोभी हों, बातें करने में होशियार हों, खुशामदी हों आर फुजूलखर्च हों।

चार तरह के लोगों से मित्रता करनी चाहिए-जो सहायक हों, जो सुख-दुःख दोनों के साथी हों, जो अच्छे परामर्शदाता हों तथा जो सहानुभूतिशील हों।

जो हमें अप्रामाणिक बनने या बुराई से रोकता है, हमारे पीछे हमारी चिंता करता है, विपत्ति में हमें सान्त्वना देता है, आवश्यकता पड़ने पर सहायता किए बिना नहीं रहता, गुह्य बात को गुह्य रखता है और सदा सन्मार्ग की ओर ले चलता है, ऐसे के साथ ही मित्रता करनी चाहिए।

ऐसा मित्र पाना आसान नहीं। स्वयं भी सन्मित्र बनने के लिए कठिन प्रयास करना चाहिए। भला आदमी अपने सदाचार के कारण इस संसार में सूर्य के समान चमकता है।

3. कितनी ही सेवा करने पर भी माता-पिता का ऋण चुकाया नही जा सकता। यदि कोई दाहिने कंधे पर पिता को और बाएँ कंधे पर माता को बिठाकर सौ वर्ष चलता रहे, तो भी उनके उऋण नहीं हो सकता।

और भी, यदि सौ वर्ष तक सुगंधित द्रव्यों से माता-पिता को नहलाए, हर प्रकार से उनकी भक्ति भाव से सेवा करे, अथवा माता-पिता को

राजसिंहासन पर बिठाने के लिए प्रयत्नकर संसार के सभी भोग उनके लिए सुलभ कर दे, तो भी उनके ऋण मुक्त नहीं हुआ जा सकता।

किन्तु यदि कुलपुत्र माता-पिता का मार्गदर्शन कर बुद्ध के उपदेशों के प्रति उनमें श्रद्धा पैदा करे, मिथ्याधर्म का त्यागकर सद्धर्म का अनुसरण करने के लिए प्रवृत्त करे और लोभ का त्याग कर दान में आनंद अनुभव करने के लिए प्रेरित कर सके, तो वह उनके ऋण से मुक्त हो सकेगा; अथवा यों भी कह सकते हैं कि उसने बहुत कर दिखाया।

4. परिवार एक ऐसी जगह है जहाँ हृदयों का परस्पर बहुत निकट संबंध होता है। यदि ये हृदय एक-दूसरे से प्रेम करते हैं तो वह घर पुष्प-वाटिका के समान सुन्दर बन जाता है। किन्तु यदि इन हृदयों में सुसंवाद नष्ट हो जाता है, तो तीव्र संघर्ष और झगड़े पैदा होकर वह घर नष्ट होने की नौबत आ जाती है।

ऐसे समय दूसरों को दोष देने की अपेक्षा पहले स्वयं आत्मपरीक्षण करना चाहिए, अपने दोष देखने चाहिए और सही रास्ता अपनाना चाहिए।

5. पुराने समय में एक बहुत श्रद्धावान युवक था। पिता की मृत्यु के बाद वह माँ के साथ अकेला सुख से रहता था। फिर उसने शादी की और माँ बेटा और बहू साथ रहने लगे।

आरंभ में तो वे सब सुख से मिल-जुलकर साथ रहे, किन्तु फिर छोटी छोटी गलतफहमियों के कारण सास और बहु में मनमुटाव पैदा होने लगा और वे एक-दूसरे का द्वेष करने लगीं। अन्त में बात यहाँ तक बढ़ी कि माँ युवा दम्पती को छोड़कर अकेली रहने दूसरी जगह चली गई।

सास के घर छोड़कर चले जाने के बाद, युवा दम्पती के लड़का पैदा हुआ। सास के कानों में अफवाह पड़ी की जवान बहू कहती है, "मेरी सास हमेशा मुझे परेशान करती थी; जब तक साथ रही, कोई आनन्ददायी घटना नहीं घटी, किन्तु जैसे ही घर से गई, हमारे घर में यह शुभ घटना घटी।

यह सुनकर सास भभक उठी, "इस दुनिया में सच्चाई उठ गई। पति की माँ को घर से निकाल बाहर करना शुभ घटना है, तो कहना होगा कि दुनिया उलट गई।"

फिर वह चिल्लाई, "अब हमें इस सच्चाई की अन्त्येष्टि करनी चाहिए।" और पागल औरत की तरह वह सच्चाई की अन्त्येष्टि करने के लिए श्मशान की ओर चल दी।

यह सुनकर एक देवता इन्द्रदेव उस स्त्री के सामने प्रकट हुए और उन्होंने उसे हर तरह से समझाने की कोशिश की, किन्तु व्यर्थ।

तब देवता इन्द्रदेव उससे बोले, "यदि ऐसा है तो मुझे तुम्हारे पोते और

बहू को जलाकर मार डालना होगा। क्या तुम्हें इससे संतोष होगा?''

यह सुनकर सास की आँखें खुल गईं और अपने गुस्से के लिए क्षमायाचना कर उसने बच्चे और माँ की जान बताने के लिए देवता इन्द्रदेव से प्रार्थना की। उधर जवान बहू और उसके पति को बूढ़ी माँ के प्रति किए गए अन्याय का ख्याल आ गया और वे उसे वापस लाने श्मशान घाट पहुंचे। देवता इन्द्रदेव ने बहू ओर सास में मेल-मिलाप कराया और उसके बाद वे सब एक साथ सुखी परिवार के रूप में रहने लगे।

जब तक हम स्वयं सच्चाई का त्याग नहीं करते, वह अनन्त काल तक नष्ट नहीं होती। कभी-कभी लगता है कि सच्चाई नष्ट हो गई, किन्तु वास्तव में वह कभी नष्ट नहीं होती। जब तक नष्ट हुई-सी लगती है तब अपने मन की सच्चाई खो बैठने के कारण वैसा लगता है।

विसंवादी मन अक्सर महाअनर्थ पैदा करते हैं। एक मामूली-सी गलतफहमी बड़े दुर्भाग्य का कारण बन सकती है। परिवार में इस संबंध में विशेष सावधानी बरतनी चाहिए।

6. परिवारिक जीवन में, रोज का खर्च कैसे चलाया जाए, इसका भी बहुत ख्याल रखना पड़ता है। परिवार के हर व्यक्ति को परिश्रमी चींटियों और व्यस्त मधुमक्खियों के समान लगन से परिश्रम करना चाहिए। किसी को भी दूसरों के परिश्रम पर निर्भर नहीं रहना चाहिए अथवा उनके दान की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

साथ ही मनुष्य को इस प्रकार कठिन परिश्रम से कमाई हुई संपत्ति

को केवल अपनी संपत्ति नहीं मानना चाहिए। उसमें से कुछ हिस्सा दूसरों को बाँट देना चाहिए, कुछ हिस्सा आपतकाल के लिए बचा रखना चाहिए और कुछ हिस्सा समाज के लिए और धर्म के लिए खर्च करने में आनन्द का अनुभव करना चाहिए।

सदा ध्यान रखना चाहिए कि इस संसार में जिसे 'अपना' कहा जा सके ऐसी कोई वस्तु नहीं है। सब कुछ हेतु-प्रत्यय के कारण अपने पास आ जाता है और हमारा काम उसे कुछ समय के लिए केवल अपने पास रखना ही है। इसलिए हर वस्तु का उपयोग समझ-बूझकर करना चाहिए और किसी वस्तु का दुरुपयोग नहीं करना चाहिए।

7. जब राजा उदयन की रानी श्यामावती ने आनन्द को पाँच सौ चीवर दान किए तो आनन्द ने उस दान को सहर्ष ग्रहण किया।

जब राजा ने यह सुना तो आशंका हुई कि आनन्द ने कहीं लोभ का शिकार होकर तो दान ग्रहण नहीं किया। वह आनन्द के पास गया और उससे पूछा–"भन्ते, पाँच सौ चीवरों को एक साथ ग्रहण कर आप क्या करनेवाले है?"

आनन्द ने उत्तर दिया: "हे राजा, बहुत-से भिक्षुओं के चीवर फटकर चिथड़े हो गए हैं। मैं ये चीवर उनको बाँट दूँगा।"

"तो फिर फटे हुए चीवरो का क्या करेंगे?"

"हम उनकी चादरें बनाएँगे।"

"पुरानी चादरों का क्या करेंगे?"

"उनसे हम तकियों के गिलाफ बनाएँगे।"

पुराने गिलाफों का क्या करेंगें?"

"उनको फश पर बिछाने के लिए काम में लाएँगे।"

"पुराने बिछायतों का आप क्या करेंगे?"

"पायंदान के लिए उनका उपयोग करेंगे?"

"पुराने पायंदाजों का क्या करेंगे?

"हम उन्हें फर्श के लिए झाड़न के रूप में काम में लेंगे।"

"पुराने झाड़नों का क्या करेंगे?"

"महाराज, हम उनके टुकड़े-टुकड़े करेंगें, कीचड़ को घर की दीवारों के पलस्तर के काम में लेंगे।"

हमें सौंपी गई हर वस्तु का समझ-बूझकर ठीक उपयोग करना चाहिए, क्योंकि वह 'हमारी' नहीं हैं, कुछ समय के लिए हमें सौंपी गई धरोहर है।

8. पति-पत्नी का संबंध पारम्परिक सुविधा के लिए ही नहीं बनाया गया है। इसका दो शरीरों के एक घर में साथ रहने से कहीं अधिक महत्त्व हैं पति और पत्नी को चाहिए कि वे अपने निकट संबंध का लाभ उठाकर सद्धर्म के द्वारा अपने मनों को परिष्कृत करने में एक-दूसरे की सहायता करें।

आदर्श पति-पत्नी के रूप में जिनकी ख्याति हो चुको थी ऐसे एक बूढ़े दंपती एक बार बृद्ध के पास आए और कहने लगे, "भगवान्, हम लोग बचपन में एक-दूसरे से परिचित होकर विवाहबद्ध हुए और अब तक हमारी एक-दूसरे के प्रति निष्ठा कभी नहीं डगमगाई। कृपया बताएँ कि क्या अगले जन्म में भी हम इसी प्रकार एकनिष्ठ पति-पत्नी का जीवन व्यतीत कर पाएँगे?"

भगवान ने उन्हें उत्तर दिया, ''अगर तुम दोनों की श्रद्धा अभिन्न हो, एक ही उपदेश का ग्रहणकर, एक ही समान मन को परिष्कृतकर, एक ही समान दान-पुण्यकर प्रज्ञा का एक-सा विकास करो तो अगले जन्म में भी आज के समान एकहृदय से जी सकोगे।''

9. निर्वाण के मार्ग में स्त्री-पुरुष का भेद नहीं होता। यदि स्त्री भी निर्वाण-प्राप्ति की कामना करे तो वह 'निर्वाण की कामना करनेवाली कहलाएगी।

राजा प्रसेनजित की कन्या, अयोध्या की रानी श्रीमाला भी निर्वाण की कामना करनेवाली नारी थी। उसे भगवान के उपदेश में गहरी श्रद्धा थी, इसलिए भगवान के समक्ष उसने ये दस प्रतिज्ञाएँ कीं :

''भगवान, अब से सम्यक्संवोधि प्राप्त करने तक में (1) स्वीकृत शीलों का उलंघन नहीं करूँगी। (2) गुरुजनों का अनादर नहीं करूँगी। (3) किसी भी प्राणी प्रति मन में क्रोध की भवना पैदा नहीं होने दूँगी। (4) दूसरों के रूप या आकार और उनकी संपत्ति के प्रति ईर्ष्या नहीं करूँगी। (5) हृदय के संबंध में भी और वस्तुओं के बारे में भी मैं कभी कंजूसी नहीं करूँगी। (6) मैं अपने लिए संपत्ति का संचय नहीं करूँगी, अपितु उसका उपयोग गरीबों की सेवा करके उन्हें सुखी बनाने के लिए करूँगी। (7) दान देना, प्रियवचन बोलना, परोपकारी आचरण करना और दूसरे की परिस्थिति का ख्याल करके सोचना आदि करते हुए भी यह सब मैं अपनी खातिर नहीं करूँगी; बिशुद्ध मन से, बिना थके, निर्बाध मन से मैं प्राणियों के मन का परिष्कार करने का कार्य करती रहूँगी। (8) यदि कोई अकेला, कैद में फँसा हुआ, रोग से पीड़ित, दुःखी आदि

विविध प्रकार के कष्टों में पड़ा हुआ आदमी दिखाई दे, तो उसे उन कष्टों का कारण और नियम समझाकर शांति प्रदान करके उसके कष्ट दूर करूँगी। (9) यदि मैं मनुष्यों को जीवित प्राणियों को पकड़कर उनके साथ क्रूर व्यवहार करते देखूँ या धर्म-विनय का उल्लंघन करते देखूँ, तो दण्ड के पात्र लोगों को मैं दण्ड दूँगी, शिक्षा के योग्य लोगों को शिक्षा दूँगी और यथाशक्ति उन्हें पापकर्मों से परावृत्त करने का प्रयास करूँगी। (10) सद्धर्म का परिग्रह करके मैं कभी उसका विस्मरण नहीं होने दूँगी। जिसे सद्धर्म का विस्मरण हो जाता है, वह सर्वत्र व्यापक धर्म से च्युत हो जाता है और निर्वाण के तट पर पहुँच नहीं पाता।

''मैं फिर इन अभागे लोगों का उद्धार करने के लिए और तीन प्रतिज्ञाएँ करती हूँ :

(1) मैं इस सत्य प्रतिज्ञा के द्वारा सभी प्राणियों को शांति प्रदान करूँगी। और फिर उस कुशलमूल के कारण, कैसा भी जन्म पाकर, उस जन्म में सद्धर्म का ज्ञान प्राप्त कर लूँगी।

(2) सद्धर्म का ज्ञान प्राप्तकर मैं बिना थके या आराम किए सभी प्राणियों को उसका उपदेश करूँगी।

(3) मैं अपने शरीर, जीवन या संपत्ति का त्याग करके भी इस सद्धर्म की रक्षा करूँगी।

पारिवारिक जीवन की सार्थकता इसी में है कि उसमें निर्वाण के पथ पर आगे बढ़ने के लिए परस्पर प्रोत्साहन और सहायता दी जा सकती है।

स्त्री निर्वाण–पथ पर आगे बढ़ने का निश्चय कर श्रीमालादेवी के समान महान प्रतिज्ञाएँ कर सके तो सचमुच वह भी बुद्ध की उत्तम शिष्या बन सकेगी।

द्वितीय अध्याय

बुद्धक्षेत्र का निर्माण

1
आपस का मेलजोल

1. मान लीजिए कि एक घने अंध:कार में डूबा हुआ बंजर है, जिसमें अनेक जीव बड़ी संख्या में दिशाहीन भटक रहे हैं।

स्वाभाविक है कि वे भयभीत होंगे और जब वे एक दूसरे को पहचाने बिना रात्रि में भटकेंगे, तो वे छटपटाएँगे और अकेलापन अनुभव करेंगे। यह सचमुच एक दयनीय दृश्य है।

फिर कल्पना कीजिए कि वहाँ एक महान् व्यक्ति हाथ में मशाल लेकर प्रकट होता है और पास-पड़ोस उज्ज्वल और स्पष्ट दिखाई देने लगता है।

तब अब तक अँधेरे में छटपटाते हुए प्राणी खड़े होकर इधर-उधर देखने लगते हैं और जब उन्हें आसपास अपने जैसे ही असंख्य प्राणी दिखाई देते हैं तब आश्चर्यचकित होकर वे हर्षध्वनि करते हुए दौड़े-दौड़े एक-दूसरे के पास जाकर गले लगते हैं और ज़ोर-ज़ोर से बातें कर अपना हर्ष प्रकट करते हैं।

इस दृष्टान्त में बंजर मनुष्य-जीवन है, घने अन्धकार का अर्थ है निर्मल प्रज्ञा

की किरणों का अभाव। जिनके हृदय में प्रज्ञा की किरणें नहीं होतीं वे अकेले और भयभीत भटकते रहते हैं। वे पैदा भी अकेले होते हैं और अकेले मरते हैं। वे अपने आसपास के मनुष्यों में घुलमिलकर शांति से मिलजुलकर रहना नहीं जानते और इसीलिए निराश और भयभीत रहते हैं।

'महान व्यक्ति मशाल लेकर प्रकट हुआ' का मतलब है बुद्ध मनुष्य का रूप धारणकर, अपनी प्रज्ञा और करुणा से संसार को प्रकाशित करते हैं।

इस प्रकाश में लोग अपने-आपको तथा दूसरों को पहचान पाते हैं और उनके साथ भाईचारा और मैत्री-संबंध स्थापित करने में आनन्द का अनुभव करते हैं।

हजारों लोग समाज में एक साथ रहें किन्तु उनमें तब तक सच्चा भाईचारा नहीं होगा जब तक कि वे एक-दूसरे को न जानें और उनमें परस्पर सहानुभूति की भावना न हो।

सही समाज में उसे उज्ज्वल करनेवाली श्रद्धा और प्रज्ञा होती है। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ लोग एक-दूसरे को जानते हैं और परस्पर विश्वास करते हैं और जहाँ सामाजिक सामंजस्य होता है।

वास्तव में, सामंजस्य ही सही समाज या संगठन का प्राण होता है।

2. संगठन भी तीन प्रकार के होते हैं। पहला, उन लोगों का संगठन जो कि बड़े नेताओं की सत्ता, संपत्ति और अधिकार के आधार पर संगठित हुए हैं।

दूसरा, उन लोगों का संगठन है जो केवल अपनी-अपनी सुविधा के खातिर एकत्रित हुए हैं; और यह संगठन तब तक चलेगा जब तक कि उसके सदस्यों की सुविधाओं में बाधा न पड़े और वे आपस में लड़ने न लगें।

तीसरा, उन लोगों का संगठन है जो किसी अच्छे उपदेश को केन्द्र-बिन्दु बनाकर एकत्रित हुए हैं और सामंजस्य ही जिसका प्राण है।

वास्तव में, इन तीनों में तीसरा संगठन ही सही संगठन है, क्योंकि उसके सदस्य एक हृदय होकर रहते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एकतानता और विविध अच्छाइयाँ पनपती रहती हैं। ऐसे संगठन में सामंजस्य, संतोष और सुख विपुलता से होंगे।

और जैसे पर्वत पर हुई वर्षा बहकर छोटा-सा झरना बनती है और फिर धीरे-धीरे बड़ी नदी बनकर महासागर में प्रवेश करती है।

वैसे ही भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पले हुए लोग भी, एक ही उपदेश की वर्षा में भींगकर, एकहृदय होकर, धीरे-धीरे छोटे संगठन से बड़े समाज की ओर प्रवाहित होते हुए अन्त में निर्वाण के महासागर में विलीन हो जाते हैं।

सबके हृदय दूध और पानी के समान घुल-मिल जाते हैं और फिर वहाँ एक सुन्दर संगठन पैदा होता है।

अतः सद्धर्म ही सचमुच इस संसार में सुन्दर और सही संगठन का निर्माण करनेवाली मूलभूत शक्ति है और, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, वह लोगों को एक–दूसरे को पहचानने, एक–दूसरे के अनुकूल बनने और उनके विचारों के ऊबड़–खाबड़ स्थानों को समतल बनाने की शक्ति देनेवाला प्रकाश है।

इस प्रकार बुद्ध के उपदेशों पर आधारित संगठन को संघ कहा जा सकता है।

सभी लोगों को इन उपदेशों का पालन करना चाहिए और उनके अनुसार चित्त की साधना करनी चाहिए। इस प्रकार बृद्ध के संघ में यों तो हर किसी का समावेश होगा, किन्तु वास्तव में जिनकी धार्मिक श्रद्धा एक ही है ऐसे लोग ही उसके सदस्य होंगे।

3. बुद्ध के इस वास्तविक संघ में दो प्रकार के सदस्य होंगे : उपासकों को उपदेश करनेवाले भिक्षु और बदले में भिक्षुओं को अन्न और वस्त्र दान करनेवाले उपासक। ये दोनों मिलकर धर्म का प्रचार करेंगे और उसे स्थायी बनाएँगे।

फिर, संघ को परिपूर्ण बनाने के लिए, उसके सदस्यों में पूर्ण सामंजस्य होना चाहिए। भिक्षु उपासकों का उपदेश देते हैं और उपासक उस उपदेश को ग्रहण कर उसमें श्रद्धा करते हैं, इसलिए दोनों में सामंजस्य पैदा हो सकता है।

संघ के सदस्यों को आपस में प्रेम और भाईचारे से मिलना-जुलना चाहिए, साथी उपासकों के साथ रहने में आनन्द अनुभव करना चाहिए और दूसरों के साथ एकहृदय बनने का प्रयास करना चाहिए।

4. संघ में सामंजस्य पैदा करने में छह बातें सहायक सिद्ध होंगी। वे हैं : पहली, करुणामय वचन बोलना; दूसरी, करुणामय आचरण करना; तीसरी, करुणामय भावना रखना; चौथी, मिली हुई वस्तु आपस में बाँटना; पाँचवीं, समान पवित्र शीलों को पालन करना और छठी, परस्पर सम्यक्-दृष्टि रखना।

इनमें सम्यक्-दृष्टि केन्द्र में हैं, जो दूसरी पाँच बातों को वेष्टित करती है।

संघ की उन्नति के लिए आवश्यक सात-सात नियमों के दो समूह हैं। पहला समूह है :

(1) भिक्षुओं को बार-बार उपदश सुनने के लिए इकट्टा होना चाहिए और उनपर चर्चा करनी चाहिए।

(2) वे खुले दिल से आपस में मिलेंगे और एक-दूसरे का आदर करेंगे।

(3) वे निर्धारित भिक्षु-नियमों का आदर करेंगे और उनमें अकारण परिवर्तन नहीं करेंगे।

(4) बृद्ध और युवा सदस्य एक-दूसरे क साथ शिष्टता से व्यवहार करेंगे।

(5) अपने चित्त की रक्षा कर, सच्चाई और विनय को अपना लक्ष्य बनाएँगे।

(6) किसी शान्त स्थान में रहकर वे अपने आचरण को शुद्ध करेंगे और दूसरे आदमी को आगे रखकर और स्वयं पीछे रहकर मार्ग का अनुसरण करेंगे।

(7) सभी लोगों से प्यारकर, अतिथियों का हार्दिक आदर-सत्कार करेंगे और रोगियों की अच्छी सेवा-शुश्रूषा करेंगे।

इन सात नियमों का पालन करने से संघ की कभी हानि नहीं होगी।

दूसरा समूह है : (1) अपने चित्त की पवित्रता को बनाए रहेंगे और आवश्यकता से अधिक वस्तुओं की माँग नहों करेंगे। (2) सत्यनिष्ठा को कायम रख लोभ को हटाएँगे। (3) सहनशील होंगे और विवाद नहीं करेंगे। (4) चुप बैठेंगे और व्यर्थ बकवाद नहीं करेंगे। (5) नियमों का पालन करेंगे और उद्धत नहीं होंगे। (6) एक ही धर्म की रक्षाकर दूसरे धर्मों का अनुसरण नहीं करेंगे। (7) दैनिक जीवन में मितव्ययी होकर वस्त्र और आहार में सादगी बरतेंगे।

इन सात नियमों का पालन करने से संघ की कभी हानि नहीं होगी।

5. जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सामंजस्य ही संघ का प्राण है, सामंजस्यरहित संघ-संघ नहीं कहा जा सकता। अतः इस बात के लिए

प्रयत्नशील रहना चाहिए कि मनमुटाव पैदा न हो और यदि हो तो तुरन्त दूर किया जाए।

खून के धब्बे खून से धोए नहीं जा सकते, वैर का निराकरण वैर से कभी नहीं किया जा सकता। वैर को भूल जाने से ही उसका निराकरण हो सकता है।

6. पुराने समय में दिधीति नाम का एक राजा था। पड़ोस से युद्धप्रिय राजा ब्रह्मदत्त ने उसका राज्य छीन लिया। राजा दिधीति कुछ समय अपनी रानी और राजकुमार के साथ छिपा रहा, किन्तु शत्रुओं ने उसे पकड़ लिया। सौभाग्य से राजकुमार अकेला किसी तरह भाग गया।

राजकुमार ने अपने पिता को बचाने के लिए कुछ उपाय ढूँढने का प्रयास किया, किन्तु व्यर्थ। अपने पिता की फाँसी के दिन, राजकुमार भेस बदलकर वध-भूमि तक गया, किन्तु अश्रु बहाते हुए, अपने अभागे पिता की मृत्यु को देखने के सिवा और कुछ नहीं कर सका।

पिता ने पुत्र को भीड़ में देखा और इस तरह बुदबुदाया मानों स्वगत बोल रहा हो, ''अंगारों को मत सहेजो, जल्दबाजी न करो, वैर का शमन केवल अवैर से ही होता है।''

इसके बाद दीर्घकाल तक राजकुमार जी-जान से बदला लेने का उपाय ढूँढता रहा। आखिर अवसर पाकर उसने राजा ब्रह्मदत्त के महल में सेवक की नौकरी पा ली और देखते-देखते उसका कृपापात्र बन गया।

एक दिन जब राजा शिकार खेलने गया, तब राजकुमार ने बदला लेने का अवसर ढूँढ निकाला। वह राजा को उसकी सेना से अलगकर अकेला अपने साथ जंगल में भटकाता रहा। राजा इतना थक गया कि जिसके ऊपर उसका पूर्ण विश्वास था उस राजकुमार की गोद में सिर रखकर आराम से सो गया।

राजकुमार ने अपनी कटार निकाली और राजा के गले पर रख दी, किन्तु उसी क्षण उसे अपने पिता के अंतिम वचन याद आए और उसके बाद कई बार प्रयत्न करने पर भी वह राजा की हत्या न कर पाया। यकायक राजा की नींद खुल गई और उसने राजकुमार से कहा कि उसने एक दुःस्वप्न देखा जिसमें दिधीति राजा का पुत्र उसे मारने का प्रयत्न कर रहा था।

राजकुमार ने राजा को दबोचकर कटार घूमते हुए अपना नाम बताया और कहा कि आखिर आज पिताजी की हत्या का बदला लेने का समय आ गया है। किन्तु वह राजा का मार न सका और कटार को फेंककर उसके चरणों पर गिर पड़ा।

जब राजा ने राजकुमार की आपबीती और दिधीति राजा के अन्तिम वचन सुने तब वह बहुत ही प्रभावित हुआ और उसने राजकुमार से क्षमा माँगी। बाद में उसने राजकुमार को उसका राज्य लौटा दिया और उन दोनां के राज्यों में दीर्घकाल तक मैत्रीभाव बना रहा।

दिधीति राजा के अंतिम वचन, ''अंगारों को मत सहेजो'' का अर्थ है कि वैर को दीर्घकाल तक नहीं रखना चाहिए। और ''जल्दबाजी न करो'' का अर्थ है, मित्रता को जल्दी से तोड़ना नहीं चाहिए।

वैर का शमन वैर से नहीं होता, उसे भूल जाने से ही उसका शमन होता है।

सामंजस्य पर आधारित संघ में, हर व्यक्ति को सदा इस कथा का भाव ग्रहण करना चाहिए।

केवल संघ के सदस्यों को ही नहीं, अपितु साधारण लोगों को भी अपने दैनिक जीवन में इसका भाव ग्रहणकर उस पर आचरण करना चाहिए।

2
बुद्ध का क्षेत्र

1. जैसा कि पहले समझाया जा चुका है, यदि संघ बुद्ध के उपदेश को फैलाने का और मिलजुलकर रहने का अपना कर्त्तव्य भूल न जाए, तो वह धीरे-धीरे बढ़ता जाएगा और उसका उपदेश अधिक दूर तक फैलता जाएगा।

इसका यह अर्थ हुआ कि अधिकाधिक लोग निर्वाण की साधना करने लगेंगे और उसके कारण अविद्या और आसक्तिरूपी मार द्वारा संचालित लोभ, क्रोध और मूढ़ता की मार-सेनाएँ पीछे हटने लगेंगी और संसार में

प्रज्ञा, प्रकाश, श्रद्धा और आनन्द का राज्य स्थापित होगा।

मार का राज्य लोभ, अंधकार, संघर्ष, युद्ध, तलवारों और रक्तपात से भरा हुआ है और ईर्ष्या, द्वेष, छल, चापलूसी, उकुरसुहाती, छिपाव और गाली-गलौज से भरपूर है।

मान लीजिए कि उसी राज्य में प्रज्ञा का प्रकाश फैलता है, करुणा की वर्षा होती है, श्रद्धा मूल पकड़ने लगती है आर आनन्द के फूल विकसित होकर सुगंध फैलाने लगते हैं। तब मार का राज्य क्षण-भर में बुद्ध के क्षेत्र में परिवर्तित हो जाएगा।

जैसे मन्द शीतल पवन और घास पर खिला हुआ एक छोटा-सा फूल बसंत के आगमन की सूचना देते हैं, वैसे ही एक आदमी निर्वाण प्राप्त करे तो वानस्पतिक सृष्टि, पर्वत, नदियाँ और धरती सभी एकसाथ बुद्ध का क्षेत्र बन जाते हैं।

यदि मनुष्य का हृदय शुद्ध हो जाए, तो उसके आसपास का वातावरण भी शुद्ध हो जाता है।

2. जिस भूमि पर सद्धर्म का प्रभाव होता है, वहाँ रहनेवाले हर व्यक्ति का मन शुद्ध और शांत होता है। सचमुच, बुद्ध की करुणा सतत सभी लोगों को लाभ पहुँचाती रहती है और उसकी उज्ज्वल प्रभा उनके मन से सभी प्रकार की अशुद्धियाँ दूरकर पवित्र कर देती हैं।

पवित्र ऋजु मन ही गहन मन, निर्वाण-प्राप्ति के अनुकूल मन,

दानशील मन, शीलों का पालन करनेवाला मन, सहिष्णु मन, उत्साही मन, शांत मन, प्रज्ञावान मन, करुणामय मन और विविध उपाय कौशल्यों से लोगों को निर्वाण-प्राप्ति करानेवाला मन बन जाता है। और इसी प्रकार बुद्धक्षेत्र का शानदार निर्माण किया जाता है।

पत्नी और बच्चों के साथ रहते हुए भी गृहस्थ का वह घर बुद्ध का शानदार निवासस्थान बन जाता है, उसी प्रकार सामाजिक भेदभावों से पीड़ित देश भी भाईचारे और बंधुभाव में परिवर्तित हो जाता है।

वास्तव में लोभ के कीचड़ में फँसे हुए मनुष्य द्वारा निर्मित राजभवन में बुद्ध निवास नहीं करते। छत की दरारों में से चंद्र का प्रकाश चूता हो ऐसी छोटी-सी कुटिया भी, यदि उसका स्वामी ऋजुहृदय हो, तो बुद्ध का निवासस्थान बन सकता है।

बुद्ध के क्षेत्र का निर्माण एक ही मनुष्य के पवित्र हृदय द्वारा हुआ हो तो भी, वह एक पवित्र मन दूसरे समान श्रद्धावाले मनुष्यों को आकर्षित करता हुआ साथियों की संख्या बढ़ाता जाता है। बुद्ध के प्रति श्रद्धा व्यक्ति से परिवार, परिवार से गाँव, गाँव से नगरों, शहरों देशों और अन्त में सारे संसार में फैल जाती है।

सचमुच, धर्म के उपदेश का पालन और निष्ठा से प्रचार करना ही, बुद्ध के क्षेत्र का विस्तार करते जाना है।

3. सचमुच एक दृष्टि से देखा जाए तो यह दुनिया अपने सारे लोभ, अन्याय, और रक्तपात के कारण शैतान की दुनिया–सी लगती है, किन्तु जैसे ही लोग बुद्ध की सम्यक्संबोधि में श्रद्धा करने लगेंगे, रक्त दूध में बदल जाएगा और लोभ करुणा में और फिर वही शैतान की दुनिया बुद्ध का पवित्र क्षेत्र बन जाएगी।

एक चम्मच लेकर महासागर को खाली करना असंभव–सा लगता है। किन्तु पुनः–पुनः जन्म लेकर भी इस कार्य को पूरा करेंगे, यह बुद्ध में श्रद्धा करनेवालों के हृदय की प्रार्थना होती है।

बृद्ध उस पार खड़े प्रतीक्षा कर रहे हैं। उस पार का अर्थ है निर्वाण की दुनिया, जहाँ लोभ, क्रोध, मूढ़ता, दुःख और व्यथा नहीं होती, अपितु जहाँ केवल प्रज्ञा का प्रकाश और करुणा की वर्षा होती है।

यह भूमि दुःख और व्यथा से पीड़ित और कष्ट पानेवाले लोगों को शांति देनेवाली, शरण देनेवाली भूमि है; धर्मप्रचार से क्षणिक विराम करनेवालों के लिए विश्राम का स्थान है।

इस क्षेत्र में अपरिमित प्रभा और अनन्त जीवन है। इसका आश्रय लेने के बाद कभी भ्रान्ति के संसार में लौटना नहीं पड़ता।

सचमुच वह बुद्धक्षेत्र, जहाँ प्रज्ञारूपी पुष्प वायुमंडल को सुगंधित करते

हैं और पक्षी धर्म का गायन करते हैं, सारी मानव-जाति का अन्तिम गन्तव्य है।

4. वह सुखावती बुद्धक्षेत्र विश्रामस्थली तो है, परन्तु आरामतलबी का स्थान नहीं। वहाँ की सुगंधित पुष्पशय्याएँ आराम से सोने के लिए नहीं हैं। वह तो आराम करके तरोताजा होकर निर्वाण-प्राप्ति के बुद्ध के कार्य का आगे चलाने के लिए फिर से शक्ति और उत्साह प्राप्त करने का स्थान है।

बुद्ध के जीवनकार्य का कोई अन्त नहीं है। जब तक मनुष्य रहेंगे, जीवसृष्टि का अस्तित्व होगा और जब तक स्वार्थी और अपवित्र मन अपने-अपने जगत और परिस्थितियाँ निर्माण करते रहेंगे, तब तक बुद्ध के जीवनकार्य का अन्त नहीं होगा।

इस समय बुद्ध की सामर्थ्य से भवसागर पार करके जिन्होंने सुखावती बुद्धक्षेत्र में प्रवेश कर लिया है, वे बुद्ध के पुत्र पुनः अपने-अपने कर्मसंबंधोंवाली दुनिया में लौटेंगे और वहाँ बुद्ध के कार्य में भाग लेंगे।

एक छोटी-सी दीपशिखा, एक के बाद एक दूसरे दीपकों को निरन्तर जलाती रहेगी, वैसे ही बुद्ध के करुणामय हृदय की दीपशिखा मनुष्यों के हृदय-दीपकों को एक के बाद एक निरन्तर प्रज्वलित करती रहेगी।

बुद्ध के पुत्र भी, बुद्ध की करुणा की भावना को समझकर निर्वाण और विशुद्धीकरण के बुद्ध के कार्यभार को उठा लेते हैं और उसे अगली

पीढ़ियों को सौंप देते हैं ताकि बुद्ध के परम पवित्र क्षेत्र की शोभा और महिमा सदा के लिए और अनन्तकाल तक बनी रहे।

3
बुद्ध के क्षेत्र के आधार-स्तम्भ

1. राजा उदयन की पटरानी श्यामवती की बुद्ध के प्रति गहरी श्रद्धा थी।

वह राजमहल के अन्तःपुर में ही रहती और कहीं बाहर नहीं जाती थी, किन्तु उसकी कुब्जा दासी उत्तरा, जिसकी स्मरणशक्ति बहुत तीव्र थी, बाहर जाती और भगवान् के प्रवचन सुना करती।

लौटकर वह दासी भगवान् के वचन अक्षरशः रानी को सुनाती थी और इस कारण रानी की श्रद्धा-भक्ति गहरी होती गई।

राजा की दूसरी पत्नी मागंदिया श्यामावती से बहुत ईर्ष्या करती थी और किसी तरह उसकी हत्या करना चाहती थी। उसने श्यामावती के खिलाफ राजा के कान भरने शुरु किए और अन्त में उस पर विश्वास कर राजा ने अपनी पटरानी श्यामावती की हत्या करने की ठानो।

उसी समय श्यामावती राजा के सामने इतनी शांति से खड़ी हो गई कि राजा उसकी मैत्रीभावना से प्रभावित होकर उस पर बाण छोड़ न सका। अपने-आपको सँभालकर अविश्वास करने के लिए उसने रानी से क्षमा माँगी।

मागंदिया की ईर्ष्याग्नि और भी भड़की और उसने राजा को अनुपस्थिति

में दुष्ट को भेजकर अन्तःपुर में आग लगवा दी। रानी अचंभित न हुई, न डरी और घबराकर चिल्लानेवाली अपनी सखियों को उपदेशकर उसने सान्त्वना दी, और फिर भगवान् बुद्ध से उसने जो शिक्षा प्राप्त की थी उसके अनुसार शांति से अपने प्राण छोड़े। कुब्जा उत्तरा भी उसके साथ जलकर मर गई।

श्यामावती मैत्री-ध्यान करनेवाली उपासिकाओं में श्रेष्ठ है; बहुश्रुत उपासिकाओं में उत्तरा श्रेष्ठ है, इस प्रकार उनकी ख्याति हो गई।

2. शाक्य-वंशीय राजा महानाम को, जो कि भगवान् बुद्ध का चचेरा भाई था, बुद्ध के धर्म में गहरी श्रद्धा थी और वह उनके बहुत श्रद्धालु अनुयायियों में से था।

उस समय कोसल के बिडूडभ नाम के एक अत्याचारी राजा ने शाक्यों को जीत लिया। महानाम विडूडभ के पास गया और उसने अपनी प्रजा के प्राणों की भीख माँगी, किन्तु राजा ने उसकी बात नहीं मानी। तब महानाम न सुझाया कि जब तक वह निकट के तालाब में पानी में डूबा रहे तब तक राजा जितने कैदी भाग सकें उन्हें भाग जाने दे।

राजा ने यह सोचकर इसे स्वीकार कर लिया कि वह तो बहुत ही थोड़ी देर पानी के नीचे रह सकेगा।

जैसे ही महानाम ने पानी में डुबकी लगाई, गढ़ के दरवाजे खोल दिए गए और लोग जान लेकर बाहर भागने लगे। किन्तु महानाम बाहर निकला ही नहीं। उसने तालाब के अन्दर अपने केश खोलकर बेंत की जड़ से बांध दिए और अपना बलिदान देकर लोगों की जान बचाई।

3. ऋद्धिमती भिक्षुश्राविकाओं में उत्पलवर्णा श्रेष्ठ थी और माद्गल्यायन से उसकी तुलना की जाती थी। वह सचमुच भिक्षुणियों में सर्वश्रेष्ठ थी और उन्हें सदा अथक उपदेश करनेवाली उनकी नेता थी।

देवदत्त ने राजा अजातशत्रु को उकसाकर भगवान् के विरुद्ध विद्रोह करने का षड्यन्त्र रचा, किन्तु बाद में राजा अजातशत्रु को पछतावा हुआ और देवदत्त के साथ मैत्रीसंबंध तोड़कर वह भगवान् बुद्ध का शिष्य बन गया।

एक दिन जब देवदत्त राजा से मिलने राजदुर्ग गया, तो दरवाज़े से ही लौटा दिया गया। उस समय उसने उत्पलवर्णा को दुर्ग-द्वार से बाहर निकलते देखा। उसे बहुत गुस्सा आया, इसलिए उसने उत्पलवर्णा को पीटकर घायल कर दिया।

वह बहुत पीड़ा सहन करती हुई अपने उपाश्रय को लौटी। जब दूसरी भिक्षुणियों ने उसे सान्त्वना देना चाही तब उसने कहा : ''बहनो, मानव-जीवन अप्रत्याशित है। सभी वस्तुएँ अनित्य और अनात्म हैं।

केवल निर्वाण का विश्व शांतिमय और भरोसा करन योग्य है। आपको प्रयत्नपूर्वक और उत्साह से साधना करते रहना चाहिए।'' और वह शांति से चल बसी।

4. अंगुलिमाल नामक एक क्रूर डाकू था, जिसके हाथ कई लोगों की हत्या से रँगे थे। किन्तु भगवान् बुद्ध ने उसका उद्धार किया और वह उनका शिष्य बन गया।

एक बार वह भिक्षा के लिए नगर में गया और अपने पुराने पाप–कर्मों के करण उसे बहुत कष्ट और दु:ख भोगना पड़ा।

गाँववाले उस पर टूट पड़े और उसे बुरी तरह पीटा, किन्तु वह खून से लथपथ भगवान् के पास लौट गया और अपने पुराने क्रूर कर्मों का फल भुगतने का अवसर पाने के लिए भगवान के चरणों पर गिरकर उन्हें धन्यवाद दिया।

उसने कहा, ''भगवान, मेरा पहले का नाम 'अहिंसक' था, किन्तु अपने अज्ञान के कारण मैंने बहुत लोगों की जानें लीं और हर एक की अंगुली काटकर उनकी माला बनाकर पहनने लगा, इसलिए मेरा नाम अंगुलिमाल पड़ गया।

''अब तो त्रिरत्न की शरण लेकर मैंने निर्वाण की प्रज्ञा प्राप्त कर ली है। घोड़े या बैल का दमन करने के लिए कोड़े या रस्सी का उपयोग करना पड़ता है, किन्तु भगवान ने बिना कोड़े, रस्सी या अंकुश के मेरा दमनकर मेरे हृदय को पवित्र किया है।

‘‘आज, भगवान, मैंने अपन किए का ही फल भुगता है। मैं न जीना चाहता हूँ, न मरना। मैं केवल शांति से काल की प्रतीक्षा करूँगा।’’

5. मौद्गल्यापन, सारिपुत्र के समान, भगवान बुद्ध के दो अग्रश्रावकों में से एक थे। जब तैर्थिक लोगों ने देखा कि भगवान बुद्ध के उपदेशों का निर्मल जल लोगों के पास पहुँच रहा है और वे उत्साह से उसका प्राशन कर रहे हैं, तो उनके मन में बहुत ईर्ष्या पैदा हुई और उन्होंने उनके प्रचार में तरह-तरह बाधाएँ पैदा कीं।

किन्तु कोई भी बाधा उनके व्यापक धर्मप्रचार को रोक न सकी। तब तैर्थिकों ने मौद्गल्यायन की हत्या करने का प्रयत्न किया।

दो बार वे बच गए किन्तु तीसरी बार तैर्थिकों ने उन्हें घेर लिया और वे उनके प्रहारों के शिकार हुए।

हड्डियाँ चूर-चूर हो गईं, मांस भी क्षत-विक्षत हो गया, पर मौद्गल्यायन उनके असीम अत्याचारों को सहन करते रहे, उनके निर्वाण-प्राप्त हृदय में कोई विकार नहीं आया। शांति से उन्होंने प्राण छोड़े।

अंगुत्तरनिकाय

भिक्षुओं, एक व्यक्ति ऐसा है जिसका इस संसार में जन्म बहुजन-हिताय, बहुजन-सुखाय, लोकानुकंपाय, देव-मनुष्यों के अर्थ, हित, सुख के लिए होता है कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। भिक्षुओं, वे ही वह व्यक्ति हैं।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति का इस संसार में प्रादुर्भाव कठिन है। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत् सम्यक्संबुद्ध। वे ही वह व्यक्ति हैं।

भिक्षुओं, इस संसार में देखने को दुर्लभ है एक असामान्य व्यक्ति का जन्म। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। वे ही वह व्यक्ति हैं।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति की मृत्यु पर सब को शोक करना चाहिए। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। वे ही हैं वह व्यक्ति।

भिक्षुओ, इस संसार में एक ऐसा व्यक्ति जन्म लेता है, जो अतुलनीय और अद्वितीय होता है। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत् सम्यक्संबुद्ध। वे ही हैं वह व्यक्ति।

भिक्षुओं, एक व्यक्ति का इस संसार में अविर्भाव एक महान चक्षु का, एक महान आभा का, एक महान प्रकाश का आविर्भाव है। कौन है वह व्यक्ति? वे हैं तथागत, अर्हत्, सम्यक्संबुद्ध। वे ही वह व्यक्ति हैं।

‘भगवान बुद्ध का उपदेश’
संबंधित मूल सूत्रग्रंथ

‘भगवान बुद्ध का उपदेश’ संबंधित मूल सूत्रग्रंथ

संक्षेपः– दी.नि. – दीघ निकाय
म.नि. – मज्झिम निकाय
सं.नि. – संयुक्त निकाय
अं.नि. – अंगुत्तर निकाय

बुद्ध

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
अध्याय 1			
1	2	1	विभिन्न सूत्र
	5	2	अं.नि. 3-38, सुखुमाला-सुत्त
	5	13	म.नि. 3-26, अरियपरियेसन-सुत्त
	6	1	विभिन्न मूल
	6	20	म.नि. 9-85, बोधिराजकुमार-सुत्त
	7	8	विभिन्न सूत्र
	7	11	सुत्त-निपात 3-2, पधान-सुत्त
	7	16	विभिन्न सुत्त
	8	9	विनय, महावग्ग।
	9	10	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
2	10	15	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
	11	8	परिनिब्बान-सुत्त
	13	10	परिनिब्बान-सुत्त
	13	16	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
अध्याय 2			
1	15	1	अभितायुर्ध्यान और विमलकीर्तिनिर्देश सूत्र

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	15	4	शूरंगम-सूत्र
	15	9	विमलकीर्ति-निर्देश और महापरिनिर्वाण-सूत्र
	16	6	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 16
	16	17	महायान-जातक-चित्तभूमिपरीक्षा सूत्र
	17	9	महापरिनिर्वाण-सुत्र
2	19	1	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 3
	20	1	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 4
	21	11	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 5
3	22	13	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 16
अध्याय 3			
1	25	1	अवतंसक-सूत्र 5
	26	4	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	26	9	अवतंसक-सूत्र
	26	17	सुवर्णप्रभासोत्तमराज-सूत्र 3
2	29	6	अवतंसक-सूत्र
	29	12	अवतंसक-सूत्र 34, गण्डव्यूह
	29	19	संक्षिप्त सुखावतीव्यूह-सूत्र
	29	20	अवतंसक-सूत्र
	30	5	सं.नि. 35-5
	30	8	महापरिनिर्वाण-सूत्र
3	32	7	म.नि. 8-77, महासकुलूदयी-सूत्र
	33	4	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	33	13	लंकावतार-सूत्र
	34	3	अवतंसक-सूत्र 32
	34	16	सद्धर्मपुण्डरीक-सुत्र 25
	35	1	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	35	11	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 2
	35	16	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 2

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
			धर्म
अध्याय 1			
1	38	1	विनय, महावग्ग 1-6और सं. नि. 56' 11-12, धम्मचक्रप्रवर्तन-सुत्त
	39	12	इतिवुत्तक 103
	40	5	म. नि. 2, सब्बासव-सुत्त
	40	11	बयालीस अध्यायों का सूत्र 18
	41	3	श्रीमालादेवीसिंहनाद-सूत्र
3	42	20	अवतंसक-सूत्र 22, दशभूमिक
अध्याय 2			
1	46	1	म.नि. 4-35, चूलसच्चक-सुत्त
	48	6	अं.नि. 5-49, राज-मुण्ड-सुत्त
	48	16	अं.नि. 4-185, समण-सुत्त
	49	4	अं.नि. 3-134, उप्पाद-सुत्त
2	49	11	लंकावतार-सूत्र
	49	14	अवतंसक-सूत्र 2
	50	1	अवतंसक-सूत्र 16
	50	9	अवतंसक-सूत्र 22, दशभूमिक
	51	1	लंकावतार-सूत्र
	51	5	अं.नि. 4-186, उम्मग्ग-सुत्त
	51	8	धम्मपद 1, 2, 17, 18
	52	1	सं. नि. 2, 1, 6, कामद-सुत्त
3	52	10	अवतंसक-सूत्र 16
	52	16	लंकावतार-सूत्र
	53	10	म.नि. 3-22, अलगड्डूपम-सुत्त
	54	12	लंकावतार-सूत्र
	54	16	लंकावतार-सूत्र
4	57	7	विनय, महावग्ग 1-6
	58	1	लंकावतार-सूत्र
	58	5	सं.नि. 35-200, दारुखण्ड-सूत्र

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	58	15	लंकावतार-सूत्र आदि
	59	5	म.नि. 2-18, मधुपिंडिक-सुत्त
	59	16	लंकावतार सूत्र
	60	11	लंकावतार-सूत्र
	61	11	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
	63	12	अवतंसक-सूत्र 34, गण्डव्यूह
	63	20	लंकावतार-सूत्र आदि
अध्याय 3			
1	65	1	विनय, महावग्ग 1-5
	65	13	विनय, चूलवग्ग 5-21
	66	5	शूरंगम-सूत्र
2	71	7	शूरंगम-सूत्र
	73	7	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	73	12	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 7 और शूरंगम-सूत्र
	74	7	अवतंसक-सूत्र 32
	74	11	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	74	14	ब्रह्मजाल-सूत्र
	75	2	महापरिनिर्वाण-सूत्र
3	75	20	महापरिनिर्वाण-सूा
अध्याय 4			
1	81	1	श्रीमालादेवीसिंहनाद-सूत्र
	82	7	अं.नि. 2-11
	82	12	इतिवुत्तक 93
	82	17	विनय, महावग्ग
	83	8	अं.नि. 3-68, अञ्ञातित्थिक-सुत्त
	83	21	अं.नि. 3-34 आलवक-सुत्त
	84	13	वैपुल्य-सूत्र
	84	19	विनय, महावग्ग 1-6, धम्मचक्रप्रवर्तन-सुत्त
	85	3	म. नि. 2-14, चूलदुक्खखन्ध-सुत्त

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	85	14	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	86	13	इतिवुत्तक 24
	88	9	म.नि. 6-51, कन्दरक-सुत्तन्त
2	89	5	अं.नि. 3-130
	89	14	अं.नि 3-113
3	90	7	इतिवुत्तक 100
	90	18	संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र
	91	15	महापरिनिवार्ण-सूत्र
	93	1	अं.नि 3-62
	93	13	अंनि 3, 35, देवदूत-सुत्त
	94	19	थेरीगाथा अट्ठकथा
4	95	16	सुखावतीव्यूह-सूत्र उत्तराधं
अध्याय 5			
1	102	1	सुखावतीव्यूह-सूत्र पूवाधं
	105	14	सुखावतीव्यूह-सूत्र उत्तरार्ध
	107	4	अमितायुर्ध्यान-सूत्र
2	110	15	संक्षिप्त सुखावतीव्यूह-सूत्र

साधना का मार्ग

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
अध्याय 1			
1	116	1	म.नि. 2, सब्बासव-सुत्त
	117	16	म.नि. 3-26 अरियपरियेसन-सुत्त
	118	11	सं.नि. 35-206, छपान-सुत्त
	119	10	बयालीस अध्यायों का सूत्र 41-2
	121	16	म.नि 2-19 द्वेधावितक्क-सुत्त
	122	12	धम्मपद अट्ठकथा
2	123	10	अं.नि. 3-117
	124	1	म.नि 3-21, ककचूपम-सुत्त
	127	1	म.नि. 3-23, वम्मीक-सुत्त
	128	13	जातक 4-497, मातंग-जातक
	132	3	बयालीस अध्यायों का सूत्र 9

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	132	11	बयालीस अध्यायों का सूत्र 11
	133	6	बयालीस अध्यायो का सूत्र 13
	134	2	अं.नि. 2-4, समचित्त-सुत्त
3	134	16	संयुक्तरत्नपटिक-सूत्र
	144	15	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	145	15	संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र
अध्याय 2			
1	150	1	म. नि 7-63, चूलमालुड्क्य-सुत्तन्तं
	152	9	म. नि. 3-29., महासारोपम-सुत्त
	154	1	महामाया-सूत्र
	154	12	थेरगाथा अट्ठकथा
	156	7	म.नि. 3-28, महाहत्थी-पदोपम-सुत्त
	156	21	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	157	12	अवदानशतक-सूत्र
	158	19	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	160	12	पंचविंशती-साहस्रिका-प्रज्ञापारमिता-सूत्र
	161	18	अवतंसक-सूत्र 34, गण्डव्यूह
2	163	11	अं.नि. 3-88
	164	8	अं.नि. 3-81
	164	14	अं.नि. 3-82
	165	9	परिनिब्बान-सुत्त खण्ड 2
	166	10	म.नि. 14-141, सच्चविभंग-सुत्तं
	167	13	परिनिब्बान-सुत्त खण्ड 2
	168	11	अं.नि 5-16, बल-सुत्त
	168	15	अवतसंक-सूत्र 6
	169	9	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	170	5	संयुक्तरत्नपिटक-सूत्र
	171	1	सुवर्णप्रभास-सूत्र 26
	171	14	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	172	12	थेरगाथा अट्ठकथा

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	173	7	जातक 66, पंचावुध-जातक
	174	7	इतिवुत्तक 39 और 40
	174	16	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	174	19	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	175	1	अं.नि 5-12
	175	6	परिनिब्बान-सुत्त
	175	16	शूरंगम-सूत्र
3	176	18	सं.नि. 55-21 और 22, महानाम-सुत्त
	177	16	अं.नि. 5-32, चुण्डी-सुत्त
	178	5	विमलकीर्तिनिर्देश-सूत्र
	178	11	शूरंगम-सूत्र
	178	16	सुखावतीव्यूह-सूत्र खण्ड 2
	179	1	सं.नि. 1-4-6
	179	7	अवतंसक-सूत्र 33
	180	6	अवतंसक-सूत्र 24
	180	17	सुवर्णप्रभास-सुत्र 4
	181	7	अमितायुर्ध्यान-सूत्र
	181	10	सुखावतीव्यूह-सूत्र
	181	15	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	182	8	म.नि. 2-16, चेतोखिल-सुत्त
	183	5	सुखावतीव्यूह-सूत्र खण्ड 2
4	184	1	धम्मपद
	192	1	सं.नि 1-4-6
	192	11	अं.नि.
	192	14	महापरिनिर्वाण-सूत्र

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
			संघ
अध्याय 1			
1	194	1	इतिवुत्तक 100 और म. नि. 1, 3, ायाद-सुत्त
	194	5	इतिवुत्तक 92
	195	1	विनय, महावग्ग 1-30
	195	16	म. नि. 4-39, महा-अस्सपुर-सुत्त
	197	3	म. नि. 4-40, चूल-अस्सपुर-सुत्त
	198	4	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 10
	198	9	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 10
	199	1	सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र 14
2	200	9	सं. नि. 55-37, महानाम-सुत्त
	201	1	अं.नि. 3-75
	201	6	सं.नि. 55-37, महानाम-सुत्त
	201	10	सं. नि. 55-54, गिलायनम्-सुत्त
	201	15	अवतंसक-सूत्र 22
	203	7	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	206	4	अवतंसक-सूत्र 7
	209	2	महामाया-सूत्र
	210	1	अवतंसक-सूत्र 21
	210	20	महापरिनिर्वाण-सूत्र
3	212	1	दी.नि. 31, सिंगालोवाद-सुत्त
	217	13	अं.नि. 2-4, समचित्त-सुत्त
	218	8	अं.नि. 3-31
	218	15	जातक 417, कच्चानी-जातक
	220	15	दी.नि 31, सिंगालोवाद-सुत्त
	221	5	धम्मपद अट्ठकथा।

खण्ड	पृष्ठ	पंक्ति	मूल सूत्रग्रंथ
	222	11	(बरमी टीकाएँ)
	223	5	श्रीमालादवीसिंहनाद-सूत्र
अध्याय 2			
1	226	1	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	227	17	अं.नि. 3-118, सोचेय्यन-सुत्त
	229	12	सं.नि.
	230	4	विनय, महावग्ग 10-1 और 2
	230	11	दी.नि. 16, महापरिनिब्बान-सुत्त
	231	19	विनय, महावग्ग 10-1 और 2
2	234	12	सं.नि.
	235	9	च्यूइन-क्यो-सूत्र
	235	15	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
	237	1	महापरिनिर्वाण-सूत्र
	237	15	संक्षिप्त सुखावतीव्यूह-सूत्र
	238	3	सुखावतीव्यूह-सूत्र
	238	14	विमलकीर्ति-निर्देश-सूत्र
3	239	5	धम्मपद अट्ठकथा।
	239	11	अं.नि. 34-2
	240	8	धम्मपद अट्ठकथा।
	241	5	अं नि. 5-1
	241	8	सर्वास्तिवाद संघभेदक-वस्तु 10
	242	4	म. नि. 9-86, अंगुलिमाल-सुत्त
	243	3	अं.नि. 26

परिशिष्टि

बौद्ध धर्म का संक्षिप्त इतिहास भारत से जापान तक

1. भारत

मानवजाति के आध्यात्मिक इतिहास में, वह सबसे युगप्रवर्तक शताब्दियों में से एक थी, जब भारत के मध्यदेश में 'एशिया का प्रदीप' प्रज्वलित हो उठा था; अथवा, दूसरे शब्दों में कहें तो जिस समय वहाँ महाप्रज्ञा और महाकरुणा का एक स्रोत फूट निकला, जो बाद की गई शताब्दियों तक एशियावासियों के हृदयों को तृप्त करता रहा; और आज भी कर रहा है।

गौतम बुद्ध, जो बाद में बौद्ध अनुयायियों द्वारा शाक्यमुनि अथवा 'शाक्यों के ऋषि' कहलाने लगे, गृहत्याग कर श्रमण बन गए और दक्षिण की ओर मगध के लिए चल पड़े। ऐसा माना जाता है कि ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी के मध्य में उन्होंने बोधि-वृक्ष के नीचे सम्यकुसंबोधि प्राप्त की। तब से लेकर महापरिनिर्वाण तक के पैंतालीस वर्ष वे निरन्तर प्रज्ञा और करुणा का उपदेश करते हुए भ्रमण करते रहे। परिणामस्वरूप उसी शताब्दी के अन्त तक भारत के मध्यदेश के विभिन्न राज्यों और जनपदों में बौद्ध धर्म के सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण हुआ।

मौर्य वंश के तीसरे राजा सम्राट् अशोक के काल में (शासनकाल 268-232 ई. पू.) बुद्ध के उपदेश का प्रचार सारे भारतवर्ष में हुआ और देश की सीमाएँ लाँघकर

दूर विदेशों में भी उसका प्रसार होने लगा।

मौर्य साम्राज्य भारत का पहला सार्वभौम साम्राज्य था। इसके पहले सम्राट् चन्द्रगुप्त (शासनकाल लगभग 317–293 ई.पू.) के शासनकाल में ही यह साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर, पूर्व में बंगाल के उपसागर तक, पश्चिम में हिन्दुकुश पर्वत और दक्षिण में विंध्य पर्वत के उस पार तक के विस्तृत प्रदेशों में फैल चुका था। सम्राट् अशोक ने कलिंग और दूसरे राज्यों को जीतकर इस साम्राज्य की सीमा दक्षिणापथ तक बढ़ाई।

कहा जाता है कि राजा अशोक का स्वाभाव पहले बहुत ही उग्र था, इसलिए लोग उसे चण्डाशोक कहते थे; किन्तु बाद में जब उसने कलिंग के युद्ध में भयानक जनहानि देखी तब उसके स्वभाव में पूर्ण परिवर्तन हुआ और वह बुद्ध के प्रज्ञा और करुणा के उपदेश का परम भक्त बन गया। उसके पश्चात्, एक बौद्ध धर्मानुयायी के रूप में उसने बहुत से अच्छे कार्य किए, जिनमें नीचे के दो कार्य विशेष उल्लेखनीय हैं।

पहला था प्रसिद्ध 'अशोक के शिलालेख' अर्थात् शीर्षस्तभों अथवा पालीश की गई चट्टानों पर खोदे गए बौद्ध धर्म पर आधारित प्रशासकीय आदेश, जो सम्राट् के आदेशानुसार कई स्थानों पर लगवाए गए और बुद्ध के उपदेश के प्रचार में सहायक सिद्ध हुए। दसरा, सारे भारत में बौद्ध धर्म के प्रचार के साथ–साथ, उसने अपने देश की सीमा के पार चारों दिशाओं के विभिन्न देशों में धर्मप्रचारक भेजकर प्रज्ञा और करुणा का उपदेश सम्प्रेषित किया। इसमें ध्यान देने योग्य बात यह है कई धर्मप्रचारक तो सिरिया, मिस्र, किरीन, मैसीडोनिया तथा इपिरस जैसे सुदूर देशों तक भेजे गए और इस प्रकार बौद्ध धर्म व्यापक रूप से पश्चिमी जगत में प्रचारित हुआ। साथ ही, उस समय, ताम्रपर्णीं अर्थात् श्रीलंका को भेजा गया दूत महेन्द्र 'सुन्दर लंकाद्वीप में सुन्दर उपदेश स्थापित करने' में सफल हुआ और इस प्रकार उस द्वीप में दक्षिणी बौद्ध धर्म कहे जाने वाले स्थविरवाद की नींव डाली गई।

2. महायान बौद्ध धर्म का उदय

परवर्ती बौद्धों द्वारा बार-बार 'बौद्ध धर्म की पूर्वाभिमुखता' की बात कही जाती है। किन्तु ईसा पूर्व के कई शतकों में स्पष्ट रूप से बौद्ध धर्म का मुख पश्चिम की ओर मुड़ा हुआ था। लगभग ईसवी सन् के कुछ पहले या आरंभ में बौद्ध धर्म का मुख पूर्व ओर मुड़ने लगा। किन्तु, इसकी चर्चा करने से पहले हमें बौद्ध धर्म में, जो एक महान परिवर्तन आ रहा था उसकी बात करनी होगी। वह परिवर्तन था 'महायान बौद्ध धर्म' कहलाने वाली एक 'नई लहर', जो उस समय एक विशिष्टता लिए हुए अस्तित्व में आई।

कब, कैसे और किन लोगों द्वारा इस 'नई लहर' का सूत्रपात हुआ, कोई भी अब तक इन प्रश्नों का उत्तर निश्चित रूप से दे नहीं पाया है। हम इतना ही जानते हैं कि निस्सन्देह इस प्रवृत्ति का उदभव प्रगतिवादी भिक्षुओं द्वारा चलाए गए महासांघिक निकाय की विचार-प्रणाली में से हुआ; और ईसा पूर्व पहली या दूसरी शताब्दी से लेका ईसवी सन की पहली शताब्दी तक तथाकथित महायान सूत्रों में से महत्त्व के सूत्र पहले ही विद्यमान थे, और जब उनके आधार पर नागार्जुन का उच्च दार्शनिक विचार विकसित हुआ तब बौद्ध धर्म के इतिहास के मंच पर महायान बौद्ध धर्म को अग्रिम स्थान प्राप्त होना स्वाभाविक ही था।

बौद्ध धर्म के दीर्घ इतिहास में महायान बौद्ध धर्म का योगदान बहुत महत्त्वपूर्ण रहा है। विशेष रूप से चीन और जापान के लगभग सारे इतिहास में इन देशों के बौद्ध धर्म का विकास महायान बौद्ध धर्म से ही प्रभावित है। किन्तु इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि उसमें पहले ही समस्त जनता के उद्धार का नया आदर्श सामने रखा गया था और बोधिसत्त्वों के रूप में इस आदर्श का पालन करने वाले जीवित संतों की कल्पना भी की गई थी। साथ ही साथ उन कल्पनाओं के समर्थन में महायान दार्शनिकों द्वारा आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक क्षेत्रों में प्रस्तुत किए गए बौद्धिक निर्णय भी वास्तव में भव्य थे। इस प्रकार जहाँ वह एक ओर गौतम बुद्ध के उपदेशों से जुड़ा हुआ था, दूसरी ओर उसमें प्रज्ञा और करुणा के कई नए-नए पहलू भी जोड़े गए। इस नई संवृद्धि के साथ बौद्ध धर्म में एक नया उत्साह और नई ऊर्जा पैदा हुई और वह एक महानदी के विशाल प्रवाह के समान पूर्व के देशों को समृद्ध करता रहा।

3. मध्य एशिया

चीन ने सर्वप्रथम मध्य एशिया के देशों से ही बौद्ध धर्म का परिचय प्राप्त किया। इसलिए, भारत से चीन तक बौद्ध धर्म के प्रचार के बारे में कहना हो, तो रेशम मार्ग (सिल्क रोड) के बारे में कहना आवश्यक होगा। यह मार्ग पूर्व तथा पश्चिम को जोड़ने के लिए मध्य एशिया के अनगिनत प्रदेशों में से गुजरता था और हान वंश (शासनकाल ई. पू 140–87) के वू राजा के काल में व्यापार के लिए खुल गया था। उस समय हान का साम्राज्य सुदूर पश्चिम तक फैला हुआ था; और उसके साथ लगे हुए फरगाना सग्दियाना, तुखार और पार्थिया जैसे देशों में भी विश्वविजेता सिकंदर द्वारा प्रेरित व्यापार–वृत्ति अभी भो उत्साह से क्रियाशील थी। और इन देशों से गुजरने वाले उस प्राचीन व्यापार–मार्ग पर सबसे अधिक आवाजाही चीन के रेशम व्यापार की थी, इसलिए इसका नाम रेशम मार्ग हो गया। ईसवी सन् के कुछ पहले या आरंभ में भारत और चीन ने अपने पारस्परिक सांस्कृतिक संपर्क इस व्यापार–मार्ग द्वारा ही आरंभ किए थे। इसलिए इस रेशम मार्ग को 'बौद्ध धर्म का मार्ग' भी कहा जा सकता है।

4. चीन

चीनी बौद्ध धर्म के इतिहास का आरंभ, चीनी लोगों द्वारा बौद्ध सूत्रों को स्वीकार करने तथा उनका अनुवाद करने से आरंभ होता है। इसका सबसे पुराना ग्रंथ, 'सु–शि–एर–चांग–चिंग' (बुद्ध वचनों का बयालीस खंडों वाला सूत्र) कहा जाता है, जिसका अनुवाद काश्यपमातंग तथा अन्यों द्वारा परवर्त्ती पूर्वी होने के राजा मिंग के यिंग–पिंग' काल (ई. स. 58–76) में किया गया था, किन्तु आज उसे एक संदेहात्मक दंतक था माना जाता है। प्रामाणिक अनुशीलन के अनुसार उसका श्रेय आनु–शि–काओ की है, जो लो–यांग में लगभग 148 से 171 ईसवी तक अनुवादकार्य में रत थे। इस समय से लेकर उत्तरी सुंगवंश (960–1129 ई. स.) के काल तक यह अनुवाद का कार्य लगभग एक हजार वर्ष तक अविरत चलता रहा।

प्रारंभिक काल में सूत्रों को लाने और उनका अनुवाद करने का मूल कार्य करने वालों में अधिकतर मध्य एशिया के देशों से आए भिक्षु ही थे। उदाहणार्थ, ऊपर उल्लिखित आन्-शि-काओ, पार्थिया से आए थे; कांग-सेंग-काई (धर्मवर्मन) समरकंद से आए थे और उन्होंने तीसरी शताब्दी में लो-यांग आकर 'सुखावती-ब्यूह' का अनुवाद किया था। इसके अतिरिक्त चू-फा-हू अथवा धर्मरक्ष, जो 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' के पुराने अनुवादक के रूप में प्रसिद्ध है, तुखार से आए थे और तीसरी शताब्दी के उत्तरार्ध से लेकर चौथी शताब्दी के आरंभ तक लो-यांग में रहे। और पाँचवीं शताब्दी के आरंभ में कुचा से कुमारजीव के आगमन के साथ चीन का अनुवादकार्य अपने पराकाष्ठा पर पहुँचा।

उसी काल से संस्कृत पढ़ने के लिए भिक्षु चीन से भारत की यात्रा करने लगे। ऐसे भिक्षुओं के अग्रणी थे फा-हियान (339-420 ई.)। उन्होंने सन् 399 में भारत के लिए चांग-आन छोड़ा और पंद्रह वर्ष बाद घर लौटे। भारत की यात्रा करने वाले भिक्षुओं में सबसे विख्यात थे हवेनत्सांग (युआन-च्वांग) (602-664 ई.) जो कि सन् 627 में भारत के लिए चले और सन् 645 में, उन्नीस वर्ष की दीर्घावधि के बाद, घर लौटे। उनके अतिरिक्त, इ-त्सिंग (635-713 ई.) सन् 671 में समुद्री मार्ग से भारत गए और उसी मार्ग से पचीस वर्ष बाद घर लौटे।

ये भिक्षु स्वयंप्रेरणा से संस्कृत पढ़ने के लिए भारत गए, वहाँ से असंख्य सूत्रों का चुनाव कर स्वदेश लाए और फिर उनके अनुवादकार्य में भी उन्होंने मुख्य रूप से हाथ बँटाया। विशेषत: ह्वेनत्सांग की भाषा सीखने की क्षमता अद्वितीय थी और उनके कर्मठ कार्य के कारण, चीन में सूत्रों के अनुवाद का कार्य दूसरी बार पराकाण्ठा पर पहुँचा। यही कारण है कि विद्वत् समुदाय, कुमारजीव जिनका प्रतिनिधित्व करते हैं ऐसे पुराने समय के अनुवादों को 'पुराने अनुवाद' और ह्वेनत्सांग तथा परवर्त्ती अनुवादकों की रचनाओं को 'नए अनुवाद' कहता है।

इस प्रकार अनुवादित असंख्य बौद्ध सूत्र ग्रंथों को आधार बनाकर इन आचार्यों के वैचारिक और धार्मिक क्रियाकलापों में धीरे-धीरे चीनीकरण की प्रवृत्ति दृढ़ होती गई। अनुवादों में जातीय स्वभाव, आवश्यकताएँ और आत्मविश्वास स्पष्ट रूप से प्रकट होने लगे। इस प्रारंभिक काल में उनके मन का जो झुकाव प्रज्ञापारमितासूत्रों में चर्चित 'शून्यता' की आध्यात्मिकता की ओर रहा, वह भी उसी प्रवृत्ति का आविर्भाव था। धीरे-धीरे उन्होंने तथाकथित 'हीनयान' का त्याग कर अपना ध्यान मुख्यतः 'महायान' पर हो केन्द्रित किया; यह भी उसी प्रवृत्ति का आविष्कार था। अन्ततोगत्वा यह प्रवृत्ति तेन्दाई संप्रदाय में सुस्पष्ट हुई और कहा जा सकता है कि ज़ेन सम्प्रदाय के आविर्भाव में उसकी पराकाष्ठा हुई।

चीन में तेन्दाई संप्रदाय को परिपूर्णता छठी शताब्दी के उत्तरार्ध में उसके तीसरे धर्मगुरु तेन्दाई दाइशी, चि-ई (538-597 ई.) द्वारा प्राप्त हुई। उनकी मानसिकता चीन द्वारा पैदा किए गए बौद्ध दार्शनिकों की प्रातिनिधिक मानसिकता थी; और बुद्ध के उपदेशों से संबंधित उनके 'पंचकाल-अष्टसिद्धान्त' के सटीक वर्गीकरण का उसके पश्चात् दीर्घकाल तक चीन तथा जापान के बौद्ध धर्म पर व्यापक प्रभाव रहा।

अध्ययन-अनुशीलन से पता चलता है कि जो भी सूत्र चीन में लाए गए वे रचनाकाल के क्रम का ख्याल किए बिना ही लाए गए थे और जैसे-जैसे लाए जाते रहे उनका अनुवाद भी होता रहा। इन सब सूत्रों के, जिनकी संख्या बहुत ज्यादा थी, रचनाक्रम और मूल्य को कैसे निश्चित किया जाए, यह समस्या खड़ी हो गई। उसमें भी बौद्ध धर्म की महत्ता और उसकी अपनी समझ को सुनिश्चित करने के लिए इन सूत्रों का वर्गीकरण और मूल्यांकन परमावश्यक था। इस कार्य में चीनी चिन्तन-पद्धति का योगदान इस रूप में उल्लेखनीय है कि इस प्रयास में चीनी दर्शन की प्रवृत्ति स्पष्टतः परिलक्षित होती है। उसमें भी चि-ई द्वारा किया गया वर्गीकरण सबसे व्यवस्थित और विश्वसनीय है। किन्तु बौद्ध धर्म-संबंधी आधुनिक अनुसंधान के आविर्भव के साथ इस प्रबल प्रभाव का भी अन्त हो गया।

चीनी बौद्ध धर्म के इतिहास में 'सबसे अन्त में आने वाला' संप्रदाय था जेन। कहा जाता है कि उसकी स्थापना एक विदेशी श्रमण बौधिधर्म (–528 ई.) द्वारा की गई थी। किन्तु उसके द्वारा बोया गया यह बीज, चीनी बौद्ध धर्म के सार के रूप में उसके छठे धर्मगुरु हुई–नेंग (638–713 ई.) के काल के बाद ही प्रस्फुटित हुआ। आठवीं शताब्दी के बाद चीन के इस संप्रदाय ने एक के बाद एक कई मेधावी भिक्षुओं को बाहर भेजा, जिससे कई शताब्दियों तक जेन की समृद्धि अक्षुण्ण रही।

इससे पता चलता है कि बौद्ध धर्म में एक नई विचार–पद्धति का आविर्भाव हुआ, जिसकी गहरी जड़ें चीनी लोगों के स्वभाव में थीं। स्पष्ट है कि यह बौद्ध धर्म चीनी विचार–पद्धति से रँगा हुआ बौद्ध धर्म था। फिर भी गौतम बुद्ध के उपदेश का प्रवाह, इस नई धारा के संगम से, और भी विशाल होकर पूर्व के देशों को समृद्ध करता रहा।

5. जापान

जापान में बौद्ध धर्म के इतिहास का आरंभ छठी शताब्दी में हुआ। ई. स. 538 में पोची (अथवा कुदारा, कोरिया) के राजा ने सम्राट् किन्मेइ के दरबार में एक बुद्ध की मूर्ति और सूत्रों का पट्ट भेंट करने के लिए अपना राजदूत भेजा था। इस प्रकार इस देश का पहली बार बौद्ध धर्म का परिचय मिला। इसलिए जापान में बौद्ध धर्म का इतिहासअब 1400 वर्ष से भी अधिक पुराना है।

इस दीर्घ इतिहासकाल में, हम जापानी बौद्ध धर्म के तीन केन्द्रबिन्दुओं को ध्यान में रखकर सोच सकते हैं। पहला केन्द्रबिन्दु लगभग सातबीं और आठवीं शर्ताब्दियों के बौद्ध धर्म पर रखा जा सकता है। वास्तुकला के लेकर कहा जाए तो इस काल में होर्‌यूजी मंदिर (607 ई.) और तोदाइजी मंदिर (752 ई.) का निर्माण हुआ। इस

कालखण्ड के बारे में सोचते हुए हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस काल में समस्त एशिया में सांस्कृतिक ज्वार पूरे उभार पर था। जिस समय पश्चिमी सभ्यता अंधकार के गहन गर्त में गर्क थी, पूर्वी सभ्यता विस्मयकारी ओज के साथ अनेकानेक भव्य कार्य करती जा रही थी। चीन में, मध्य एशिया में, भारत में तथा आग्नेय एशिया के देशों में भी बौद्धिक, धार्मिक एवं कलात्मक क्षेत्रों में जोरदार गतिवधियां ही रही थीं, बौद्ध धर्म, इन गतिविधियों को परस्पर जोड़ता हुआ, व्यापक मानवतावाद के ज्वार से पूर्वी जगत को प्रक्षालित कर रहा था। जापान का नव सांस्कृतिक आन्दोलन, जो शानदार होरयूजी तथा भव्य तोदाइजी मंदिरों के निर्माण और उन मंदिर संस्थानों से अनुप्राणित तथा उन पर आधारित नानाविध धार्मिक एवं कलात्मक गतिविधियों के रूप में अभिव्यक्त हो रहा था, उस युग में एशिया के विशाल क्षेत्र को व्याप्त करने वाले सांस्कृतिक उन्मेष का सुदूर पूर्व में हो रहा प्रस्फुटन ही था।

दीर्घ काल तक सभ्यता से वंचित इस देश के लोग अब एक महान सांस्कृतिक धारा से अभिसिचित होने लगे और सभ्यता का पुष्प मानों यकायक खिल उठा। वह युग जापान के लिए सौभाग्यशाली सिद्ध हुआ। और उस अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृति का मुख्य प्रेरक बौद्ध धर्म ही था। इसीलिए उस युग के मंदिर संस्कृति के केन्द्र, मन्दिरों के भिक्षु नए ज्ञान के नेता और सूत्र उदात्त विचारों के वाहक थे। परिणामस्वरूप केवल एक धर्म का ही नहीं, एक व्यापक और महान संस्कृति का विकास भी हुआ। यही थी इस देश में प्रभम प्रतिरोपित बौद्ध धर्म का वास्तविक स्वरूप।

नौवीं शताब्दी में दो महान बौद्ध आचार्य, साइचो (देन्ग्यो दाइशी, 767-822) और कूकाई (कोबो दाइशी, 774-835) प्रकट हुए और उन्होंने दो बौद्ध संप्रदायों की स्थापना की, जिनको अकसर एक साथ हेइआन बौद्ध धर्म कहा जाता है। इस तरह पहली बार विशुद्ध जपानी बौद्ध धर्म की स्थापना हुई। जिस बौद्ध धर्म के केवल सामान्त वर्ग के मनबहलाव का साधन बनने की आशंका पैदा हो गई थी, उसके साधना-पक्ष को ग्रहण कर ये आचार्य नगरों में केन्द्रित बौद्ध धर्म को पहाड़ों पर ले गए और वहाँ उन्होंने साधना के लए केन्द्रित मठों की स्थापना की। दोनों आचार्यों द्वारा क्रमशः हिएइ पर्वत और कोया पर्वत पर स्थापित तेन्दाह और शिंगोन संप्रदाय

तत्पश्चात् कामाकुरा काल तक के 300 वर्षों तक मुख्यतः सम्राट् के दरबार और कुलीन वर्ग में काफी प्रचलित रहे।

दूसरा केन्द्रबिन्दु बारहवीं-तेहरवीं शताब्दियों के बौद्ध धर्म पर रखा जा सकता है। उस काल में होनेन (1133-1212 ई.) शिनूरान (1173-1262 ई.) दोगेन (1200-1253 ई.) और निचिरेन (1222-1282 ई.) जैसे महान संत पैदा हुए। इन महान संतों के नामों का उल्लेख किए बिना जापानी बौद्ध धर्म के बारे में बात नहीं हो सकती। यहाँ प्रश्न उठता है कि इन्हीं शताब्दियों ने क्यों एक साथ ऐसे महान संतों को पैदा किया? कारण यह है कि सभी के सामने उस समय एक ही समस्या थी। क्या थी वह समस्या, बौद्ध धर्म की विशिष्ट जापानी ढंग से आत्मसात् करना ही वह समस्या थी।

यह प्रश्न भी उठ सकता है, "क्यों? क्या बौद्ध धर्म इससे बहुत पहले ही इस देश में जड़ नहीं पकड़ चुका था?" जड़ अवश्य पकड़ चुका था और इस ऐतिहासिक तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। किन्तु बौद्ध धर्म को पूर्णतः पचाने, उसे नया रूप देकर पूर्णरूपेण आत्मसात् करने, अर्थात इस प्रकार के सांस्कृतिक ग्रहण क कार्य के लिए इस देश के लोगों को कई शताब्दियों के प्रयास की आवश्यकता थी। बौद्ध धर्म को ग्रहण करने के जो प्रयास सातवीं और आठवीं शताब्दियों में आरंभ हुए उनका पूर्ण विकास बारहवी-तेरहवीं शताब्दियों के इन बौद्ध मनीषियों द्वारा किया गया और जापान की धरती में आरोपित बौद्ध धर्म का पौधा एक बारगी पल्लवित-पुष्पित हो उठा।

उसके पश्चात्, उन महान बौद्ध संतों द्वारा डाली गई नींव के आधार पर, जापानी बौद्ध धर्म, आज तक अपनी संपन्नता को टिकाए हुए है। उन महान विभूतियों के आविर्भाव के पश्चात उन शताब्दियों की उज्ज्वलता फिर कभी जापानी बौद्ध धर्म के इतिहास के प्रकट नहीं होने पाई। किन्तु उनके बाद के जापानी बौद्ध धर्म के इतिहास में भी, एक और ध्यान आकर्षित करने वाली बात है, और वह यह कि इस आधुनिक काल

में मूल बौद्ध धर्म के संबंध में पुष्कल अनुसंधान-अनुशीलन हो रहा है, जिससे इस धर्म के नये आयाम और नई व्याख्याएँ सामने आ रही हैं।

ग्रहण किए जाने के प्रारंभिक काल से ही, जापान का लगभग समूचा बौद्ध धर्म, चीनी बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण, महायान ही रहा है। विशेषतः बाहरवीं और तेरहवीं शताब्दीयों में महान बौद्ध संतों के आविर्भाव के पश्चात्, संप्रदायों के संस्थापकों को केन्द्र में रखते हुए महायान ही मुख्य धारा बना रहा है और आज भी वही स्थिति है। जापानी बौद्ध धर्म के इतिहास में मूल बौद्ध धर्म का अनुसंधान अनुशील लगभग मेइजी काल के उत्तरार्ध में प्रारंभ हुआ। परिणामस्वरूप, संप्रदाय-संस्थापकों की भक्ति के भूले हुए लोगों के सम्मुख मूल धर्म-संस्थापक गौतम बुद्ध का अस्तित्व पूरी ओजीस्वता से पुनः प्रकट हुआ और महायान के उपदेशों की केवल तोता-रटन्त करने वालों पर यह भी स्पष्ट हो गया कि बौद्ध धर्म एक व्यवस्थित सिद्धान्त और परिपुष्ट दर्शन भी है। ये नई अवस्थाएँ अभी तक विद्वत्ता के क्षेत्र तक ही सीमित रही है; जन साधारण में नया धार्मिक उत्साह पैदा करने जितनी सामर्थ्य उनमें नहीं हैं। किन्तु लगता है कि इस देश के लोगों के बौद्ध धर्म संबंधी ज्ञान में बहुत कुछ परिवर्तन हो रहा है। इस स्थिति पर प्रकाशपुंज फेंकते हुए मैं इसे तीसरा और अंतिम केन्द्रबिन्दु मानता हूँ।

बौद्ध सूत्रों के प्रसारण का इतिहास

जिसे हम बौद्ध धर्म कहते हैं वह शाक्यमुनि द्वारा उनके अपने जीवनकाल में पैतालीस वर्ष तक दिए गए उपदेशों पर आधारित धर्म है अतः शाक्यमुनि के वचन बौद्ध धर्म के मूलाधार है। इस तथ्य के बावजूद कि इस धर्म में 84,000 धर्मपर्याय हैं और संप्रदाय भी बड़ी संख्या में हैं, वे सभी शाक्यमुनि द्वारा उपदेशित सूत्रों से संबंधित हैं। जिन ग्रंथों में बुद्ध के इन उपदेशों को संग्रहित किया गया है उनको 'इस्साइक्यो' अथवा 'दाईजोक्यो' अर्थात् पवित्र सूत्रों का संपूर्ण संग्रह कहा जाता है।

शाक्यमुनि ने मानवमात्र की समानता पर विशेष जोर दिया और सभी अच्छी तरह समझ सकें ऐसी रोजमर्रा की सरल भाषा में अपना उपदेश किया था और 80 वर्ष की आयु में भी परिनिर्वाण की अंतिम घड़ी तक, एक दिन भी विश्राम किए बिना वे असंख्य लोगों के हित और सुख के लिए उपदेश करते रहे।

उनके परिनिर्वाण के बाद, शिष्यों के श्रवण किया हुआ शाक्यमुनि का उपदेश लोगों तक पहुँचाया। जो कहा गया उसे सुनने में और पुनः कहने में गलती हो सकती थी और अभिधान की गललियाँ भी संभव थीं। फिर भी शाक्यमुनि के वचनों को सही-सही और मूलरूप में प्रसारित करना और सभी लोगों को समानता से वह उपदेश सुनाने का अवसर प्राप्त हो ऐसे उपाय करना आवश्यक था। ऐसी स्थिति में शाक्यमुनि के उपदेशों को भूलों से रहित शुद्ध रूप में अगली पीढ़ी तक पहुँचाने के लिए, स्थविरों ने इकट्ठा होकर उपदेशों को व्यवस्थित रूप दिया। उसे संगीति कहते हैं। संगीति में बहुत से स्थविर भिक्षु एकत्रित होकर हरएक अपने श्रवण और कंठस्थ किए हुए उपदेश का संगायन करता था, जिसे सुनकर उसमें कोई भूल है या नहीं इस पर कई मास तक चर्चा होती थी। यह दर्शाता है कि कितने भक्तिभाव से और सावधानी से उन्होंने शाक्यमुनि के वचनों को प्रसारित करने का प्रयास किया।

इस प्रकार व्यवस्थित रूप दिए गए उपदेशों को बाद में लिपिबद्ध कराया गया। लिपिबद्ध किए गए शाक्यमुनि के उपदेशों पर कालान्तर में परवर्त्ती विद्वान भिक्षुओं

द्वारा जो टिप्पणियाँ और व्याख्याएँ लिखकर जोड़ी गईं, उन्हें 'अभिधर्म' (जापानी में 'रोनू') कहते हैं। बुद्ध के मूल उपदेश, बाद में उनमें जोड़ी गई व्याख्याएँ और विनय इन तीनों को मिलाकर 'त्रिपिटक' (जापानी में 'सोनूजो') कहते हैं।

त्रिपिटक में सूत्रपिटक (क्योज़ो), विनयटिक (रित्सुजो) और अभिधर्मपिटक (रोनूज़ो) का समावेश होता है। पिटक का अर्थ है पिटारा या वर्तन। सूत्र (क्यो) का अर्थ है बुद्ध का मूल उपदेश, विनय (रित्सु) कहते हैं संघ के लिए आवश्यक शीलों और नियमों के संग्रह को और अभिधर्म' (रोन्) है श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा लिखी गई व्याख्याओं का संग्रह।

लगभग सभी सम्प्रदायों ने अपने-अपने सूत्र संग्रह संचित किए (संस्कृत : त्रिपिटक, पालि : तिपितक) लेकिन पूर्ण संग्रह केवल पालि की घेरवाद परम्परा का है। दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के बौद्ध देशों में इस पालि सूत्र संग्रह ने महत्वपूर्ण लिखित स्रोत का काम दिया है। परंपरा के अनुसार, चीन का बौद्ध धर्म से पहली बार परिचय परवर्त्ती पूर्वी हान वंश (25-220 ई.) के राजा मिंग के शासनकाल ई. स. 67 में हुआ। किन्तु, वास्तव में, उसके चौरासी वर्ष बाद, उसी वंश के राजा हुआन के काल में, चीन में पहली बार (सन् 151) बौद्ध सूत्र लाए गए और उनका अनुवाद किया गया। चूँकि महायान तब तक भारत में स्थापित हो चुका था, घेरवाद और महायान के सूत्र चीन में बिना किसी भेद-भाव के पहुँचाए गए। उसके बाद 1700 वर्षों से भी अधिक काल तक चीनी भाषा में सूत्रों के अनुवाद का कार्य सतत चलता रहा। इस प्रकार अनुवादित सूत्रग्रंथों की संख्या 1440 विभागों में 5586 ग्रंथों तक बढ़ गई। अनुवादित सूत्रों को सुरक्षित रखने के प्रयास वेई वंश के काल से ही आरंभ हो चुके थे, किन्तु उत्तरी सुंग वंश के काल में उनके मुद्रण का कार्य आरंभ हुआ। लगभग इसी काल से चीन के श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा लिखित व्याख्याएँ बौद्ध सूत्रों के साथ जोड़ी जाने लगीं और अब इन ग्रंथों को त्रिपिटक कहना अनुचित समझा जाने लगा। सुएइ के काल में इनकों 'इस्साइक्यो' अर्थात् सभी पवित्र ग्रंथों का संपूर्ण संग्रह नाम दिया गया और तांग के काल में इन्हें 'दाइज़ोक्यो' अर्थात् सभी बौद्ध धर्मग्रथों का महान संग्रह कहा जाने लगा।

तिब्बत में बौद्ध धर्म का प्रवेश लगभग सातवीं शताब्दी में हुआ और उसके बाद नौवीं शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं शताब्दी तक लगभग 150 वर्ष बौद्ध सूत्रों के अनुवाद के प्रयास चलते रहे और उस अवधि में लगभग सभी सूत्रों का अनुवाद हो गया।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि बौद्ध सूत्रों का अनुवाद न केवल कोरियाई, जापानी, सिंघली, काम्बोजी, तुर्की और लगभग सभी प्राच्य भाषाओं में, अपितु लातीन, फ्रांसिसी, अंग्रेजी, जर्मन और इतावली भाषाओं में भी हो चुका है, यह कहने में अतिशयोक्ति न हेगी कि बुद्ध के उपदेश का कृपाप्रसाद अब विश्व के कोने-कोने में पहुँच गया है।

किन्तु वस्तुस्थिति पर विचार करें तो दिखाई देता है कि दो हज़ार वर्षों से भी अधिक के काल में कई प्रगतियाँ और परिवर्तन हुए और दूसरे अनुवादित ग्रंथों की संख्या भी दस हज़ार से अधिक होने के कारण, पूरा 'दाइज़ोक्यो' अपने पास हो तो भी उसकी सहायता से शाक्यमुनि के वचनों के सत्यार्थ को ग्रहण करना बहुत कठिन है। इसलिए यह अत्यावश्यक है कि 'दाइज़ोक्यो' में से महत्त्व के हिस्सों को चुन लिया जाए और उन्हें अपनी श्रद्धा का आधार बनाया जाए।

बौद्ध धर्म में शक्यमुनि के वचन परम आधिकारिक हैं। अत: यह बहुत आवश्यक है कि शाक्यमुनि का उपदेश हमारे वास्तविक जीवन ये अत्यंत गहरा और आत्मीयता का संबंध रखने वाला हो। यदि ऐसा न हुआ तो दस हज़ार धर्मग्रंथ भो अंत में हमारे हृदयों को आन्दोलित किए बिना ही रह जाएँगे। इसलिए जिस उपदेश को हम अपना सके, वह सरल और संक्षिप्त हो, पक्षपात रहित हो, सब का प्रतिनिधित्व करने वाला हो, फिर भी यथार्थ हो और उसकी शब्दावली हमारे दैनंदिन जीवन की परिचित शब्दावली हो।

प्रस्तुत ग्रंथ की रचना ऊपर लिखी बातों को ध्यान में रखकर बहुत सावधानी से की गई है। यह धर्मग्रंथ गत दो हज़ार वर्ष की 'दाइज़ो' की धारा को अंगीकार करता हुआ शाक्यमुनि के उपदेशों के समुद्रमंथन से पैदा हुआ है। इसे संपूर्ण ग्रंथ तो कदापि नहीं कहा जा सकता। बुद्ध के वचनों का अर्थ अपार और गहन है और उनके पुण्य इतने असीम हैं कि उनका आकलन आसानी सै नहीं हो सकता।

यही आशा की जाती है कि जैसे-जैसे भविष्य में इस ग्रंथ के संशोधित संस्करण निकलते जाएँगे, जैसा कि सोचा गया है, वैसे-वैसे इस ग्रंथ को अधिक यथार्थ और महत्वपूर्ण बनाने का प्रयास किया जाता रहेगा।

'भगवान बुद्ध का उपदेश' का इतिहास

प्रस्तुत बौद्ध धर्मग्रंथ, 7 जुलाई 1925 में भिक्षु मुआन किज़ू के मार्गदर्शन में बौद्ध धर्मग्रंथ के नए अनुवाद की प्रचारक संस्था द्वारा प्रकाशित 'बौद्ध धर्मग्रंथ का नया अनुवाद' नामक मूल जापानी संस्करण के आधार पर संपादित, संशोधित और परिवर्धित संस्करण है। पहला जापानी संस्करण डॉ. शूगाकु याम्बे एवं डॉ. चिज़ेन आकानुमा इन दो विद्वानों द्वारा, जापान के बहुत से विद्वानों के सहकार्य से, तैयार किया गया था, जिसे प्रकाशित होने में लगभग पाँच वर्ष लगे थ

यहाँ 'बौद्ध धर्म-प्रतिष्ठान' भिक्षु मुआन किज़ू आदि 'बौद्ध धर्मग्रंथ का नया अनुवाद' संपादित करने वाले सभी विद्वानों के प्रति अपनी गहरी कृतज्ञता व्यक्त करता है।

शोवा काल (1926-) में प्रचारक संस्था द्वारा 'बौद्ध धर्मग्रंथ का लोकप्रिय संस्करण' भी प्रकाशित किया गया और सारे जापान में वितरित किया गया।

जुलाई 1934 में जब अखिल-प्रशान्तक्षेत्रीय युवक-परिषद का आयोजन जापान में हुआ, उस समय उसके एक स्मारक कार्य के रूप में ऊपर उल्लिखित 'बौद्ध धर्मग्रंथ के लोकप्रिय संस्करण' का अंग्रेज़ी संस्करण 'The Teaching of Buddha' श्री डी. गोडार्ड का सहयोग प्राप्तकर, अखिल जापान बौद्ध युवक संघ द्वारा प्रकाशित किया गया। सन् 1962 में, अमेरिका में बौद्ध प्रचार के 70वें वार्षिकोत्सव के उपलक्ष्य में मित्सुयोतो कंपनी के संस्थापक श्री येहान नुमाता ने 'भगवान बुद्ध का उपदेश' के अंग्रेज़ी संस्करण को स्वयं प्रकाशित किया।

सन् 1965 में, जब श्री नुमाता ने तोक्यों में बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान की स्थापना की, तब प्रतिष्ठान के एक प्रमुख कार्य के रूप में इस धर्मग्रंथ का सारे विश्व में प्रचार करने की योजना बनाई गई।

इस योजना के अनुसार, सन 1966 में 'भगवान बुद्ध का उपदेश' का संशोधित और परिवर्धित संस्करण तैयार करने के लिए एक समिति बनाई गई। उसके सदस्य थे नश्र्रत सरंयरह केलर, प्रो. शूयू कानाओका,प्रो. ज़ेन्नो इशिगामी, प्रो. शिंको सायेकी, प्रो. कोदो मात्सुनामी तथा प्रो. ताकेमी ताकासे। प्रो. फुमिओ मासुतानी, श्री एन्. ए. वाडेल तथा श्री तोशिसुके शिमिज़ु आदि का भी सहयोग प्राप्त कर 'भगवान बुद्ध का उपदेश' के संपूर्ण संशोधित और परिवर्द्धित अंग्रेज़ी-जापानी संस्करण का आविर्भाव हुआ।

सन् 1972 में, प्रो. शूयू कानाओका, प्रो. ज़ेन्नो इशिगामी, प्रो. शोयू हानायामा, प्रो.

कान्सेइ तामुरा तथा प्रो. ताकेमी ताकासे ने कुछ मुद्रण की अशुद्धियों को सुधारकर उसका पुनस्संकरण किया।

फिर, सन् 1974 में, अंग्रज़ी संस्करण में पाई कुछ असंगत और अशुद्ध अभिव्यक्तियों की ओर जब श्री रिचर्ड के स्टाइनर द्वारा प्रतिष्ठान का ध्यान खींचा गया तब उनके मार्गदर्शन में प्रो. शोजुन् बान्दो, प्रो. कोदो मात्सुनामी, प्रो. शिंको सायेकी, प्रो. कानसई तामुरो, प्रो. दोयू तोकुनागा ओर प्रो. शोयू हानायामा (प्रधान संपादक) ने मिलकर मूल-पाठ में संशोधन किया। सन् 1978 और 1980 में विषय-वस्तु के कुछ हिस्सों के संबंध में श्री शिन्रोकु इनोउये के सुझावों पर विचार करने के लिए, फिर से ऊपर लिखित संपादकमंडल के सदस्यों के अतिरिक्त प्रो. शिगेओ कामाता तथा प्रो. यासुआकी नारा ने मिलकर ग्रंथ पर पुनर्विचार किया। उनके द्वारा किए गए संशोधनों के अनुसार 'भगवान बुद्ध का उपदेश' का अंग्रेज़ी-जापानी संस्करण वर्तमान रूप में प्रकाशित किया गया।

सन् 1980 में, यह तय किया गया कि इस ग्रंथ को जिन चार भाषाओं में (अंग्रेजी, फ्रेंच, पोर्तुगीज़ और स्पॅनिश) वह पहले उपलब्ध था उनके अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी अनुवादित कराने का समय आ गया हैं। इसलिए, प्रतिष्ठान न फिर एक बार श्री स्टाइनर से अंग्रज़ी अनुवाद का परिशोधन करने की प्रार्थना की, जिसके आधार पर जर्मन इतालवी, ग्रीक, चीनी, डच और नेपाली संस्करण तैयार किए जा सकें।

फिर सन् 1981 में, इस ग्रंथ को अधिक पठनीय बनाने के लिए, जापान और अमेरिका दोनों देशों के हाइस्कूलों के कई विद्यार्थियों को यह ग्रंथ पढ़ने के लिए कहा गया। उनके द्वारा जो हिस्से दुर्बोध बताए गए उनपर संपादक-मडल ने विचार किया और उनके अनुसार ग्रंथ में आवश्यक सुधार किए गए। भविष्य में भी इस प्रकार इस ग्रंथ में सुधार करते रहने का विचार है।

सन् 1984 में इस ग्रंथ का जापानी से हिन्दी अनुवाद डॉ. नरेश मंत्री ने किया, जिसमें आवश्यक सुधार करने का काम श्री श्यामू संन्यासी (श्यामसुन्दर जोशी) ने किया।

1978 म प्रोफेसर शिगिओ कमाता और यासुआकी नारा समिति में जुड़े फिर 2000 में संग्रह को नए सिरे से बनाया गया जिसमें प्रोफेसर जैन्नो ईशिगामी, यासुआकी नारा, कोदो मात्सुनामी, शोजुन बान्दो, कैन्नैथ तनाका, शोगो वातानाबे, योशिया योनेज़ावा, और सैन्गाकु मायेदा (कार्यकारी मुख्य सम्पादक) का योगदान रहा।

दिसम्बर, 2004

हिन्दी अनुवाद के संबंध में

इस हिन्दी अनुवाद के प्रकाशन में जो विलम्ब हुआ, उसके लिए मैं सर्वप्रथम पाठकों से क्षमायाचना करता हूँ। वास्तव में तोक्यो स्थित 'बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान' ने यह काम दो वर्ष पहले मुझे सौपा था। अतः पिछले वर्ष ही यह अनुवाद तैयार होकर प्रकाशित हो जाना चाहिए था। किन्तु कुछ व्यक्तिगत कारणों से मैं चह अनुवाद समय पर तैयार नहीं कर पाया, जिसका मुझे हार्दिक खेद है।

इस ग्रंथ का संकलन किस उद्देश्यय से, कैसे और किन विद्वानों द्वारा हुआ इस के संबंध में पूरी जानकारी इस पुस्तक के पृष्ठ 282 से 286 देखने से प्राप्त हो सकती है। इसलिए यहाँ उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है। मूल जापानी संस्करण का अंग्रेजी अनुवाद कैसे हुआ और उसमें कैसे परिवर्तन होते गए उसकी जानकारी भी उसमें है। उसके बाद विश्व की कई प्रमुख भाषाओं में इसके अनुवाद होकर प्रकाशित हो चुके हैं जहाँ तक मेरा ख्याल है, ये सब अनुवाद अंग्रेज़ी अनुवाद पर से ही हुए हैं।

जब मैंनें इस अनुवादकार्य को स्वीकार किया तब मैंने प्रतिष्ठान वालों से कहा कि मैं हिन्दी अनुवाद जहाँ तक हो सके सीधा जापानी से करना पसंद करूगा। क्योंकि अंग्रेजी में बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्द नहीं हैं, अंग्रेज़ी अनुवाद अंग्रेज़ी पाठकों की सुविधा की दृष्टि से अधिक स्पष्टीकरणात्मक हो गया है। किन्तु भारतीय भाषाओं में बौद्ध परिभाषा प्रचलित है और उसी के चीनी अनुवाद का प्रयोग जापानी में होता है। जैसे, बुद्ध के एक अभिधान 'अनुत्तर सम्यक्संबुद्ध' का अनुवाद मुज्योकाकुश्या' (जापानी उच्चारण) हुआ है। चीनी अक्षरों के अर्थ पर से उसका अंग्रेज़ी अनुवाद किया गया है 'the Perfectly Enlightened One'। अब उस पर से हिन्दी में उसका अनुवाद 'परिपूर्ण ज्ञान प्राप्त व्यक्ति' करना अशुद्ध तो नहीं, किन्तु पूर्णतया असंगत होगा। क्योंकि बुद्ध के अभिधानों में ऐसा कोई अभिधान नहीं है। बुद्ध का दूसरा सर्वपरिचित अभिधान है 'भगवान' उसका अनुवाद 'सेसोन्' हुआ है। उसका अंग्रेज़ी अनुवाद हुआ 'the World-honored One' अब उसका हिन्दी अनुवाद 'विश्ववंद्य' या 'जगद्वंद्य करना कहाँ तक ठीक होगा? ऐसे कई उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसलिए मैंने मूल जापानी को पढ़कर मूल पाली और संस्कृत सूत्र ढूँढ़कर जहाँ तक हो सके अनुवाद में बहुप्रचलित

बौद्ध पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। अनुवादकार्य में विलम्ब होने का यह भी एक कारण है। अब मुझे इसमें कितनी सफलता प्राप्त हुई है उसका निर्णय तो पाठक ही कर सकेंगे। जहाँ मुझे अंग्रेज़ी अनुवाद अच्छा लगा, वहाँ मैने उसकी सहायता भी ली है।

बड़े बड़े होटलों के कमरों में इस ग्रंथ को ईसाई 'बाइबिल' के साथ रखा जाता है। अर्थात् एक तरह से यह ग्रंथ जापानी बौद्ध विद्वानों द्वारा संकलित बौद्ध 'बाइबिल' ही है। भारतीय पाठकों को भी इस ग्रंथ के द्वारा चीनी और जापानी बौद्धों द्वारा विकसित बौद्ध धर्म का एक नया रूप देखने को मिलेगा। ऐसे महत्त्वपर्ण ग्रंथ के हिन्दी अनुवाद का कार्य मुझे सौंपा गया इसलिए मैं 'बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान' का बहुत आभारी हूँ। इस अनुवादकार्य के निमित्त मुझे बौद्ध धर्म का फिर से अध्ययन करने का अवसर भी प्राप्त हुआ है।

मेरे अनुवाद को एक हिन्दी-भाषी पाठक और आलोचक की दृष्टि से पढ़कर उसे सुधारने का कठिन कार्य मेरे परम स्नेही श्री श्यामसुंदर जोशी ने, जो कि श्यामू संन्यासी के नाम से विख्यात हैं, बहुत परिश्रमपूर्वक किया है। अनुवादशैली में कुछ सुन्दरता आई हो तो उसका श्रेय उन्हीं को है। मैं उनका बहुत कृतज्ञ हूँ।

फिर इस हिन्दी अनुवाद को जापान जैसे विदेश में हिन्दी में टाईप करना भी एक बड़ी समस्या थी। किन्तु मेरे विद्यार्थी श्री योइची युकिशिता ने अपने हिन्दी टाईपराइटर पर बहुत परिश्रमपूर्वक और सुन्दर ढंग से इसे टाईप कर दिया। मैं उनका भी बहुत आभारी हूँ

इस पुस्तक के फोटो कम्पोजिंग का कार्य पॉप्युलर प्रकाशन, बम्बई के संचालक, मेरे स्नेही, श्री सदानंद भटकल तथा अक्षरछाया, पुणे के श्री निनाद माटे ने बहुत सावधानी से और सुन्दर ढंग से किया है। उनका भी मैं बहुत आभारी हूँ।

अनुवाद में कुछ त्रुटियाँ रह गई हों तो पाठक उनकी ओर मेरा ध्यान आकर्षित करने की कृपा करें, जिससे अगले संस्करण में उसके अनुसार सुधार किया जा सके।

भारत में ही पैदा हुई इस महान विभूति का उदात्त उपदेश हम लगभग भूल गए है, भूलते जा रहे हैं। इस ग्रंथ द्वारा भारतीय मानस में वह फिर जाग्रत हो उठे तो मैं अपने परिश्रम को सार्थक समझूँगा।

–नरेश मंत्री

तोक्यो, जापान

महाशिवरात्रि, 1984

इस किताब भगवान बुद्ध का उपदेश का शुद्धिकरण अगस्त 2012 में बिक्रम जैन, माया जोशी और मैथ्यु वर्गीस की देख–रेख में किया गया।

'भगवान बुद्ध का उपदेश' की विषयानुक्रमणिका

मानवी जीवन	पृष्ठ	पंक्ति
जीवन का अर्थ	5	13
इस संसार की वास्तविक स्थिति	96	17
जीने के आदर्श मार्ग	235	15
मिथ्या जीवन-दृष्टि	44	15
यथार्थ जीवन-सिद्धान्त	41	9
अतिरेकी जीवन	57	7
मोहग्रस्त आदमी के लिए (दृष्टान्त)	127	1
मनुष्य का जीवन (दृष्टान्त)	90	18
यदि मनुष्य वासना और आसक्ति भरा जीवन जीए (दृष्टान्त)	90	7
वृद्ध, रोगी और मृत क्या शिक्षा देते हैं (कथा)	93	13
मृत्यु अनिवार्य है (कथा)	94	19
इस संसार में पाँच असंभव बातें	48	6
इस संसार में चार सत्य	48	16
भ्रान्ति ओर निर्वाण, दोनों की उत्पत्ति चित्त में ही होती है	49	11
सामान्य मनुष्य के लिए दुष्प्राप्य किन्तु प्राप्त करने पर बहुमूल्य बीस बातें	133	6

श्रद्धा	पृष्ठ	पंक्ति
श्रद्धा अग्नि है।	179	5
श्रद्धा के तीन महत्त्वपूर्ण पहलू हैं	180	17
श्रद्धा एक चमत्कार ही है	182	4
श्रद्धावान् मन निष्ठावान होता है	181	7
यथार्थ को पाना उतना ही कठिन है जितना कि अंधाों के लिए स्पर्श द्वारा हाथी के यथार्थ रूप का वर्णन करना (दुष्टान्त)	75	2
बुद्धता कहाँ होती है इसका ज्ञान सच्चे धर्मोपदेशक द्वारा हो सकता है (दृष्टान्त)	77	16
बुद्धता क्लेशों में लिपटी-ढँकी हुई होती है (दुष्टान्त)	73	12
संदेह श्रद्धा में बाधा पैदा करते हैं	182	8
बुद्ध इस संसार के पिता और सभी प्राणी उनके पुत्र हैं	35	16
बुद्ध की प्रज्ञा महासागर के समान विशाल और गहरी है	34	8
बुद्ध का हृदय परम कारुणिक है	15	1
बुद्ध की करुणा अनन्त है	16	6
बुद्ध का कोई भौतिक शरीर नहीं है	13	20
बुद्ध अपने जीवन द्वारा उपदेश करते हैं	23	13
बुद्ध लोगों की आँखे खोलने के लिए परिनिर्वाण का अभिनय करते हैं	23	13
बुद्ध उपायकौशल्य के द्वारा लोगों को दु:खों से बचाते हैं (दृष्टान्त)	19	6
,,	20	1

	पृष्ठ	पंक्ति
निर्वाण का विश्व	237	9
बुद्ध धर्म और संघ की उपासना करना	178	1
शील, ध्यान और प्रज्ञा, तीनों का अभ्यास करो	163	11
आर्य अष्टांगिक मार्ग	166	13
छह पारमिताएँ	168	15
चार सम्यक् प्रहाण	168	6
चार स्मृति-उपस्थान	167	13
निर्वाण-प्राप्ति के लिए आवश्यक पंच बल	168	11
चित्त की चार अप्रामाणिक अवस्थाएँ	171	14
चार आर्य सत्यों का ज्ञान रखने वाले	39	12
मनुष्य की मृत्यु और संसार की अनित्यता	13	1
अमिताभ बुद्ध के नाम का जप करने वाले सुखावती लोकधातु में पैदा होंगे	113	1
आत्मदीप बनो, आत्म-शरण बना	10	15

मानसिक साधना

अपने लिए सब से महत्त्वपूर्ण क्या है इस बात का ख्याल रखना (दृष्टान्त)	150	8
हर एक डग सावधानी से उठाना चाहिए	133	1
हम क्या खोज़ रहे हैं इसे भूल न जाएँ (दृष्टान्त)	152	9
किसी बात में सफलता पानी हो तो कई कठिनाइयों को सहना होगा (कथा)	158	19
बार-बार गिरने पर भी हिम्मत मत छोड़ो (कथा)	173	7
प्रतिकूल परिस्थितियों में भी मन को विचलित न होने दें (कथा)	124	1

	पृष्ठ	पंक्ति
सन्मार्ग का आचरण करने वाले मानो दीपक लेकर अंधेरे कमरे में प्रवेश करते हैं	40	11
मानवी जीवन में सर्वत्र उपदेश भरा पड़ा है (कथा)	161	18
सभी मनुष्य अपने विचारों के अनुसार आचरण करते हैं	121	16
उपदेश की कुंजी है अपने हृदय पर काबू पाना	11	13
सब से पहले अपने मन को नियंत्रित करो	212	1
यदि मन को नियंत्रित किया जाए	122	1
मन की विभिन्न अवस्थाएँ (दृष्टान्त)	118	6
मन आत्मसन्नद्ध नहीं है	46	13
मन के अधीन मत बनो	11	1
अपने मन पर विजय पाओ	154	12
हृदय के स्वामी बनो	11	18
सभी पाप चित्त, वाणी और शरीर से पैदा होते हैं	87	3
हृदय और शब्दों का संबंध	125	8
शरीर केवल एक उधार ली हुई वस्तु है (कथा)	143	5
शरीर अशुचि पदार्थों से भरा हुआ है	130	18
किसी वस्तु का लोभ न करो	11	1
काया, वाचा और मन को पवित्र रखो	123	10
प्रयत्न करते समय ठीक अनुपात का ख्याल रखो (कथा)	172	12

मानवी दुःख

मानवी दुःख मन की आसक्तियों के कारण पैदा होता है	42	20
दुःख के निवारण का उपाय	13	10

	पृष्ठ	पंक्ति
भ्रांति और अज्ञान निर्वाण के प्रवेशद्वार हैं	59	12
भ्रांति से मुक्ति पाने का मार्ग	116	1
क्लेशों की आग बुझाने पर शीतल निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है	141	18
वासना ही मोह का मूल है	85	14
वासना को फूलों की वाटिका में छिपी नागिन समझो	85	17
जलते हुए घर के प्रति आसक्त मत बनो (दृष्टान्त)	19	19
भोग-लालसा पापकर्मों का मूल है	118	6
यह संसार अग्नियों से जल रहा है	82	17
यश-कीर्ति के पीछे पड़कर लोग अपने आप को जलाते हैं	119	11
संपत्ति और विषय वासना के चक्कर में पड़े हुए लोगों का निवाश होता है	119	16
धर्मात्मा और पापात्मा के स्वभाव में मूलभूत अंतर होता है	134	3
मूर्ख मनुष्य का अपने दुराचरण के प्रति ध्यान नहीं जाता (दुष्टान्त)	141	1
मूर्ख मनुष्य केवल परिणामों को देखकर दूसरों के भाग्य की ईर्ष्या करता है (दृष्टान्त)	141	5
मूर्ख मनुष्य का आचरण कैसा होगा (दृष्टान्त)	147	1
दैनिक जीवन		
दान देकर दान की बात भूल जाओ	169	19
बिना धन के सात प्रकार के दान	170	5
संपत्ति प्राप्त करने का उपाय (कथा)	145	15

	पृष्ठ	पंक्ति
सुख पैदा करने का उपाय	132	14
उपकारों को कभी मत भूलो	139	1
मनुष्य स्वभाव के प्रकार	89	5
बदले की भावना के अधीन होने वाले का दुर्भाग्य हमेशा पीछा करता है	132	3
क्रोध को शांत करने का उपाय (कथा)	232	6
दूसरों की निन्दा से विचलित मत होना (कथा)	122	12
तुम वस्त्र, अन्न और प्रश्रय के लिए नहीं जीते	205	10
वस्त्र और अन्न उपभोग के लिए नहीं होते	117	2
खाना खाते समय क्या सोचना चाहिए	208	5
वस्त्र पहनते समय क्या सोचना चाहिए	207	8
सोते समय क्या सोचना चाहिए	208	16
गर्मी और सर्दी में क्या सोचना चाहिए	208	9
दैनिक जीवन में क्या सोचना चाहिए	206	12

अर्थशास्त्र

हर वस्तु का ठीक उपयोग करना चाहिए (कथा)	221	10
कोई भी संपत्ति सदा के लिए अपनी नहीं होती	220	20
अपने लिए संपत्ति का संचय नहीं करना चाहिए	223	5
संपत्ति कैसे प्राप्त करें (कथा)	145	15

पारिवारिक जीवन

परिवार एक ऐसी जगह है जहाँ हृदयों का परस्पर बहुत निकट संबंध होता है	218	8
परिवार का नाश करने वाला आचरण	213	7
माता-पिता के ऋण से मुक्त होने का मार्ग	218	3
माता-पिता और पुत्र का परस्पर आदर्श व्यवहार	214	1

	पृष्ठ	पंक्ति
पति और पत्नी का परस्पर आदर्श व्यवहार	214	17
पति और पत्नी दोनों की श्रद्धा अभिन्न हो (कथा)	222	15

भिक्षुओं का मार्ग

चीवर-धारण करने मात्र से सूत्र-पाठ करने मात्र से भिक्षु प्रव्रजित नहीं होता	197	6
भिक्षु मंदिर और उसकी संपत्ति के उत्तराधिकीर नहीं होते	194	1
लोभी मनुष्य सच्चे भिक्षु नहीं बन सकते	194	5
भिक्षु का वास्तविक जीवन कैसे होना चाहिए	196	4

समाज

सामाजिक जीवन का अर्थ	227	13
इस संसार में समाज की वास्तविक स्थिति	96	17
तीन प्रकार के संगठन	227	17
सही संगठन का स्वरूप	228	7
अंध: कारपूर्ण बंजर का प्रकाशित करने वाला प्रकाश	226	6
मानवी संबंधों में समांजस्य	228	17
संघ में समंजस्य पैदा करने में सहायक बातें	230	4
संघ का आदर्श	229	6
बौद्ध उपासकों का सामाजिक आदर्श	237	1
व्यवस्था के नियम को तोड़ने वाले एक साथ नष्ट हो जाते हैं (दुष्टान्त)	140	3
ईष्या करके लड़-झगड़ने वाले एक साथ नष्ट होते हैं (दुष्टान्त)	140	3
वृद्धों का सम्मान करो (कथा)	134	16
गुरु और शिष्य का एक दूसरे के प्रति		

	पृष्ठ	पंक्ति
व्यवहार कैसा हो	214	8
मित्रता के नियम	215	10
सच्चे मित्रों को कैसे चुनें	216	18
मालिक और दास-कर्मकरों के बीच कैसा व्यवहार होना चाहिए	215	16
अपराधियों के प्रति कैसा व्यवहार करें	228	14
धर्म के प्रचार की इच्छा रखने वालों के लिए ध्यान में रखने योग्य बातें	199	1

संस्कृत शब्दावली (वर्णक्रमानुसार)

अनात्म (जापानी 'मुगा')

यह बौद्ध धर्म का एक मूलभूत सिद्धान्त है। इस संसार के सभी अस्तित्व और गोचर वस्तुओं में, तत्त्वतः, कोई ठोस वास्तविकता नहीं है। सभी अस्तित्व को अनित्य बताने वाले बौद्ध धर्म के लिए यह स्वाभाविक हो जाता है कि इस प्रकार अनित्य अस्तित्व में कोई स्थायी तत्त्व न हो सकने को बात पर जोर दे। अनात्म को नैरात्म्य भी कहते हैं, जिसका अर्थ है आत्मा नामक चिरस्थायी तत्त्व का अभाव।

अनित्य (जापानी 'मुज्यो')

बौद्ध धर्म का एक और मौलिक सिद्धान्त। इस संसार के सभी अस्तित्व और गोचर वस्तुएँ सतत परिवर्तनशील हैं और एक क्षण भी यथावत नहीं रहतों। हर एक को भविष्य में किसी दिन मरना है या नष्ट हो जाना है और यह संभावना ही दुःख का मूल कारण है। तथापि इस सिद्धान्त को निराशावादी या अराजकतावादी दृष्टि से नहीं लेना चाहिए, क्योंकि प्रगति और पुनरुत्पादन दोनों इस सतत परिवर्तन से ही आविर्भूत हैं

अविद्या (जापानी 'मुम्यो')

सम्यक् प्रज्ञा के अभाव की स्थिति को कहते हैं। यह अज्ञान का ही पर्याय हैं, जो भ्रान्ति का मूल कारण है। उसके मानसिक व्यापार को मूढ़ता कहते हैं। संप्रदायों के अनुसार इसके अलग-अलग विश्लेषण और व्याख्याएँ हैं, किन्तु सभी इसे क्लेशों का मूल प्रेरक मानते हैं। इसीलिए सभी अस्तित्व के हेतुप्रत्यय को, जिसे बाहर अंगों में समझाया गया है उस

प्रतीत्य समुत्पाद–वाद में इसे सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। इसे भव–तृष्णा की अंध इच्छाशक्ति भी कह सकते हैं।

कर्म (जापानी 'गो')

यद्वपि इस शब्द का मूल अर्थ केवल 'कार्य' या काम होता है, पर हेतु–प्रत्यय के सिद्धान्त के सिलसिले में इसे एक विशेष अर्थ प्राप्त हुआ है। वह है हमारे गत कर्मों के फलों के कारण प्राप्त एक प्रकार की प्रच्छन्न शक्ति। अर्थात् हमारे भले या बुरे हर कर्म के अनुसार भले या बुरे, सुखद या दु:खद फल होते हैं और उनमें हमारे भविष्य को प्रभावित करने की शक्ति होती है और इसे हमारा कर्म माना जाता है। ऐसा माना जाता है कि यदि हम भले काम करते गए, तो भलाई का संचय होता जाएगा और उसकी प्रच्छन्न शक्ति का हमारे भविष्य पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। कर्म तीन प्रकार के होते हैं: कायिक, वाचिक और मानसिक।

क्लेश (जापानी 'बोन्नो')

निर्वाण की प्राप्ति में बाधक बनने वाले, मनुष्य के सभी मानसिक व्यापारों को बौद्ध परिभाषा में क्लेश कहा जाता है। मनुष्य के अस्तित्व से प्रत्यक्ष संबंधित अनेक वासनाएँ उसके शरीर और मन को कष्ट पहुँचाती हैं, अस्वस्थ और व्याकूल करती हैं। उनका उद्गम आत्मतृष्णा और आत्मआसक्ति में है: या ऐसा भी कह सकते हैं कि उनका मूल प्राण शक्ति में ही है। लोभ, क्रोध और मोह मूल क्लेश हैं, जिनमें से और अनेक क्लेश पैदा होते हैं। ये सब निर्वाण–प्राप्ति में बाधक होते हैं, इसलिए साधना की प्रक्रिया में इनका निवारण करना चाहिए। किन्तु इस

बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वे प्राणशक्ति से प्रत्यक्ष संबंधित हैं, इसलिए निर्वाण की ओर छलांग लगाने की सीढ़ी के रूप में उनका स्वीकार करने वाली विचारप्रणाली भी है।

त्रिपिटक

ये बौद्ध सूत्रों के तीन विभाग दर्शाते हैं। वे हैं सूत्र, जिनमें भगवान बुद्ध का उपदेश ग्रथित है; विनय, जिसमें उनके शीलों और नियमों का समावेश होता है और अभिधर्म जो कि बौद्ध सूत्रों और सिद्धान्तों पर लिखी गई व्याख्याओं का संग्रह है। बाद में चीनी आर जापानी बौद्ध आचार्यों द्वारा लिखे गए ग्रंथों का भी उनमें समावेश किया गया। (धर्म देखिए)

थेरवाद

बौद्ध धर्म की दक्षिणी परंपरा का उल्लेख साधारणतः इस नाम से किया जाता है। थेर का अर्थ है स्थविर, वयोवृद्ध। यह स्थविरों का निकाय है, जो कि ऐतिहासिक रूप में ऐसे स्थविर भिक्षुओं का समूह था जिन्होंने दूसरे कुछ स्वतंत्र प्रगतिशील भिक्षुओं का विरोधकर शीलों का कट्टर आचरण पर जोर दिया। और पुरानी बातों को कड़ाई से सुरक्षित रखा। (प्रगतिशील भिक्षुओं की धारणाएँ बाद में महायान में विकसित हुईं, जिसे उत्तरी परंपरा कहते हैं।) कहा जाता हे कि बौद्ध संघ में इस प्रकार की परस्परविरोधी प्रवृत्तियाँ बहुत प्रारंभिक काल में, बुद्ध के परिनिर्वाण के कुछ ही शताब्दियों बाद, पैदा होने लगी थीं, जब कि महादेव नामक प्रगतिवादी भिक्षु ने बौद्ध विनयों के पाँच वर्गीकरणों के अन्तर्गत स्वतंत्र व्याख्या के एक वर्ग का भी आग्रह किया। इससे विभक्त होकर बन गए थेरवाद और महासांघिक, जो कि परवर्त्ती महायान का मूल स्रोत माना जाता है।

धर्म

सम्यक्संबोधि प्राप्त बुद्ध द्वारा दिए गए उपदेश को धर्म कहते हैं। उपदेश के तीन विभाग हैं: सूत्र (बुद्ध द्वारा स्वयं दिए गए उपदेश) विनय (बुद्ध द्वारा भिक्षुओं के आचरण के लिए बनाए गए नियम) और अभिधर्म (परवर्त्ती काल में विद्वानों द्वारा सूत्रों और विनयों पर की गई व्याख्या और चर्चाएँ)। इन तीनों को त्रिपिटक कहते हैं। धर्म त्रिरत्न में से एक है।

निर्वाण

इसका शाब्दिक अर्थ है 'बुझा देना'। यह ऐसी आध्यात्मिक अवस्था है जिसमें सम्यक्-प्रज्ञा पर आधारित कुछ साधनाओं और ध्यान द्वारा सभी मानवी क्लेशों तथा तृष्णा को पूर्ण रूप से मिटाया जा सकता है। जिन्होंने इस अवस्था को प्राप्त किया, उन्हें बुद्ध कहते हैं। सिद्धार्थ गौतम ने इस अवस्था को प्राप्त किया और वे 35 वर्ष की आयु में बुद्ध बने। किन्तु अब माना जाता है कि मृत्यु के पश्चात् ही उन्हें ऐसे परिपूर्ण निर्वाण की प्राप्ति हो सकी, क्योंकि जब तक भौतिक शरीर रहता है तब तक उसमें कुछ मानवी क्लेश बचे रहते ही हैं।

पारमिता (जापानी 'हारामित्सु')

इसका शब्दार्थ है 'पार करके उस तट पर पहुँचना' अर्थात् विविध बौद्ध साधनाओं द्वरा भवसागर पार करके बुद्ध की पवित्र भूमि में पहुँचना। अक्सर माना जाता है कि नीचे की छ: पारमिताओं की साधना द्वारा मनुष्य जीवन-मरण के भवसागर को पारकर निर्वाण के जगत में पहुँच सकता है। वे हैं दान, शील, क्षान्ति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा। वसंत और शरद ऋतु में मनाए जाने वाले परंपरागत जापानी 'हिगान' सप्ताह का इसी बौद्ध धारणा में से उद्भव हुआ है।

पाली

थेरवाद बौद्ध धर्म की भाषा। माना जाता है कि सबसे पुराने बौद्ध ।कारण संस्कृत और पाली में विशेष अन्तर नहीं है। संस्कृत में धर्म होता है, तो पाली में धम्म: संस्कृत निर्वाण का पाली में निब्बान हो जाता है। ('संस्कृत देखिए)

प्रज्ञा (जापानी में 'हान्न्या', 'चिए')

छः पारमिताओं में से एक। वह मानसिक व्यापार जिसके द्वारा मनुष्य जीवन को यथार्थ रूप में देख सकता है तथा सत्य और असत्य में विवेक कर सकता है। जिसने इसे पूर्ण रूप से प्राप्त किया उसे बुद्ध कहते हैं। अत: सामान्य मानवी बुद्धि की तुलना में इसे अत्यंत निर्मल और प्रबुद्ध प्रजा कहना होगा।

बुद्ध (जापानी में 'बुत्सु,' 'बुद्दा')

सर्वप्रथम सिद्धार्थ गौतम (शाक्यमुनि) इस नाम से पुकारे गए, क्योंकि उन्होंने 35 वर्ष की आयु में लगभग 2500 वर्ष पहले, सम्यक्संबोधि प्राप्त की थी। सभी बौद्ध धर्मियों का अंतिम ध्येय, फिर वे किसी भी संप्रदाय का शाखा के हों, बुद्ध बनना ही है। इस स्थिति को प्राप्त करने के साध ना-मार्गों की भिन्नता के कारण बौद्ध धर्म भिन्न संप्रदायों में बँट गया है। महायान बौद्ध धर्म में, ऐतिहासिक शाक्यमुनि बुद्ध के अतिरिक्त अमिताभ (आमिदा), महावैरोचन (दाइनिचि), भैषज्यगुरु (याकुशी), सद्धर्मपुण्डरीक के अनाद्यन्नत शाक्यमुनि, जैसे अनेक बुद्धों को, साधारणत: बौद्ध उपदेशों के प्रतीकों के रूप में स्वीकार किया गया है। जापान में, अमिताभ बुद्ध में श्रद्धा रखने वाले सुखावती बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण, जिसके अनुसार भक्त मृत्यु के बाद सुखावती में जन्म लेकर बुद्ध बन जाता है, मरे हुए सभी लोगों को अकसर 'होतोके' अर्थात् बुद्ध कहने का रिवाज है।

बोधिसत्त्व (जापानी में 'बोसात्सु')

मूल में इस शब्द का प्रयोग बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्व शाक्यमुनि की साधना-काल की अवस्था के लिए किया जाता था। इसका अर्थ है निर्वाण की कामना करने वाला। महायान के उदय के साथ इसका व्यापक अर्थ किया जाने लगा और महायान बौद्ध धर्म के सभी अनुयायियों के लिए इसका प्रयोग होने लगा। उच्च भूमिका पर बुद्ध के निर्वाण की कामना करते हुए निम्न भूमिका पर सभी लोगों का बुद्ध के निर्वाण की ओर मार्गदर्शन करने का प्रयास करने वाले व्यक्तियों को बोधि सत्त्व कहा जाने लगा। इसके अतिरिक्त, बुद्ध की करुणा और प्रज्ञा के व्यापार का एक अंश वहन करते हुए, बुद्ध के सहायकों के रूप में सत्त्वों के दुःख-कष्टों के अनुसार प्रकट होने वाले अवलोकितेश्वर (कान्नोन) अथवा क्षितिगर्भ (जिजो) जैसे अद्भुत सामर्थ्य धारण करने वाले उद्धारकर्त्ताओं को भी इस संज्ञा से पुकारा जाता है।

महायान

इतिहासक्रम में बौद्ध धर्म का दो मुख्य शाखाओं में विभाजन हो गया—महायान और थेरवाद (अथवा हीनयान)। महायान बौद्ध धर्म का प्रचार तिब्बत, चीन, कोरिया, जापान आदि देशों में हुआ, जब कि थेरवाद का प्रचार म्यांमार, श्रीलंका, थाईलैंड आदि में। शाब्दिक अर्थ है 'बड़ा वाहन' जो कि जीवन-मरण के इस संसार में कष्ट पाने वाले सभी प्राणियों का स्वीकार कर सकता है और सब को बिना भेदभाव के, निर्वाण की ओर ले चल सकता है।

शून्यता (जापानी में 'कू')

इस सिद्धान्त के अनुसार सभी पदार्थों का न तो कोई स्वभाव है, न आत्मा: और यह बौद्ध धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों में से एक है। क्योंकि सभी पदार्थ हेतु-प्रत्यय से उत्पन्न होते है, उनका कोई नित्य आत्मारूपी स्वभाव नहीं हो सकता। किन्तु हमें न तो आत्मदृष्टि से चिपके रहना चाहिए, न अनात्मदष्टि से। सभी प्राणी, मानवी या अमानवी, अन्योन्याश्रयी होते हैं। अत: किसी एक कल्पना या धारणा या वाद को चरम मानना मूर्खता है। यही महायान बौद्ध धर्म के प्रज्ञापारमितासूत्रों की मूलभूत अन्तर्धारा है।

संस्कृत

प्राचीन भारत की प्रतिष्ठित साहित्कि भाषा; भारोपिय भाषा-परिवार में एक। इसके दो रूप हैं—वैदिक और लौकिक। महायान परंपरा के सूत्र इस भाषा में लिखे गए थे, जिस की मिश्र शैली को बौद्ध, संकर-संस्कृत कहा जाता है।

संघ (जापानी 'क्योदान')

इसमें भिक्षु भिक्षुणी, उपास तथा उपासिकाओं का समावेश होता है। प्रारंभिक काल में केवल प्रव्रजित भिक्षु ओर भिक्षुणियों का ही इसमें समावेश होता था। बाद में, महायान के उदय के साथ, बोधिसत्त्व की अवस्था को अपना लक्ष्य बनाकर प्रत्यक्ष आचरण करने वाले लोगों के समूह हो, भिक्षु और उपासक के भेद को लाँघकर, सम्मिलित रूप से संघ कहा जाने लगा। बौद्ध धर्म के त्रिरत्नों में से एक।

संसार (जपानी 'रिन्ने')

नरक, प्रेत, पशु, असुर, मनुष्य तथा देव योनियों में से गुजरते हुए, भूत, वर्तमान और भविष्य में जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे रहना। निर्वाण-प्राप्ति के बिना इस संसार-चक्र से मुक्ति नहीं मिलती। जो इससे मुक्त हुए है, उन्हें बुद्ध कहते हैं।

सूत्र

भगवान बुद्ध के लिपिबद्ध उपदेश। शाब्दिक अर्थ है 'धागा', जिससे धर्म अथवा विज्ञान के विपुल अध्ययन को संक्षेप में एकसूत्र में बाँधने का अर्थ प्रकट होता है।

बौद्ध धर्म प्रवर्तन तथा 'भगवान बुद्ध का उपदेश'

बौद्ध धर्म-प्रर्वतन-प्रतिष्ठान की चर्चा करते समय, पहले एक उद्योगपति श्री एहान नुमाता (मित्सुतोयो उत्पादन कंपनी के संस्थापक) के बारे में कहना आवश्यक है।

उन्होंने चालीस से भी अधिक वर्ष पहले सूक्ष्ममापन उपकरणों का उत्पादन करने के लिए वर्तमान कंपनी की स्थापना की। उनका दृढ़ विश्वास है कि किसी भी उद्योग की सफलता स्वर्ग, पृथ्वी एवं मनुष्य के बीच सामंजस्य पर आधारित है और मानवी मन की परिपूर्णता प्रजा, करुणा और साहस इन तीनों के संतुलित समन्वय से ही सम्भव है। इस विश्वास के साथ वे मापन उपकरणों के तांत्रिक सुधार तथा मानवी मन के विकास क लिए यथा संभव कर रहे हैं।

वे ऐसा मानते हैं कि विश्व में शांति की स्थापना मानवी मन की परिपूर्णता से ही हो सकती है, और मानवी मन को परिपूर्ण बनाने के उद्देश्य से प्रेरित धर्मों में बौद्ध धर्म एक है। इसलिए, अपने उद्योग मे संचालन के साथ-साथ, वे चालीस वष से भी अधिक समय से, बौद्ध संगीत के आध निकीकरण और प्रचार तथा बौद्ध चित्रकला और धर्मग्रंथो के प्रचार-प्रसार में लगे हुए हैं।

दिसम्बर 1966 में उन्होंने अपनी निजी संपत्ति के दान से बौद्ध धर्म के प्रचार और साथ ही विश्वशांति के महत् उद्देश्य में सहायक हो सके ऐसे एक प्रतिष्ठान की स्थापना की। इस प्रकार बौद्ध धर्म प्रवर्तन-प्रतिष्ठान का एक सार्वजनिक संस्था के रूप में आरंभ हुआ।

भगवान बुद्ध के उपदेश के सर्वव्यापी प्रचार द्वारा उनकी महाप्रज्ञा और

करुणा के प्रकाश का लाभ और आनंद हर मानवी हृदय को प्राप्त हो सके, इसके लिए क्या करना होगा? बौद्ध धर्म-प्रवर्तन प्रतिष्ठान, अपने संस्थापक की इच्छा के अनुसार, इस समस्या का सतत समाधान ढूँढ़ता रहता है।

संक्षेप में, बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न करते रहना बौद्ध धर्म-प्रवर्तन प्रतिष्ठान का एकमेव कार्य है।

'भगवान बुद्ध का उपदेश' ग्रंथ का निर्माण तब हुआ जब हम अपने देश के बौद्ध धर्म के दीर्घ इतिहास की ओर मुड़कर देखने लगे; और हमारे ध्यान में आया कि बौद्ध संस्कृति का अभिमान करते हुए भी हमारे पास सच्चे अर्थ में जापानी बौद्ध धर्मग्रंथ कहा जा सके ऐसा एक भी ग्रंथ नहीं हैं। इस प्रकार के आत्म-परीक्षण में से इस ग्रंथ का निर्माण हुआ।

जो भी इस ग्रंथ को पढ़ेगा उसे उसमें से आध्यात्मिक पोषण मिलेगा। इसे चाहे अपनी मेज पर रखें अथवा जेब में लेकर चलें, जब भी और जहाँ भी इच्छा हो शाक्यमुनि के जीवन्त महान व्यक्तित्व का पावन स्पर्श प्राप्त किया जा सकता है।

यद्यपि 'भगवान बुद्ध के उपदेश' का वर्तमान संस्करण, हम चाहते हैं उतना पूर्ण नहीं है, फिर भी अनेक व्यक्तियों के दीर्घकालीन परिश्रम और प्रयत्नों का फली है और हमें विश्वास है कि इसके द्वारा सामान्य लोगों की बौद्ध धर्म के शुद्ध, सरल और प्रामाणिक परिचय ग्रंथ की आवश्यकता पूरी हो सकेगी, साथ ही वह उनके लिए व्यावहारिक मार्गदर्शक तथा नित्य प्रेरणा और सत्य का स्रोत भी बन सकेगा।

बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान की यह हार्दिक आकांक्षा है कि वह दिन शीघ्र ही आए जब यह ग्रंथ अधिक से अधिक घरों में पहुँचे और अधिक से अधिक लोग महान शास्ता के उपदेशामृत से लाभान्वित हों।

पाठकों की टिप्पणियों का सदा स्वागत है। कृपया कभी भी बिना संकोच के बौद्ध धर्म-प्रवर्तन-प्रतिष्ठान को लिखें।